॥ नमामि गुरु तारणम् ॥

श्री तारण तरण वीतराग जिन सिद्धांत पर आधारित पाठ्यक्रम

ज्ञानपुष्प

: प्रकाशक :

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान

छिंदवाड़ा (म.प्र.)

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

पाठ्यक्रम

द्वितीय वर्ष (परिचय)

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय पाठ्यक्रम

: रचनाकार :

श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्यजी महाराज
पंडित प्रवर श्री दौलतराम जी
अध्यात्म रत्न बाल ब्र.श्री बसन्त जी महाराज

ज्ञानपुष्प

: प्रेरणा स्रोत :

श्रद्धेय अध्यात्म रत्न बाल ब्र.श्री बसन्त जी महाराज

: निर्देशक :

युवा साधक श्रद्धेय बाल ब्र.शांतानन्द जी

: विशिष्ट सहयोग :

युवा रत्न श्रद्धेय बाल ब्र.श्री आत्मानंद जी
आत्म साधक श्र.ब्र.श्री परमानंद जी
बाल ब्र.श्री राकेश जी

: मार्गदर्शक :

विदुषी बहिन बाल ब्र. श्री उषा जी

: संयोजन-समन्वयन :

पं.वीरेन्द्रकुमार जैन, गंजबासौदा
पं.राजेंद्रकुमार जैन, अमरपाटन
एवं समस्त तारण तरण श्रीसंघ

: अनुमोदना :

स.र.श्रीमंत सेठ डालचंद जैन *(पूर्व सांसद , सागर)*
(अध्यक्ष- अ.भा.ता.त.जैन तीर्थक्षेत्र महासभा)

: संपादक मंडल :

पं.जयचंद जैन, छिंदवाड़ा
डॉ.प्रो.उदयकुमार जैन, छिंदवाड़ा
राजेन्द्र सुमन, सिंगोड़ी *(सं.तारण ज्योति)*
डॉ.श्रीमती मनीषा जैन,छिंदवाड़ा
श्रीमती सविता जैन,छिंदवाड़ा
पं.विजय बहादुर जैन, हरपालपुर

: प्रकाशक :

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

वर्ष २०११

मूल्य २००/-

प्रस्तावना

अध्यात्म सुमनों की सुरभि से साधना का उपवन सदा सुरभित होता रहा है। संतों की साधना और साहित्य इस आध्यात्मिक वसुंधरा की संस्कृति को शाश्वत पहचान देती है। साहित्य का स्वर्णकाल भक्तिमय, संतमय था। विशेष रूप से चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तो अनेक संतों द्वारा निःसृत, अनुभूत दर्शन, योग, सिद्धांतों की परिचायक है। वीतरागी संत आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ऐसे ही संत शिरोमणि हैं। जिन्होंने स्वयं वीतराग धर्म की निश्चय साधना करते हुए शुद्धात्मानुभव रूप चौदह ग्रंथों में जैनागम का सारभूत सृजन किया है। उनकी यह वाणी स्वप्रसूत ज्ञानगंगा है, जिसने भारतीय साहित्य वाङ्मय में आध्यात्मिक परंपरा को नवीन मार्ग दिया है। रत्नराशियों की तरह आभावान यह चौदह ग्रंथ किसी जीव के मोक्षगमन में प्रेरणा बन जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। अतः श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान ने मुक्ति प्रेरक, सहकारी इन ग्रंथों को श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय के पंचवर्षीय पाठ्यक्रम का आधार बनाया है। इस आधार की भावभूमि जैनाचार्यों की मूल परंपरा को अनुश्रुत करती है। तीर्थंकरों की दिव्य देशना, गणधरों की वाणी, आचार्यों की लिपियों ने संत पुरुषों को यह गंगधारा सौंपी है; वहीं आज घर-घर में प्रवाहित करने का लक्ष्य इस ज्ञानयज्ञ की महत्वाकांक्षा है। इक्कीसवीं सदी, भौतिकता, विदेशी संस्कृति, संस्कारों का तिरोहित होता जाना आज के समय की शोचनीय चिन्ता है। इस प्रभाव ने संसार, देश व समाज में आध्यात्मिक, धार्मिक संस्कारों को धूमिल किया है। अतः पुनः आध्यात्मिक क्रांति का शंखनाद करते हुए श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान पंचवर्षीय पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा, प्रयोग, आचरण, स्वाध्याय और प्रचार के साधन के माध्यम से जैनागम, सिद्धांत एवं आम्नाय में दक्ष करने हेतु इस कर्तव्य-रथ पर आरूढ़ है।

अखिल भारतीय तारण तरण दिगंबर जैन समाज का यह प्रथम अद्भुत चरण है। अध्यात्म रत्न बाल ब्र. पूज्य श्री बसन्त जी की प्रबल प्रेरणा से ही श्रीसंघ के मार्गदर्शन में श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय का यह स्वरूप धर्मनगरी छिन्दवाड़ा में साकार हुआ है। सत्य तो यह है कि आत्मसाधक चिंतक ब्र. बसन्त जी ने आचार्य प्रवर श्री जिन तारण-तरण की दिव्य देशना को जन-जन तक पहुँचाने का विचार वर्षों से संजोया था, वह श्रीसंघ तथा विद्वत्जनों के अपूर्व सहयोग से मूर्त रूप ले रहा है।

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान द्वारा संचालित श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय पत्राचार माध्यम से देश, समाज के समस्त वर्गों में स्वाध्याय की रुचि जाग्रत कर, उन्हें शास्त्री की गरिमामय उपाधि से अलंकृत करेगा। समाज में प्रचलित आचरण-अध्यात्म एवं परम्परा से संबंधित समस्त भ्रांतियों का उन्मूलन कर सम्यक् आचरण का प्रयास करना भी इसका एक लक्ष्य है। आधुनिक शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षण-प्रशिक्षण, वक्ता-श्रोता गुणों का विकास इस लक्ष्य का सहायक होगा। इस ज्ञानरथ-ज्ञानयज्ञ का महती लक्ष्य अध्यात्म जाग्रति, अध्यात्म प्रभावना, भारतीय संस्कृति की मूल मोक्षदायिनी वृत्ति का विकास करना है। संसार के समस्त जीवों में संयम,

सद्ज्ञान, सद्चारित्र जागृत हो। नैतिकता, स्वाध्याय, विनम्रता की वृत्ति का विकास हो। परंपराओं का सम्यक् आगम प्रेरित आचरण, पूज्य-पूजक विधान का ज्ञान, गुरुवाणी की प्रभावना के संस्कारों का विकास हो। मानव मात्र के जीवन में यह पाठ्य योजना आध्यात्मिक बीजारोपण कर परम आनंद में निमित्त बने। इसके लिये श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान कृत संकल्पित है। इस हेतु बहुमूल्य सुझाव भी आमंत्रित हैं।

इस पवित्र धर्म-प्रभावना-उपक्रम में पूज्य बा. ब्र. श्री बसन्त जी की प्रेरणा, श्रद्धेय बा. ब्र. श्री आत्मानंद जी, श्रद्धेय बा. ब्र. श्री शांतानंद जी, श्रद्धेय ब्र. श्री परमानंद जी, बा. ब्र. श्री अरविंद जी विदुषी बा. ब्र. बहिनश्री उषा जी, बा. ब्र. सुषमा जी, ब्र. मुन्नी बहिन जी, ब्र. आशारानी जी, बा. ब्र. संगीता जी एवं समस्त तारण तरण श्री संघ सदैव प्रथम स्मरणीय हैं। समाज के श्रेष्ठीजन, विद्वानों, चिंतकों, लेखकों तथा प्रत्यक्ष-परोक्ष तन-मन-धन से सहयोग करने वाले सदस्यों, संयोजकों तथा समस्त साधर्मी बंधुओं, प्रवेशार्थियों का भी श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान आभार व्यक्त करता है। जिनका सहयोग ही इस ज्ञानयज्ञ की सफलता है।

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान
संचालन कार्यालय - श्री तारण भवन,
संत तारण तरण मार्ग,
छोटी बाजार, छिंदवाड़ा (म. प्र.) ४८०००१

आभार

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान उन सभी व्यक्तियों, संस्थाओं, मंडलों और प्रकाशकों का आभारी है, जिन्होंने इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। पाठ्य पुस्तक में संकलित विषय वस्तु के रचनाकारों, प्रकाशकों का भी कृतज्ञ है। छायाचित्र, रेखाचित्र, परिभाषाओं एवं सिद्धांतों के सम्पादन में सहयोगी समस्त विद्वत्जनों, कलाकारों के प्रति आभारी है, जिन्होंने समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव दिये हैं।

प्रेरणा....

भारतीय संस्कृति इस बात पर विश्वास करती है – '' सा विद्या या विमुक्तये '' विद्या वही है जो मुक्ति का कारण है। शिक्षा का समग्र व्यक्तित्व के निर्माण में अद्वितीय स्थान है। लौकिक शिक्षा व्यक्ति के इहलौकिक जीवन विकास के पथ को प्रशस्त करती है जबकि आध्यात्मिक शिक्षा निराकुलता की प्राप्ति, दुःखों से मुक्ति, शांति और आनन्द के रहस्यों को उद्घाटित करती हुई आत्मोन्नति के द्वार खोलती है। श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय सम्यग्ज्ञान से आलोकित परम आत्म विद्या को उपलब्ध करने हेतु स्थापित किया गया है। पंचवर्षीय पाठयक्रम के माध्यम से प्रवेशार्थी यथार्थ वस्तु स्वरूप से परिचित होंगे, जिससे वर्तमान में व्यवहारिक और सामाजिक जीवन सम्यग्ज्ञान से आलोकित होगा। पत्राचार पद्धति पर आधारित देश में अनेकों महाविद्यालय और विश्वविद्यालय संचालित किये जा रहे हैं। धार्मिक क्षेत्र में भी यह प्रयोग सफल हो रहे हैं। लाखों परिवार अपने – अपने धर्म से संबंधित मुक्त महाविद्यालयों में प्रवेश लेकर अपनी परम्परानुसार इष्ट के प्रति जानकारी उपलब्ध कर धन्यता का अनुभव करते हैं। व्यक्ति की अंतरंग श्रद्धा और समर्पण इस दिशा में अत्यंत सहयोगी होते हैं।श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय छिंदवाड़ा का अत्यंत उन्नत लक्ष्य है। इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये सभी प्रवेशार्थी पाँच वर्ष तक अबाधगति से निरंतर अध्ययन करें। श्रद्धा, भक्ति, संकल्प शक्ति और समर्पण ही विकास का पथ प्रशस्त करता है।

सभी का जीवन सम्यग्ज्ञानमय हो ऐसी अनेक शुभकामनाओं सहित.....

ब्र. बसन्त

समस्त प्रवेशार्थी पंच वर्षीय पाठ्यक्रम पूर्ण कर अपने जीवन को सम्यग्ज्ञानमय बनायें एवं समाज की गरिमा बढ़ायें इन्हीं शुभकामनाओं सहित.......

अध्यक्ष – स. र. श्रीमंत सेठ सुरेशचंद जैन, सागर	संगठन सचिव – दिलीप जैन (अधि.)छिंदवाड़ा
कार्यकारी अध्यक्ष – सिंघई ज्ञानचंद जैन, बीना	संगठन सचिव – स. से. विकास समैया, खुरई
उपाध्यक्ष – भरत जैन परासिया	संगठन सचिव– पं. विजय मोही, पिपरिया
उपाध्यक्ष – सतीश कुमार समैया, जबलपुर	प्रचार सचिव – राजेन्द्र सुमन, सिगोड़ी
उपाध्यक्ष – कैलाश जैन, अमरवाड़ा	प्रचार सचिव – तरूण कुमार गोयल, छिंदवाड़ा
उपाध्यक्ष – किशोर कुमार जैन, शिरपुर	परामर्शदाता – महेन्द्र जैन, राजनांदगांव
महासचिव – पं. जयचंद जैन, छिंदवाड़ा	परमर्शदाता – पं. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल
कोषाध्यक्ष – शांत कुमार जैन, छिंदवाड़ा	परमर्शदाता – महेश कुमार जैन, परासिया
कोषाध्यक्ष – सुभाषचंद जैन, स्टेट बैंक छिं.	परामर्शदाता – संजय जैन, धुलिया
सचिव – पं. राजेन्द्र कुमार जैन, अमरपाटन	परामर्शदाता – मोतीलाल जैन, शिरपुर
सचिव – प्रदीप जैन स्नेही, छिंदवाड़ा	परामर्शदाता – नवनीतलाल जैन, शिरपुर
सचिव – श्रीमती मीना जैन, चौपड़ा	परामर्शदाता – प्रदीप कुमार जैन, चन्द्रपुर

वर्तमान की आवश्यकता.....

वर्तमान में तारण समाज में धार्मिक शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है। हमारी नई पीढ़ी को सुसंस्कारित करने हेतु शिक्षा ही सबसे बड़ा माध्यम है। धार्मिक आचार विचारों की शून्यता को दूर करने के लिये यही एक साधन है। विगत १५ – २० वर्षों से हम इस पवित्र कार्य के लिये प्रयासरत हैं। जो साकार हो रहा है। सन् २००९ में श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान के अंतर्गत श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय की स्थापना की गई। यह महाविद्यालय पत्राचार के माध्यम से संपूर्ण देश में समाज के समस्त वर्गों में स्वाध्याय की रुचि को जाग्रत कर प्रवेशार्थियों की शास्त्री की उपाधि से अलंकृत करने के लिये कृत संकल्पित है। इसके माध्यम से हम समाज में प्रचलित समस्त भ्रान्तियों का उन्मूलन करने का भी प्रयास कर रहे हैं। हमारा लक्ष्य समाज में अच्छे वक्ता और श्रोता के गुणों का विकास करना भी है।

पंचवर्षीय पाठयक्रम में जो विषय दिये हैं वे बहुत ही सटीक हैं, जिनके अध्ययन से प्रवेशार्थियों के लिये कल्याणकारी ज्ञानोपार्जन की सुविधा होगी। महाविद्यालय में अध्ययन करने हेतु देश के कोने – कोने से प्रवेशार्थियों द्वारा प्रवेश लेने का जो उत्साह है वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

हम सभी प्रवेशार्थियों को मंगल भावना के साथ धन्यवाद ज्ञापित करते हैं, जिन्होंने महाविद्यालय में प्रवेश लेकर अध्ययन करने का संकल्प किया है, आप पंचवर्षीय पाठयक्रम पूर्ण कर सम्यग्ज्ञान के लक्ष्य को उपलब्ध करें, हमारी शुभकामनायें आपके साथ हैं।

आप सभी का जीवन मंगलमय हो, इन्हीं मंगल भावनाओं सहित.....

सिंघई ज्ञानचंद जैन
बीना

श्रीमंत सुरेशचंद जैन
सागर

ज्ञान समान न आन जगत में, सुख को कारण

सच्चा ज्ञान ही सुख का कारण है। स्वाध्याय से इस लोक और परलोक में सुख प्रापत होता है। स्वाध्याय की रुचि में प्रत्येक वर्ग में जागृत हो इसी उद्देश्य से मुक्त महाविद्यालय के माध्यम से पंचवर्षीय पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया है। प्रथम वर्ष में सभी ने इस ओर गहरी रुचि दिखाई है। आगे भी हम इस क्रम को बनायें रखें और पंचवर्षीय पाठ्यक्रम को पूरा करें। नये विद्यार्थी और खासतौर पर नवयुवक वर्ग स्वाध्याय के क्रम को बनाने हेतु महाविद्यालय से जुड़ें। सभी वर्ग से विनम्र अपील है कि प्रवेश पत्र भरकर ज्ञानार्जन के प्रथम सोपान में कदम रखें।

शुभकामनाओं सहित......

तरुण गोयल
प्रचार सचिव

प्रदीप स्नेही
सचिव

सम्पादकीय ...

''तत् ज्ञानं यत् प्रतिसमये सम्यक् आनन्द दायते'' ज्ञान वही है जो प्रतिसमय सम्यक् आनन्द की वर्षा से तृप्त करे। उपयोग की आत्म सन्मुख प्रवृत्ति ही निश्चय से ज्ञान - ध्यान है। भारत भूमि ऐसे ज्ञानी - ध्यानी ऊर्ध्वगमन कर्ता तीर्थंकरों की उर्वरा भू रही है। संत श्रीमद् जिन तारण - तरण ने ''चिदानंद चिंतवनं, चेयन आनन्द सहाव आनन्दं'' द्वारा शुद्ध स्वरूप में अविचल चैतन्य परिणति को ही शुद्ध ज्ञान - ध्यान की संज्ञा दी है। आचार्य कुंदकुंद देव ने उन पुरुषों को धन्य, पुरुषार्थी, शूरवीर, पंडित, मनीषी और सम्यक्त्व को कभी मलिन न होने दिया है। वास्तव में ''अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्म मओ णाण दंसण समग्गो, तम्हि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एदे खमं णेमि ॥'' यह तभी सम्भव है जबकि-''द्रव्य - गुण-पर्याय का, जो नित होवे ज्ञान। शीघ्र मिले सम्यक्त्व पद, पावे पद निर्वाण ॥'' जैन सिद्धांत के जिस अमृत तत्व को पं. गोपालदास जी वरैया परिभाषित कर रहे है उसे ही बा. ब्र. बसन्त जी भी कहते हैं - ''अरिहंत को जो द्रव्य - गुण - पर्याय से पहिचानता। निश्चय वही निजदेव रूपी, स्वसमय को जानता। सुज्ञान का जब दीप जलता है, स्वयं के हृदय में। मोहांध टिक पाता नहीं, आत्मानुभव के उदय में।''

जिन धर्म की शुद्ध प्रभावना, वात्सल्य के बिना उपजती नहीं है। प्रभावना के लिए संकल्पित साधर्मी वात्सल्य की यही धारा ज्ञान यज्ञ बनकर छिंदवाड़ा नगरी में स्त्रोतस्विनी हुई है। अध्यात्म रत्न बा. ब्र. श्री बसन्त जी की प्रेरणा ने श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय का मूर्त रूप ले लिया है। पत्राचार प्रणाली से ज्ञान स्वभावी आत्मा में ज्ञान सुगंध सुरक्षित करने का पुनीत लक्ष्य लेकर ''परिचय'' वर्ष द्वितीय का पाठ्यक्रम ''ज्ञान पुष्प'' आपके हाथों का संस्पर्श पा रहा है।

पंचवर्षीय पाठ्यक्रम के वटवृक्ष में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी द्वारा रचित चौदह ग्रंथों सहित छहढाला, जैन सिद्धांत प्रवेशिका, तत्वार्थ सूत्र, द्रव्य संग्रह, अध्यात्म - अमृत कलश, योगसार, गुणस्थान परिचय की शाखाएँ हैं। देव गुरु शास्त्र पूजा, बृहद् मंदिर विधि, आचार्य परिचय, अध्यात्म आराधना इस वृक्ष के सुरक्षित पत्र पुष्प हैं। मूल में हमारी सम्यक् श्रद्धा का सिंचन है, जो वृहदाकार सम्यक्ज्ञान, चारित्र को परिपुष्ट करेगा।

''ज्ञान पुष्प '' का प्रथम पर्ण (अध्याय - १) वंदना प्रथमानुयोग की पीठिका पर शलाका पुरुषों का परिचायक है, काल चक्र हमें सावधान करता है, रत्नत्रय मुक्ति पंथ को साक्षात् करता है। वृहद् मंदिर विधि धर्मोपदेश अखिल भारतीय तारण - तरण दिगंबर जैन समाज की दृढ़ संस्कृति की सूचक तो है ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में कार्यकारी भी है। इसका अर्थ निरूपण मंदिर विधि के मर्म को रसामृत बनाने में सक्षम है।

ज्ञान पुष्प का द्वितीय वर्ष (अध्याय - २) आराधना आचार्य जिन तारण - तरण रचित श्री पंडित पूजा जी ग्रंथ के अर्थ सौंदर्य से सज्जित है। ''सिद्धं भवति शाश्वतं'' का मार्ग निरूपित करते हुए इसमें प्रश्नोत्तर शैली में सम्यग्ज्ञान को शब्दांकित किया गया है। पंचार्थ, पंच पदवी और

अध्यात्मवाणी की रसमयता से गुरु की गुरुता ध्वनित होती है।

ज्ञान पुष्प का तीसरा पर्ण (अध्याय – ३) साधना श्री कमल बत्तीसी जी ग्रंथ के मर्म को प्रस्तुत करता है। जो निश्चित ही सम्यक्‌चारित्र को शब्द सिद्ध करता है। षट्‌लेश्या का सचित्र वर्णन सावधान करता हुआ ग्यारह प्रतिमाओं के आचरण में डूबकर मधुर कंठ स्वर में मुक्ति श्री फूलना के माध्यम से सर्वअर्थ सिद्धि की ओर ले जाता है।

ज्ञान पुष्प का चौथा पर्ण (अध्याय – ४) सिद्धांत मुक्ति पथ में दृढ़ता हेतु सत् स्वरूप प्रस्तुत करता है। पंडित गोपालदास जी वरैया द्वारा रचित श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका से द्रव्य – गुण – पर्याय तथा कर्म के स्वरूप को सैद्धांतिक रूप में ग्राह्य करने से जैनत्व के प्रति दृढ़ता सम्यक्त्व को उद्‌बुद्ध करेगी।

समग्रतः ज्ञान पुष्प की कोमलता मुक्ति पथ हेतु दृढ़ श्रद्धा जाग्रत करने में सक्षम होगी। परीक्षोपयोगी प्रश्न अभ्यास, विषयों पर प्रकाश डालते रंगीन चित्र, चार्ट, रेखाचित्र, शास्त्र सम्मत उद्धरण, अमृत वचन, विषयानुरूप संपादित किये गये हैं। मॉडल प्रश्न – पत्र कठिनाईयों के निवारणार्थ प्रकाशित हैं।

ज्ञान पुष्प हृदय कमल की साधना का पर्याय बने इसलिए बा. ब्र. बसन्त जी ने अनथक परिश्रम पूर्वक जटिल सिद्धांतों को सारगर्भित रसमयता, रोचकता देने का प्रयास किया है। संपादकों ने आवश्यक पहलुओं को संशोधित कर सरलतम रूप देने का प्रयास किया है। तथापि त्रुटियाँ संभावित हैं। जिनका निदान सुधी पाठक, विद्वतजनों द्वारा अपेक्षित है। इस संपादन में अनेक कर्मठ हाथों, चितेरे चित्रकारों, विचारवान बौद्धिक मस्तिष्कों का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है। उसके लिए हम सभी के प्रति कृतज्ञ हैं।

डॉ. श्रीमती मनीषा जैन
उप प्राचार्य
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

प्राक्कथन

सोलहवीं शताब्दी के महान संत श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज आत्मज्ञानी संत थे। उन्होंने अपने चौदह ग्रन्थों में यही उपदेश दिया है कि जिन दर्शन भाव प्रधान है क्रिया प्रधान नहीं। अरिहंत और सिद्ध परमात्मा के गुणों की यह आराधना एवं उनके स्वरूप के समान अपने स्वरूप को जानकर उसमें जमना, रमना भाव पूजा है जिससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

अनादिकाल से हम सच्चे देव, गुरु, शास्त्र एवं धर्म के स्वरूप को नहीं जानकर मिथ्या देव, गुरु, शास्त्र एवं धर्म की उपासना करते हुए गृहीत मिथ्यात्व का सेवन कर रहे हैं और चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहे हैं। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र और धर्म की सच्ची समझ होने पर हमें सच्चा श्रद्धान होगा एवं हम सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर सम्यक्चारित्र का पालन करेंगे।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय के अंतर्गत ज्ञानोदय की प्रथम वर्ष की पुस्तक से हम सभी के बहुत से संशय, भ्रम दूर हुए हैं। रूढ़िवादिता, अंधविश्वास कम हुआ है। इसमें स्वयं को जानने की अभिलाषा उत्पन्न हुई है। इसी कड़ी में अध्यात्म रत्न श्रद्धेय बा. ब्र. बसन्त जी महाराज के अथक प्रयासों से द्वितीय वर्ष की पुस्तक तैयार हुई है जिसमें प्रत्येक विषय को सरलतम करके प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

जिस महाविद्यालय को प्रारंभ करने की पहल बा. ब्र. बसन्त जी ने की है वह द्वितीय वर्ष में प्रवेश कर रहा है। समाज अत्यंत भाग्यशाली है कि समाज को दिशा देने वाले संत जो जन-जन में तारण स्वामी की वाणी को पहुँचा रहे हैं, वे इस महाविद्यालय को ऊँचाइयों तक पहुँचाने के लिये कृत संकल्पित हैं।

जिन जीवों को सत्य तत्व को समझने और निर्णय करने की जिज्ञासा है तथा जो शास्त्रों का स्वाध्याय और चर्चा करके अनेकान्त, निमित्त, उपादान, निश्चय-व्यवहार आदि की सच्ची व्याख्या समझना चाहते हैं। हेय-उपादेय क्या है, प्रत्येक द्रव्य की पर्यायों की स्वतंत्रता, क्रमबद्ध पर्याय आदि समझकर जो मोक्षमार्ग में लगना चाहते हैं उनके लिये श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय द्वारा संचालित कोर्स वरदान साबित होंगे। अतः हमारा यह दायित्व है कि हम इन पुस्तकों के माध्यम से सरल भाषा में सिद्धांतों को और स्वयं को जानने का प्रयास करें तथा अन्य जिज्ञासु जीवों भी को प्रेरित करें ताकि समाज में सभी भव्य जीव अंधविश्वास एवं लोक मूढ़ता को छोड़ने का संकल्प लेवें तथा तीर्थंकर भगवन्तों की पावन देशना को आत्मसात् कर परम तत्व को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हों। इन्हीं मंगल भावनाओं सहित.............

डॉ. प्रो. उदय कुमार जैन
प्राचार्य
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

डालचंद जैन (पूर्व सांसद)
अध्यक्ष– विश्व अहिंसा संघ, नई दिल्ली
अध्यक्ष– मध्यप्रदेश स्वतंत्रता संग्राम सेनानी
फेडरेशन भोपाल (म.प्र.)

निवास : श्रीमंत भवन, बी. एस.जैन मार्ग
राजीव नगर, सागर (म.प्र.)
नि: २६८०२७,२६८०५९
आ. २६८०४९, २६८०१७
फैक्स : (०७५८२) २६८०७९ तार : बालक
email : sagarmp@hotmail.com

दिनांक १२–१२–२०१०

अध्यात्म रत्न बा.ब्र. बसंत जी
संस्थापक
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा

सादर जय तारण तरण

विगत वर्ष संत तारण जयंती के अवसर पर छिंदवाड़ा में श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय का शुभारम्भ किया गया। धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में इस पुनीत कार्य से समाज में ज्ञानोपार्जन की भावनायें जाग्रत हुईं हैं। हम इसकी सराहना करते हैं।

प्रथम वर्ष के सफल प्रयासों के पश्चात् द्वितीय वर्ष के शुभारम्भ अवसर पर इस अभिनव प्रयास की सफलता हेतु कामना करता हूँ।

सादर भावनाओं के साथ.....

आपका शुभेच्छु

(डालचंद जैन)

ज्ञान पुष्प समर्पित है.....

कमलं उवनं कमलं सुवनं, कमलं अषयं कमलं सुरयं।

कमलं विन्यान पयोहरयं, कमलं पय परम पदं ममलं ।।

कमलं पय अर्थ समुच्चियऊ, कमलं सम भाउ परिषियऊ।

कमलं सुइ सयन स उत्तियऊ, अर्थह जिन अर्थ तिअर्थ पऊ ।।

की

अनवरत ज्ञानधारा प्रवाहित करने वाले

आचार्य प्रवर

श्रीमद् जिन तारण तरण स्वामी जी के प्रति,

जिनके,

स्वानुभूति से प्रस्फुटित अमृत वचन

दैदीप्यमान रत्नमणि के समान

ज्ञानानुभव प्रकाशित कर रहे हैं।

साथ ही,

उनकी विशुद्ध आम्नाय को सहेजने वाले

विविध कलाओं में निष्णात

धर्म दिवाकर पूज्य श्री ब्र. गुलाबचंद जी महाराज,

समाज रत्न पूज्य श्री ब्र. जयसागर जी महाराज,

अध्यात्म शिरोमणी पूज्य श्री ब्र. ज्ञानानन्द जी महाराज

सहित

धर्म प्रभावक जागृत चेतनाओं के प्रति .

अनुक्रमणिका ...

क्र.	विवरण	रचनाकार	पृष्ठ क्रमांक
०१	नियमावली	–	I
०२	परीक्षा योजना	–	II
०३	प्रार्थना	–	III
०४	अध्याय एक : वंदना		०१ – १५
	शलाका पुरुष		०१ – ०४
	षट्काल चक्र परिवर्तन		०४ – १०
	रत्नत्रय	ब्र. बसन्त	१० – १५
	बृहद् मंदिर विधि	संपादित	१६ – ६०
०५	अध्याय दो : (अ) आराधना		६१ – ६७
	तीनमत (आचारमत, सारमत और ममलमत)		६१ – ६३
	पंचार्थ–पंच पदवी		६४ – ६६
	अध्यात्म आराधना	ब्र. बसन्त	६७ – ७७
	(ब) श्री पंडित पूजा जी	श्रीमद् जिन तारण तरण	७८ – १०६
०६	अध्याय तीन : (अ) साधना		१०७ – १४८
	षट्लेश्या		१०७ –१०९
	प्रतिमा		११० – ११५
	मुक्ति श्री फूलना	श्रीमद् जिन तारण तरण	११६ – ११९
	(ब) कमल बत्तीसी	श्रीमद् जिन तारण तरण	१२० – १४८
०७	अध्याय चार : सिद्धांत		१४९ – १९२
	(अ) द्रव्य गुण पर्याय	पं. गोपालदास वरैया	१५२– १६७
	(ब) कर्म का स्वरूप		१६८–१९२
०८	मॉडल प्रश्न पत्र ०१ – ०४	–	१९३– १९६

नियमावली

०१. महाविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम में पंजीयन हेतु सभी इच्छुक विद्यार्थी पात्र हैं, जाति बंधन नहीं है।
०२. एक वर्षीय पाठ्यक्रम के अंतर्गत दिये जाने वाले ४ अध्यायों का पूरा अध्ययन करना अनिवार्य होगा।
०३. सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु न्यूनतम आयु सीमा १५ वर्ष रहेगी।
०४. विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर परीक्षा केन्द्र निर्धारित किये जावेंगे। प्रत्येक परीक्षा केन्द्र में न्यूनतम २५ परीक्षार्थी होना अनिवार्य है।
०५. परीक्षा परिणाम की अंकसूची वार्षिक परीक्षा के पश्चात् डाक द्वारा भेजी जावेगी एवं मेरिट में आने वाले प्रथम दस छात्रों के लिये विशेष पुरस्कार प्रदान किये जावेंगे। जिसमें ग्रुप के प्रवेशार्थी रहेंगे।
०६. प्रमाण-पत्र मात्र तीसरे वर्ष तथा पाँचवें वर्ष की परीक्षा के पश्चात् प्रदान किये जावेंगे।
०७. पांचवें वर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले परीक्षार्थियों को 'शास्त्री' उपाधि से अलंकृत किया जावेगा।
०८. आवेदन पत्र प्राप्त होने पर महाविद्यालय द्वारा नामांकन क्रमांक भेजने के पश्चात् पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यार्थी को अपनी पढ़ाई स्वयं करना होगी, केन्द्र द्वारा अध्ययन हेतु पाठ्य सामग्री भेजी जावेगी।
०९. विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से अपने सामाजिक और धार्मिक कार्यों में सक्रिय रहना अपेक्षित रहेगा।
१०. समय-समय पर महाविद्यालय द्वारा निर्देशित नियमों का पालन करना।
११. प्रत्येक विद्यार्थी की प्रवेश शुल्क ३५०/ रु. होगी जो एक मुश्त देय होगी, जिसमें प्रवेश शुल्क, पाठ्य सामग्री एवं परीक्षा शुल्क सम्मिलित है। अगली कक्षा में प्रवेश हेतु समिति द्वारा निर्धारित शुल्क परीक्षा परिणाम घोषित होने के बाद एक माह में देय होगी।
१२. महाविद्यालय कार्यालय से पत्र व्यवहार करने के लिये अपने नामांकन क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
१३. अलंकरण समारोह तीर्थक्षेत्रों के वार्षिक आयोजन में या अन्य किसी भव्य समारोह में सम्पन्न किया जावेगा।
१४. महाविद्यालय से संबंधित समय-समय पर दी जाने वाली जानकारी और समाचार संत श्री तारण ज्योति एवं तारण बंधु में प्रकाशित किये जावेंगे।
१५. विशेष जानकारी के लिये महाविद्यालय के निर्देशक,प्राचार्य एवं उपप्राचार्य महोदय से संपर्क करें।

- विद्यार्थियों के वर्ग विभाग एवं प्रोत्साहन योजना -

दर्शन ग्रुप - (१५ वर्ष से २५ वर्ष तक बालक एवं बालिका वर्ग के लिये) (१० वीं कक्षा उत्तीर्ण होना अपेक्षित है)
ज्ञान ग्रुप - (२६ वर्ष से ४० वर्ष तक वयस्क पुरुष एवं महिला वर्ग के लिये)
ममल ग्रुप - (४१ वर्ष से अधिक के प्रौढ़ पुरुष एवं महिला वर्ग के लिये)
उपरोक्त प्रत्येक वर्ग में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया जायेगा।

- प्रवेश एवं परीक्षा का समय -

(१) इच्छित पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु आवेदन-पत्र पूर्ण रूप से भरकर संचालन कार्यालय तारण भवन छिंदवाड़ा के पते पर भेजें। (२) आवेदन-पत्र संचालन कार्यालय को ३० अप्रैल तक प्राप्त होना आवश्यक है। (३) प्रवेशार्थियों के लिये महाविद्यालय में प्रवेश १ मई से प्रारंभ होगा। (४) प्रवेशार्थियों के लिये महाविद्यालय का शुभारंभ १ जुलाई से होगा। (५) वार्षिक परीक्षा परिणाम डाक द्वारा प्रेषित किये जावेंगे। (६) वार्षिक परीक्षा मई माह में संपन्न होगी। (७) परीक्षा परिणाम जून माह में घोषित किया जावेगा।

- प्रवेशार्थियों के लिये आवश्यक नियम (द्वितीय वर्ष) -

(१) प्रतिदिन जिनवाणी दर्शन करना। (२) ॐ नमः सिद्धं मंत्र की जाप करना।

परीक्षा योजना

१. श्रीमद् तरण तरण ज्ञान संस्थान द्वारा संचालित श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय के पंचवर्षीय पाठ्यक्रम में प्रत्येक वर्ष में एक बार परीक्षा होगी। परीक्षार्थी को परीक्षा में चार प्रश्न–पत्र देना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न–पत्र में न्यूनतम ३३% अंक प्राप्त होने पर ही उत्तीर्ण घोषित किया जावेगा। अंकों का प्रतिशत/श्रेणी निम्नानुसार निर्धारित होगा –

परीक्षा योजना

अंक	श्रेणी	ग्रेड
०–३२	–	D अनुत्तीर्ण
३३–४४	तृतीय	C उत्तीर्ण
४५–६९	द्वितीय	B उत्तीर्ण
७०–८४	प्रथम	A उत्तीर्ण
८५–१००	विशेष योग्यता	A+उत्तीर्ण

परीक्षा योजना

२. प्रत्येक प्रश्न–पत्र में पूर्णांक १०० होंगे। प्रश्न–पत्र में दो अंकों वाले वस्तुनिष्ठ, चार अंकों वाले (३० शब्दों में) लघु उत्तरीय प्रश्न, ६ अंकों वाले (५० शब्दों में) दीर्घ उत्तरीय तथा १० अंक का एक निबंधात्मक प्रश्न होगा। प्रत्येक प्रश्न–पत्र का ब्लू प्रिंट निम्नानुसार होगा। जिसमें कुल सात प्रश्न (१०० अंक) होंगे।

प्रश्न क्रमांक	वस्तुनिष्ठ प्रश्न २ अंक	लघु उत्तरीय ४ अंक	दीर्घ उत्तरीय ६ अंक	निबंधात्मक १० अंक	प्रश्नों का योग
	रिक्त स्थान, सत्य/असत्य, सही जोड़ी/विकल्प	परिभाषा, प्रकार, अंतर	अंतर, परिचय, व्याख्या, सारांश	परिचय, निबंध	
	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	
प्रश्न १	५	–	–	–	५
प्रश्न २	५	–	–	–	५
प्रश्न ३	५	–	–	–	५
प्रश्न ४	५	–	–	–	५
प्रश्न ५	–	५	–	–	५
प्रश्न ६	–	–	५	–	५
प्रश्न ७	–	–	–	१	१
	२०X२=४०	५X४=२०	५X६=३०	१X१०=१०	३१ प्रश्न
अंकों का योग	४०	२०	३०	१०	१०० अंक

प्रार्थना

नमामि गुरु तारणम्

मोक्ष पथ प्रदर्शकम्, नमामि गुरु तारणम्।
नमामि गुरु तारणम्, नमामि गुरु तारणम्॥

वीर श्री नन्दनं, पुष्पावती जन्मनं॥
गढ़ाशाह प्रमुदितम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

दीक्षा तप साधनम्, सेमरखेड़ी वनम्॥
ध्यान धारि निर्मलम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

मिथ्या मद मर्दनम्, मोह भय विनाशनम्॥
स्याद्वाद भूषितम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

आत्म ज्ञान दायकम्, मोक्ष मार्ग नायकम्॥
सत्य पथ प्रकाशकम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

धर्म पथ प्रचारितं, ज्ञानामृत वर्षणम्॥
सूखा निसई शुभम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

ज्ञान भाव स्थितम्, समाधि वेतवा तटम्॥
निसई तीर्थ वंदनम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

वीतराग जगद् गुरुम्, युगकवि सु निर्मलम्॥
ब्रह्मानंद मोक्षदं, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

व्यक्तिगत व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक

सर्वप्रथम पद्मासन, अर्द्ध पद्मासन या सुखासन में बैठें, मेरुदंड सीधा रहे, नासाग्र दृष्टि हो। ऐसी मुद्रा में बैठें पश्चात् संकल्प करें कि - मेरे भीतर अनंत ज्ञान का, अनंत शक्ति का, अनंत आनंद का सागर लहरा रहा है, उसका साक्षात्कार करना मेरे जीवन का परम लक्ष्य है। संकल्प के पश्चात् २ मिनिट श्वासोच्छ्वास पर ध्यान दें, पश्चात् श्वास को गहरे करें एवं ॐ मंत्र का उच्चारण करें (अपने श्वासोच्छ्वास प्रमाण, श्वास को छोड़ते समय ३/४ श्वास में ओ और १/४ श्वास में म् का उच्चारण करें) इसके बाद शांत मौन होकर शून्य ध्यान में आत्म स्वरूप में निमग्न हो जायें।
अंत में-३ बार ॐ नमः सिद्धं एवं ३ बार ॐ शांति मंत्र का उच्चारण करके अपने इष्ट शुद्धात्म देव को विनय भक्ति पूर्वक प्रणाम करके ध्यान पूर्ण करें।

पाठ – १

शलाका पुरुष

माँ – बेटा चिंतन ! जल्दी तैयार हो जाओ, चैत्यालय जी चलना है, पंडित जी आये हैं, आज प्रथमानुयोग पर प्रवचन करेंगे।

चिंतन – माँ ! प्रथमानुयोग किसे कहते हैं ?

माँ – जिन शास्त्रों में त्रेसठ शलाका पुरुषों की जीवन गाथा या उनके गुणों का वर्णन होता है उसे प्रथमानुयोग कहते हैं।

चिंतन – शलाका पुरुष किसे कहते हैं ?

माँ – तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि प्रसिद्ध पुरुषों को शलाका पुरुष कहते हैं। २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र (बलदेव) प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में ६३ ही होते हैं। अथवा तीर्थंकर के माता – पिता, ९ नारद, ११ रुद्र, २४ कामदेव, १४ कुलकर यह सब १६९ महापुरुष होते हैं इनको भी शलाका पुरुष कहते हैं।

चिंतन – ये शलाका पुरुष तो सभी मोक्ष जाते होंगे ?

माँ – तीर्थंकर, उनके माता – पिता, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर पुरुष यह सभी भव्य होते हैं और नियम से एक या दो भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर तो उसी भव से मोक्ष जाते हैं लेकिन अन्य पुरुषों के लिये उसी भव से मोक्ष जाने का नियम नहीं है। नारद, रुद्र, नारायण और प्रतिनारायण उसी भव से मोक्ष नहीं जाते हैं। चक्रवर्ती – मोक्ष, स्वर्ग और नरक भी जाते हैं। चक्रवर्ती का चक्रवर्ती पद पर रहते हुए मरण हो जावे तो वह नियम से सातवें नरक ही जाता है। बलदेव – मोक्ष और स्वर्ग ही जाते हैं।

चिंतन – शलाका पुरुष जैसी उत्कृष्ट पदवी पाने के बाद भी नरक क्यों चले जाते हैं ? माँ ! किसी शलाका पुरुष का जीवन चरित्र सुनाओ।

माँ – अच्छा, आज मैं तुम्हें सुभौम चक्रवर्ती की कहानी सुनाती हूँ। चक्रवर्ती का सातिशय पुण्य का उदय रहता है। वह छह खण्ड का राजा होता है और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं का अधिपति होता है। चक्रवर्ती की ९६ हजार रानियाँ होती हैं। पुण्योदय से उन्हें नव निधियाँ और चौदह रत्न प्राप्त होते हैं।

एक दिन छह खण्ड के अधिपति सुभौम चक्रवर्ती रत्न जड़ित सिंहासन पर विराजमान थे। पास में मंत्रीगण तथा अन्य सभासद बैठे हुए थे। उसी समय एक पूर्व भव का बैरी देव बदला लेने की इच्छा से व्यापारी का वेष धारण करके आया और चक्रवर्ती को एक फल भेंट किया। राजा फल खाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उससे पूछा कि आप ऐसा सुन्दर स्वादिष्ट फल कहाँ से लाये ? व्यापारी ने कहा – राजन् ! आप मेरे देश में चलिये, मैं वहाँ आपको ऐसे अनेकों फल खिलाऊँगा।

चिंतन – माँ ! रसना इन्द्रिय की लोलुपता के कारण क्या चक्रवर्ती व्यापारी के साथ जाने को तैयार हो गया ?

माँ – हाँ, उसने विचार तक नहीं किया कि भला चक्रवर्ती के समान भोगोपभोग की सामग्री किसे मिल सकती है ! वह तीव्र आसक्ति के कारण उन फलों का सेवन करने में ही सुख मानने लगा उसने विचार किया

६३ शलाका पुरुष और नारद, रुद्र, कामदेव सम्बंधी युगपत् अस्तित्व काल सूचक पत्र

क्र.	२४ तीर्थंकर	१२ चक्रवर्ती	९ बलभद्र	९ नारायण	९ प्रतिनारा.	९ नारद	११ रुद्र	२४ कामदेव
०१	०१. ऋषभनाथ	१. भरत	*	*	*	*	१. भीम	०१. बाहुबलि
०२	०२. अजितनाथ	२. सगर	*	*	*	*	२. बलि	०२. प्रजापति
०३	०३. संभवनाथ	*	*	*	*	*	*	०३. श्रीधर
०४	०४. अभिनंदन	*	*	*	*	*	*	०४. दर्शनभद्र
०५	०५. सुमतिनाथ	*	*	*	*	*	*	०५. प्रसेनचन्द्र
०६	०६. पद्मप्रभ	*	*	*	*	*	*	०६. चन्द्रवर्ण
०७	०७. सुपार्श्वनाथ	*	*	*	*	*	*	०७. अग्नियुक्त
०८	०८. चन्द्रप्रभ	*	*	*	*	*	*	०८. सनत्कुमार
०९	०९. पुष्पदंत	*	*	*	*	*	३. शंभु	०९. वत्सराज
१०	१०. शीतलनाथ	*	*	*	*	*	४. विश्वानल	१०. कनकप्रभ
११	११. श्रेयांसनाथ	*	१. विचल	१.त्रिपिष्ट	१.अश्वग्रीव	१. भीम	५. सुप्रतिष्ठ	११. मेघप्रभ
१२	१२. वासुपूज्य	*	२. अचल	२. द्विपिष्ट	२. तारक	२. महाभीम	६. अचल	*
१३	१३. विमलनाथ	*	३. सुधर्म	३. स्वयंभू	३. मेरुक	३. रौद्र(इन्द्र)	७. पुंडरीक	*
१४	१४. अनन्तनाथ	*	४. सुप्रभ	४. पुरुषोत्तम	४. निशुंभ	४. महारुद्र	८. अजितंधर	*
१५	१५. धर्मनाथ		५. सुदर्शन	५. पुरुषसिंह	५. मधुकैटभ	५. काल	९. जितनाभि	*
१६	+	३. मघवा	*	*	*	*	*	*
१७	+	४. सनत्कुमार	*	*	*	*	*	*
१८	१६. शांतिनाथ	५. शान्तिनाथ	*	*	*	*	१०. पीठ	१२.शांतिनाथ
१९	१७. कुन्थुनाथ	६. कुन्थुनाथ	*	*	*	*	*	१३. कुन्थुनाथ
२०	१८. अरहनाथ	७. अरहनाथ	*	*	*	*	*	१४. अरहनाथ
२१	+	८. सुभौम	*	*	*	*	*	*
२२	+	*	६. नन्दी	६.पुंडरीक	६. प्रहलाद	६. महाकाल	*	१५.विजयराज
२३	१९. मल्लिनाथ	*	*	*	*	*	*	१६. श्रीचंद्र
२४	+	*	७. नन्दीमित्र	७. दत्त	७. बलि	७. दुर्मुख	*	१७. नलराज
२५	+	९. महापद्म	*	*	*	*	*	*
२६	२०. मुनिसुव्रत	*	*	*	*	*	*	*
२७	+	१०. हरिषेण	*	*	*	*	*	*
२८	+	*	८. रामचन्द्र	८. लक्ष्मण	८. रावण	८. नरमुख	*	१८. हनुमंत
२९	२१. नमिनाथ	*	*	*	*	*	*	१९. बलिराज
३०	+	११. जयसेन	*	*	*	*	*	*
३१	२२. नेमिनाथ	*	९. बलराम	९. कृष्ण	९. जरासंध	९. अधोमुख	*	२०. वसुदेव
३२	+	१२. ब्रह्मदत्त	*	*	*	*	*	२१. प्रद्युम्न
३३	२३. पार्श्वनाथ	*	*	*	*	*	११. महादेव	२२. नागकुमार
३४	२४. महावीर	*	*	*	*	*	*	२३. जीवंधर
३५	+	*	*	*	*	*	*	२४.जम्बूस्वामी

सूचना – इस सारणी में जो तीर्थंकरों के नामों के आगे चक्रवर्ती बलभद्र आदि के नाम लिखे हैं, वे उन – उन तीर्थंकरों के समय में हुए हैं ऐसा समझना चाहिये और तीर्थंकरों के नाम वाले खाने में जो + इस प्रकार का चिन्ह है और उसके आगे जिन चक्रवर्ती आदि के नाम लिखे है तो वे सब पहले और बाद के होने वाले तीर्थंकरों के अंतराल काल में हुये ऐसा समझना चाहिये। जिस कोष्टक में जहाँ – जहाँ * इस प्रकार का चिन्ह है वहाँ – वहाँ उनका अभाव समझना चाहिये।

कि सब सामग्री होने पर भी इस फल की मेरे यहाँ कमी नहीं रहना चाहिये। और...राजा, व्यापारी के वेश में जो देव था उसके साथ जाने को तैयार हो गया।

चिंतन – चक्रवर्ती चाहता तो अपने आज्ञाकारी सेवक देवों के द्वारा वह अनुपम फल मंगवा सकता था ?

माँ – हाँ बेटा, यह हो सकता था किन्तु उसे तो उस फल का स्वाद चखने की लोलुपता का ऐसा नशा चढ़ गया था कि उसे अपने यहाँ की सब सामग्री नीरस लगने लगी थी। सुभौम चक्रवर्ती ने विचार किया कि यदि मैं वहाँ अकेला जाऊँगा तो कितने फल खा सकूंगा ? इसलिये मुझे वहाँ कुटुम्ब सहित जाना चाहिये, ऐसा विचार कर चक्रवर्ती ने विशाल चर्म रत्न नामक नौका में स्त्री पुत्रादि सहित समुद्र में प्रस्थान किया। अब तो देव मन ही मन अत्यंत प्रसन्न हो रहा था कि अकेले राजा को ही नहीं किन्तु उसके समस्त परिवार को मैं डुबा दूंगा। साथ ही उसे यह भी विचार आ रहा था कि जिसके हजारों देव सेवक हैं, नव निधि और चौदह रत्न हैं उसे मार डालना आसान काम नहीं है। सुभौम चक्रवर्ती समुद्र की तरंगों पर तैरती हुई नौका पर हास विलास करता हुआ सुख सागर में मस्त हो रहा था उसी समय अचानक वैरी देव ने भयंकर तूफान में नौका को फंसा दिया, नौका डोलने लगी। जिससे चक्रवर्ती का हृदय कांपने लगा, उसने भयभीत होकर देव से पूछा कि अब बचने का कोई उपाय है क्या ?

चिंतन – क्या देव ने बचने का कोई उपाय बताया ?

माँ – हाँ, उसने कहा कि सागर के मध्य अब बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। यदि आप अनाद्यनिधन णमोकार मंत्र जो ''णमो अरिहंताणं'' है उसे पानी में लिखकर पैर से मिटा दें तो सब बच सकते हैं।

चिंतन – (आश्चर्य चकित होकर) माँ ! क्या ऐसे महामंत्र को राजा ने पैर से मिटा दिया !

माँ – हाँ बेटा, वह हित – अहित का विवेक छोड़कर तो घर से बाहर निकला ही था, अपने पास सर्व सम्पत्ति और अनुपम पुण्य का स्थान ऐसे चक्रवर्ती पद का भी जिसने विवेक खो दिया और अनजान व्यक्ति का विश्वास करके उसके साथ एक तुच्छ फल खाने के लोभ में चला गया। ऐसा वह सुभौम चक्रवर्ती इस अनित्य जीवन को नित्य बने रहने के लोभ से और मौत के भय से ज्यों ही णमोकार महामंत्र को लिखकर पैर से मिटाने लगा त्यों ही पाप का तीव्र उदय होने से नौका समुद्र में डूबने लगी। तब वह पूर्व भव का बैरी देव कहने लगा कि मैं वही रसोइया हूँ, जिसके ऊपर आपने गरम–गरम खीर डाली थी और जिसने तड़प–तड़प कर प्राण त्याग दिये थे, आर्तध्यान से मैं व्यंतर जाति का देव हुआ हूँ। अवधिज्ञान के द्वारा पूर्व भव का बैर याद आने पर मैंने उसका बदला लेने के लिए ही यह षडयंत्र रचा है। चक्रवर्ती ऐसे अपमान जनक शब्द सुनकर तथा कुटुम्ब परिवार सहित अपना घात देखकर तीव्र संक्लेश भाव से मरण को प्राप्त हुआ और सातवें नरक में चला गया। जहाँ असंख्यात–असंख्यात वर्षों का एक सागर होता है। ऐसे ३३ सागरों के लिये वह अनंत दुःख सागर में डूब गया।

चिंतन – (आश्चर्य से) माँ ! वे चक्रवर्ती थे, सिद्ध पद प्राप्त करके अनन्त सुख का भोग करते और कहाँ सातवें नरक का अनन्त दुःख !

माँ – हाँ बेटा ! यह सब जीव के परिणामों की विचित्रता है।

चिंतन – माँ, अनन्त दुःखमय संसार सागर से पार होने का क्या उपाय है ?

माँ – यह जीव अपने चैतन्य स्वरूप को भूलकर तीव्र मोह के कारण दुःख को भोगता है। सच्चा सुख

अन्तर में हैं जीव को उसका पता नहीं है इसलिये अनादि से संसार में जन्म – मरण कर रहा है। तत्त्व ज्ञान के अभ्यास से शुद्ध स्वरूप की रुचि जाग्रत होती है और विषय–कषाय आदि पाप स्वयमेव नष्ट होने लगते हैं। तत्त्व ज्ञान में स्थिर होकर त्यागने योग्य रागादि का त्याग करना और ग्रहण करने योग्य निज भाव को ग्रहण करना ही संसार सागर से पार होने का उपाय है।

चिंतन – माँ ! और कहानी सुनाओ न।

माँ – फिर कभी सुनाऊँगी, अभी समय हो रहा है। पंडित जी का प्रवचन प्रारम्भ हो गया होगा। चलो चैत्यालय चलें।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि प्रसिद्ध पुरुषों को................कहते हैं।

(ख) तीर्थंकर उसी भव में................जाते हैं।

(ग) ....छह खंड का राजा होता है और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं का अधिपति होता है।

(घ) चक्रवर्ती ने विशाल...............नामक नौका में स्त्री पुत्रादि सहित समुद्र में प्रस्थान किया।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनिये।

(क) सुभौम चक्रवर्ती संक्लेश भाव पूर्वक मरण करके सातवें नरक गया। (सत्य/असत्य)

(ख) जीव के परिणामों में विचित्रता नहीं होती। (सत्य/असत्य)

(ग) जीव अपने स्वरूप को भूलकर तीव्र मोह के कारण दुःख को भोगता है। (सत्य/असत्य)

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) णमोकार मंत्र की विराधना विषय पर किसकी कथा प्रथमानुयोग में वर्णित है ? संक्षेप में लिखिए। (उत्तर – स्वयं लिखें।)

पाठ – २

षट् काल चक्र परिवर्तन

प्रश्न – कल्पकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर – १० कोड़ाकोड़ी सागर का एक उत्सर्पिणी और १० कोड़ाकोड़ी सागर का एक अवसर्पिणी काल दोनों के योग को एक कल्पकाल कहते हैं।

प्रश्न – एक कल्पकाल कितने सागर का होता है ?

उत्तर – एक कल्पकाल २० कोड़ाकोड़ी सागर का होता है।

प्रश्न – कल्पकाल का प्रारम्भ किस काल से होता है ?

उत्तर – कल्पकाल का प्रारम्भ उत्सर्पिणी काल से होता है।

प्रश्न – उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें मनुष्यों के बल, आयु और शरीर का प्रमाण क्रम – क्रम से बढ़ता जाये उसे उत्सर्पिणी

काल कहते हैं। उत्सर्पिणी काल का प्रमाण १० कोड़ाकोड़ी सागर है।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें मनुष्यों के बल, आयु और शरीर का प्रमाण क्रम – क्रम से घटता जाये उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। अवसर्पिणी काल का प्रमाण भी १० कोड़ाकोड़ी सागर है।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर – अवसर्पिणी काल के छह भेद होते हैं – १. सुषमा – सुषमा, २. सुषमा, ३. सुषमा – दुःषमा, ४. दुःषमा – सुषमा, ५. दुःषमा, ६. दुःषमा – दुःषमा।

प्रश्न – उत्सर्पिणी काल के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर – उत्सर्पिणी काल के छह भेद होते हैं – १. दुःषमा – दुःषमा, २. दुःषमा, ३. दुःषमा – सुषमा, ४.सुषमा – दुःषमा, ५. सुषमा, ६. सुषमा – सुषमा।

प्रश्न – काल चक्र का परिवर्तन क्या निरंतर चलता है ?

उत्तर – उत्सर्पिणी – अवसर्पिणी नामक दोनों ही भेद अपने छह कालों के साथ – साथ कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष की तरह परिवर्तित होते रहते हैं। जिस तरह कृष्ण पक्ष के बाद शुक्ल पक्ष और शुक्ल पक्ष के बाद कृष्ण पक्ष बदलता रहता है, उसी तरह अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी काल बदलता रहता है।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल के प्रथम सुषमा – सुषमा काल की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर – सुषमा – सुषमा काल की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

१. इस काल में सुख ही सुख होता है। यह भोग प्रधान काल है। इसे उत्कृष्ट भोगभूमि का काल कहते हैं।

२. इस काल के जीव जन्म के २१ दिनों के बाद पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। जिसका क्रम इस प्रकार है – शय्या पर अंगूठा चूसते हुए ३ दिन, उपवेशन (बैठना) ३ दिन, अस्थिर गमन ३ दिन, स्थिर गमन ३ दिन, कला गुण प्राप्ति ३ दिन, तारूण्य ३ दिन और सम्यक् गुण प्राप्ति की योग्यता ३ दिन। यहाँ के जीव २१ दिन के बाद सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।

३. इस काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की ऊँचाई ६००० धनुष और आयु ३ पल्य की होती है। अंत में घटते – घटते ऊँचाई ४००० धनुष एवं आयु २ पल्य रह जाती है।

४. तीन दिन के बाद चौथे दिन कल्पवृक्ष से प्राप्त बेर के बराबर आहार करते हैं।

५. यह काल ४ कोड़ाकोड़ी सागर का होता है, इसमें शरीर का वर्ण स्वर्ण के समान होता है।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल के द्वितीय सुषमा काल की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर – १. प्रथम काल की अपेक्षा सुख में हीनता हो जाती है। इसे मध्यम भोगभूमि का काल कहते हैं।

२. इस काल में जन्मे युगल ३५ दिनों में पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे प्रथम काल में सात प्रकार की वृद्धियों में ३ – ३ दिन लगते थे, यहाँ ५ – ५ दिन लगते हैं।

३. इस काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की ऊँचाई ४००० धनुष और आयु २ पल्य की होती है। अंत में घटते – घटते ऊँचाई २००० धनुष एवं आयु १ पल्य की रह जाती है।

४. दो दिन के बाद तीसरे दिन कल्पवृक्ष से प्राप्त बहेड़ा के बराबर आहार लेते हैं।

५. यह काल ३ कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। इसमें शरीर का वर्ण श्वेत रहता है।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल के तीसरे सुषमा – दु:षमा काल की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर – १. द्वितीय काल की अपेक्षा सुख में हीनता होती है। इसे जघन्य भोगभूमि का काल कहते हैं।

२. इस काल में जन्मे युगल ४९ दिनों में पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे द्वितीय काल में सात प्रकार की वृद्धियों में ५ – ५ दिन लगते थे, यहाँ ७ – ७ दिन लगते हैं।

३. इस काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की ऊँचाई २००० धनुष और आयु १ पल्य की होती है। अंत में घटते – घटते ऊँचाई ५०० धनुष एवं आयु १ पूर्व कोटि की रह जाती है। (**नोट :** ८४ लाख **x** ८४ लाख **x**१ करोड़ वर्ष = १ पूर्व कोटि वर्ष।)

४. एक दिन के बाद दूसरे दिन कल्पवृक्ष से प्राप्त आंवला के बराबर आहार लेते हैं।

५. यह काल २ कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। इसमें शरीर का वर्ण नीला रहता है।

६. कुछ कम पल्य के आठवें भाग शेष रहने पर कुलकरों के जन्म प्रारम्भ हो जाते हैं। वे तब भोगभूमि के समापन से आक्रान्त मनुष्यों को जीवन जीने की कला का उपाय बताते हैं। इन्हें मनु भी कहते हैं।

७. अंतिम कुलकर से प्रथम तीर्थंकर की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल के चौथे दु:षमा – सुषमा काल की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर – १. इस काल में कर्म भूमि प्रारम्भ हो जाती है।

२. कल्प वृक्षों की समाप्ति होने से अब जीवन यापन के लिये असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प ये षट् कर्म प्रारम्भ हो जाते हैं।

३. शलाका पुरुषों का एवं महापुरुषों का जन्म तथा मोक्ष पुरुषार्थ इसी काल में होता है। चतुर्थ काल का जन्मा जीव पंचम काल में मोक्ष जा सकता है, किन्तु पंचम काल में जन्मा जीव पंचम काल में मोक्ष नहीं जा सकता।

४. युगल संतान के जन्म का नियम नहीं होता। माता – पिता के द्वारा बच्चों का पालन किया जाना प्रारम्भ हो जाता है।

५. इस काल के प्रारम्भ की मनुष्यों की ऊँचाई ५०० धनुष और आयु १ पूर्व कोटि की होती है। अंत में घटते – घटते ऊँचाई ७ हाथ एवं आयु १२० वर्ष रह जाती है।

६. इस काल के मनुष्य प्रतिदिन (एक बार) आहार करते हैं।

७. यह काल ४२००० वर्ष कम १ कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। इसमें पाँच वर्ण वाले मनुष्य होते हैं।

८. छह संहनन एवं छह संस्थान वाले मनुष्य और तिर्यंच होते हैं।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल के पाँचवें दु:षमा काल की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर – १. इस काल में मनुष्य मंद बुद्धि वाले होते हैं।

२. इस काल के मनुष्य अनेक बार भोजन करते हैं। (न एक इति अनेक अर्थात् दो बार को भी अनेक बार कह सकते हैं)

३. इस काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की ऊँचाई ७ हाथ और आयु १२० वर्ष की होती है।अंत में घटते – घटते ऊँचाई ३ हाथ या ३.५ हाथ एवं आयु २० वर्ष की रह जाती है।

४. यह काल २१००० वर्ष का होता है। इसमें पाँच वर्ण वाले किन्तु हीन कांति से युक्त शरीर होते हैं।

५. ५०० वर्ष बाद उपकल्की राजा व १००० वर्ष बाद एक कल्की राजा उत्पन्न होता है।

६. इक्कीसवाँ अंतिम कल्की राजा जलमंथन मुनिराज से टैक्स के रूप में प्रथम ग्रास मांगेगा। मुनिराज तुरंत उसे देकर और अंतराय करके वापस आ जायेंगे। वे अवधिज्ञान से जान लेंगे कि अब पंचम काल का अंत है। तीन दिन की आयु शेष है। चारों (वीरांगज मुनि, सर्वश्री आर्यिका, अग्निदत्त श्रावक और पंगुश्री श्राविका) सल्लेखना ग्रहण कर लेंगे। कार्तिक कृष्णा अमावश्या को शरीर त्याग कर सौधर्म स्वर्ग में देव होते होंगे। मध्याह्न में असुरकुमार देव धर्म द्रोही कल्की राजा को समाप्त करेंगे और सूर्यास्त के समय अग्नि नष्ट हो जावेगी। इस प्रकार पंचम काल का अंत होगा।

नोट : प्रत्येक कल्की के समय में एक मुनि नियम से अवधिज्ञान को प्राप्त करता है।

प्रश्न – हुंडावसर्पिणी काल की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर – असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल बीत जाने पर एक हुंडावसर्पिणी काल आता है। जिसमें कुछ अनहोनी घटनायें घटती हैं, उसके चिह्न इस प्रकार हैं जैसे –

१. तृतीय काल सुषमा दुःषमा के कुछ समय शेष रहने पर ही वर्षा होने लगती है जिससे विकलत्रय जीवों की उत्पत्ति होने लगती है। इसी काल में कल्पवृक्षों का अंत एवं कर्म भूमि का प्रारंभ हो जाता है।

२. उस काल में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं।

३. कुछ जीवों का मोक्ष गमन भी होता है।

४. चक्रवर्ती का मान भंग होता है।

५. चक्रवर्ती से की गई द्विजों के वंश की उत्पत्ति होती है।

६. दुःषमा सुषमा काल में ५८ ही शलाका पुरुष होते हैं।

७. नौवें तीर्थंकर से सोलहवें तीर्थंकर तक धर्म की व्युच्छित्ति होती है। अर्थात् उस समय मुनि, आर्यिका, श्रावक ,श्राविका कोई भी नहीं होते।

८. ग्यारह रुद्र और नौ नारद होते हैं।

९. सातवें, तेईसवें और अंतिम तीर्थंकर पर उपसर्ग होता है।

१०. तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम काल में उत्तम धर्म को नष्ट करने वाले कुदेव और कुलिंगी होते हैं।

११. चांडाल, शबर, किरात आदि जातियां उत्पन्न होती हैं।

१२. अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, वज्र अग्नि गिरना आदि प्रकृति की विकृति रूप घटनाएं होती हैं।

१३. तीर्थंकर अयोध्या के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर जन्म लेते हैं एवं सम्मेदशिखर जी के अतिरिक्त अन्य स्थानों से मोक्ष जाते हैं।

प्रश्न – अवसर्पिणी काल के छटवें दु:षमा – दु:षमा काल का वातावरण कैसा रहता है ?

उत्तर – १. इस काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की आयु २० वर्ष और शरीर की ऊँचाई ३ हाथ या ३.५ हाथ होती है। अंत में घटते – घटते ऊँचाई १ हाथ एवं आयु १५ या १६ वर्ष रह जाती है।

२. यह काल भी २१००० वर्ष का होता है। शरीर का रंग काले धुएं के समान होता है।

३. इस काल में मनुष्यों का आहार कंदमूल, फल, मछली आदि होता है। सब नग्न रहते हैं और भवनों से रहित होकर वनों में घूमते हैं।

४. इस काल में मनुष्य प्रायः पशुओं जैसा आचरण करने वाले क्रूर, बहरे, अंधे, गूंगे होते हैं तथा बंदर जैसे रूप वाले, कुबड़े, बौने शरीर वाले, अनेक रोगों सहित होते हैं।

५. इस काल में जन्म लेने वाले जीव नरक या तिर्यंच गति से आते हैं और मरण कर वहीं जाते हैं।

६. दु:षमा – दु:षमा काल के अंत में ४९ दिन कम २१००० वर्ष के बीत जाने पर महा गंभीर एवं भीषण संवर्तक वायु चलती है जो कि सात दिन तक वृक्ष, पर्वत, शिला आदि को चूर्ण कर देती है। वहाँ स्थित जीव मूर्च्छित हो जाते हैं और कुछ मर भी जाते हैं। इससे व्याकुल मनुष्य और तिर्यंच शरण के लिये विजयार्ध पर्वत और गंगा सिंधु की वेदी में स्वयं प्रवेश कर जाते हैं। इस समय पृथक् – पृथक् संख्यात व सम्पूर्ण ७२ युगल गंगा सिंधु नदियों की वेदी और विजयार्ध वन के मध्य में प्रवेश करते हैं। इसके अतिरिक्त देव और विद्याधर दयार्द्र होकर मनुष्य और तिर्यंचों में से संख्यातों जीवों को उन प्रदेशों में ले जाकर सुरक्षित रखते हैं।

सात प्रकार की वृष्टि – छटवें काल के अन्त में मेघों के समूह सात प्रकार की निकृष्ट वस्तुओं की वर्षा सात – सात दिन तक करते हैं, जिनके नाम हैं – १. अत्यंत शीतल जल, २. क्षार जल, ३. विष, ४. धुआं, ५. धूलि, ६. वज्र एवं ७. जलती हुई दुष्प्रेक्ष्य अग्नि ज्वाला। इस तरह कुल ४९ दिन तक वर्षा होती है। अवशेष बचे मनुष्य उन वर्षाओं से नष्ट हो जाते हैं। विष एवं अग्नि की वर्षा से दग्ध हुई पृथ्वी एक योजन तक चूर्ण हो जाती है। इस प्रकार दश कोड़ाकोड़ी सागर का यह अवसर्पिणी काल समाप्त हो जाता है।

प्रश्न – उत्सर्पिणी काल के छह कालों की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर – **१. दु:षमा – दु:षमा –** उत्सर्पिणी के प्रारंभ में सात–सात दिन तक क्रमशः पुष्कर मेघ–सुखोत्पादक जल, क्षीरमेघ–क्षीरजल, अमृत मेघ–अमृत, रस मेघ–दिव्य रस की वर्षा करते है। यह वर्षा भी ४९ दिन तक होती है। इस वर्षा से पृथ्वी स्निग्ध धान्य तथा औषधियों को धारण कर लेती है। बेल, लता, गुल्म और वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होते हैं। शीतल गंध को ग्रहण कर वे मनुष्य और तिर्यंच गुफाओं से बाहर निकलते हैं। उस समय मनुष्य पशुओं जैसा आचरण करते हुए क्षुधित होकर वृक्षों के फल मूल पत्ते आदि को खाते हैं। इस काल में आयु, ऊँचाई, बुद्धि, बल आदि क्रमशः बढ़ने लगते हैं। इसका नाम भी दु:षमा–दु:षमा काल है।

२. दुःषमा काल – इस काल में भी क्रमशः आयु , ऊँचाई ,बुद्धि ,बढ़ते रहते हैं। इस काल में मनुष्य और तिर्यंचों का आहार बीस हजार वर्ष पर्यंत पहले के समान ही रहता है। इस काल में एक हजार वर्ष शेष रहने पर क्रमशः चौदह कुलकर होते हैं जो कुलानुरूप आचरण और अग्नि से भोजन पकाना आदि सिखाते हैं।

३. दुःषमा सुषमा काल – इस काल में आयु , ऊँचाई , बल आदि में क्रमशः वृद्धि होती है। अंतिम कुलकर से प्रथम तीर्थंकर महापद्म (राजा श्रेणिक का जीव) होंगे। बाद में २३ तीर्थंकर और होंगे। अंतिम तीर्थंकर अनंत वीर्य होंगे। जिनकी आयु एक पूर्व कोटि और ऊँचाई ५०० धनुष होगी।

४. सुषमा दुःषमा काल – इस काल में जघन्य भोगभूमि होती है।

५. सुषमा काल – इस काल में मध्यम भोगभूमि होती है।

६. सुषमा सुषमा काल – इस काल में उत्तम भोगभूमि होती है।

प्रश्न – काल परिवर्तन कहाँ होते हैं ?

उत्तर – पाँचों भरत क्षेत्र, पाँचों ऐरावत क्षेत्र के मध्यवर्ती आर्य खण्ड में ही यह काल परिवर्तन होते हैं।

प्रश्न – एक कल्पकाल पूरा कब होता है।

उत्तर – उत्सर्पिणी काल का १० कोड़ाकोड़ी सागर समय पूरा होने पर तथा अवसर्पिणी काल का १० कोड़ाकोड़ी सागर समय पूरा होने पर एक कल्पकाल होता है।

अभ्यास के प्रश्न –

प्रश्न १ – सही जोड़ी बनाइये।

१. कल्पकाल – दुःषमा दुःषमा से सुषमा सुषमा (२)
२. उत्सर्पिणी – सुषमा सुषमा से दुःषमा दुःषमा (३)
३. अवसर्पिणी – उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का योग (१)
४. मध्यम भोग भूमि – दुःषमा सुषमा (५)
५. कर्म भूमि – सुषमा (४)

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनिये।

(क) अवसर्पिणी का पाँचवां दुःषमा काल २१००० वर्ष का होता है।
(ख) सुषमा दुःषमा काल (उत्सर्पिणी) में अंतिम तीर्थंकर से प्रथम तीर्थंकर की उत्पत्ति होती है।
(ग) ८४ लाख गुणित ८४ लाख गुणित १ करोड़ वर्ष = १ पूर्व कोटि वर्ष।
(घ) उत्सर्पिणी के प्रथम काल में १४ दिनों तक जल, दूध, घी, अमृत रस की वर्षा होती है।
(ङ) सभी क्षेत्रों में षट्काल परिवर्तन होते हैं।

प्रश्न ३ – लघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में)

(क) षट्काल चक्र परिवर्तन का चार्ट बनाइये। (उत्तर – रंगीन चित्र देखें।)

प्रश्न ४ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी काल के प्रत्येक काल का समय बताइये।

उत्तर – अवसर्पिणी काल – १. सुषमा–सुषमा काल–चार कोड़ाकोड़ी सागर। २. सुषमा काल–तीन कोड़ाकोड़ी सागर। ३. सुषमा– दुःषमा काल– दो कोड़ाकोड़ी सागर। ४. दुषमा–सुषमा काल– ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर। ५. दुःषमा काल–२१००० वर्ष। ६. दुःषमा दुःषमा काल– २१००० वर्ष।

उत्सर्पिणी काल – १. दुःषमा दुःषमा काल–२१००० वर्ष। २. दुःषमा दुःषमा काल–२१००० वर्ष। ३. दुषमा सुषमा काल–४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर। ४. सुषमा दुःषमा काल–दो कोड़ाकोड़ी सागर। ५. सुषमा काल–तीन कोड़ाकोड़ी सागर। ६. सुषमा– सुषमा काल – चार कोड़ाकोड़ी सागर।

प्रश्न ५ – षट्काल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

उत्तर – (प्रवेशार्थी स्वयं लिखें)

पाठ – ३

रत्नत्रय

प्रश्न – रत्नत्रय किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं, रत्नत्रय की एकता ही मोक्ष का मार्ग है।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का विषय क्या है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन का विषय – एकांत (निरपेक्ष ध्रुव स्वभाव)

सम्यग्ज्ञान का विषय – अनेकांत (द्रव्य गुण पर्याय)

सम्यक्चारित्र का विषय – कर्म सापेक्ष (रागादि भाव से रहित उपयोग का निज में रहना)

प्रश्न – मोक्षमार्ग में सबसे पहले आवश्यक क्या है ?

उत्तर – मोक्षमार्ग का मूल सम्यग्दर्शन है सबसे पहले इसे प्राप्त करना आवश्यक है।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय क्या है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय –

१. आगम का सेवन, २. पर अपर गुरू का उपदेश, ३. युक्ति का अवलंबन, ४. स्वसंवेदन।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीवादि तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान अथवा स्वानुभूति प्रमाण स्व – पर भेद विज्ञान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन के कितने भेद हैं ?

उत्तर – १. उत्पत्ति की अपेक्षा दो भेद हैं –

१. निसर्गज सम्यग्दर्शन, २. अधिगमज सम्यग्दर्शन।

२. करणानुयोग की अपेक्षा तीन भेद हैं –

१. औपशमिक सम्यग्दर्शन, २. क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन, ३. क्षायिक सम्यग्दर्शन।

३. चरणानुयोग की अपेक्षा दो भेद हैं –

१. निश्चय सम्यग्दर्शन, २. व्यवहार सम्यग्दर्शन।

४. द्रव्यानुयोग की अपेक्षा दो भेद हैं –

१. निश्चय सम्यग्दर्शन, २. व्यवहार सम्यग्दर्शन।

५. अध्यात्म की अपेक्षा दो भेद हैं –

१. वीतराग सम्यग्दर्शन, २. सराग सम्यग्दर्शन।

६. ज्ञान प्रधान निमित्त आदि की अपेक्षा दस भेद हैं –

१. आज्ञा, २. मार्ग, ३. उपदेश, ४. सूत्र, ५. बीज, ६. संक्षेप, ७. विस्तार, ८. अर्थ, ९. अवगाढ़, १०. परमावगाढ़।

७. ज्ञान मार्ग की साधना अपेक्षा छह भेद हैं –

१. मूल, २. आज्ञा, ३. वेदक, ४. उपशम, ५. क्षायिक, ६. शुद्ध।

प्रश्न – आगम में सम्यग्दर्शन के भेद करके कथन क्यों किया गया है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन में आत्मानुभूति तो एक रूप रहती है किन्तु सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में बाह्य कारणों की भिन्नता होने से भेद करके कथन किया गया है।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन के भेद – प्रभेदों का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – उत्पत्ति की अपेक्षा –

१. जो पूर्व संस्कार की प्रबलता से परोपदेश के बिना हो जाता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन कहलाता है।

२. जो पर के उपदेश पूर्वक होता है उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

करणानुयोग की अपेक्षा –

१. अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों के उपशम से जो तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान होता है उसे उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं।

२. सात प्रकृतियों के क्षयोपशम से जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है उसे क्षयोपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं।

३. सात प्रकृतियों के क्षय होने पर तत्वार्थ का जो निर्मल श्रद्धान होता है उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं।

चरणानुयोग की अपेक्षा –

१. सच्चे देव, गुरू, शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा करने को निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं।

२. सम्यक्दृष्टि की २५ दोषों से रहित प्रवृत्ति को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं।

द्रव्यानुयोग की अपेक्षा –

१. जीव–अजीवादि सात तत्त्वों के विकल्प से रहित शुद्ध आत्मा के श्रद्धान को निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं।

२. सात तत्त्वों के विकल्प सहित शुद्ध आत्मा के यथार्थ श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अध्यात्म की अपेक्षा –

१. आत्मा की विशुद्धि मात्र को वीतराग सम्यग्दर्शन कहते हैं।

२. आत्म श्रद्धान सहित प्रशम, संवेग, आस्तिक्य, अनुकम्पा इन चार गुणों की अभिव्यक्ति को सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं।

ज्ञान मार्ग की साधना अपेक्षा –

१. निर्विकल्प आत्मानुभूति को मूल सम्यक्त्व कहते हैं।

२. जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा की प्रधानता से जो पदार्थों का श्रद्धान होता है उसे आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं।

३. वेदक, ४. उपशम, ५. क्षायिक – इन तीनों का स्वरूप करणानुयोग के अनुसार जानना।

६. शुद्ध आत्म स्वरूप में रमणता रूप ध्रुव अटल श्रद्धान को शुद्ध सम्यक्त्व कहते हैं।

ज्ञान प्रधान निमित्त आदि की अपेक्षा –

१. आज्ञा सम्यक्त्व – ऊपर लिखे हुए ज्ञान मार्ग की साधना अपेक्षा में क्र. २ के अनुसार जानें।

२. निर्ग्रन्थ मार्ग के अवलोकन से जो सम्यग्दर्शन होता है उसे मार्ग सम्यक्त्व कहते हैं।

३. आगम के ज्ञाता पुरुषों के उपदेश से उत्पन्न सम्यग्दर्शन को उपदेश सम्यक्त्व कहते हैं।

४. मुनिधर्म के आचार का प्रतिपादन करने वाले आचार सूत्र को सुनकर जो श्रद्धान होता है उसे सूत्र सम्यक्त्व कहते हैं।

५. गणित ज्ञान के कारण बीजों के समूह से जो सम्यक्त्व होता है उसे बीज सम्यक्त्व कहते हैं।

६. पदार्थों के संक्षिप्त विवेचन को सुनकर जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है उसे संक्षेप सम्यक्त्व कहते हैं।

७. पदार्थों के विस्तार सहित विवेचन को सुनकर जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है उसे विस्तार सम्यक्त्व कहते हैं।

८. जिन वचनों के अर्थ को सुनकर जो श्रद्धान होता है उसे अर्थ सम्यक्त्व कहते हैं।

९. श्रुतकेवली के तत्त्व श्रद्धान को अवगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं।

१०. केवली भगवान के तत्त्व श्रद्धान को परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन की क्या विशेषता है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक् नहीं होते। सम्यग्दर्शन धर्म रूपी वृक्ष की जड़ है। जिस प्रकार नींव के बिना घर नहीं होता उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता। सम्यग्दर्शन के होते ही अनादिकालीन दुःखों का अभाव

हो जाता है और सच्चा सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन महान रत्न है।

प्रश्न – सम्यक्दृष्टि जीव कौन–कौन सी पर्यायों में जन्म नहीं लेता ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि जीव एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) असैनी पंचेन्द्रिय में, तिर्यंच गति, नरक गति, नपुंसक, स्त्री पर्याय, भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देव–देवियों की पर्याय में जन्म नहीं लेता।

सम्यग्दर्शन होने के पूर्व नरक गति बांध ली हो तो प्रथम नरक में जाता है। शेष छह पृथ्वियों में नहीं जाता। सम्यक्दृष्टि जीव अल्पायु और विकलांग नहीं होता तथा नीच घरानों में और दरिद्र कुल में भी जन्म नहीं लेता।

प्रश्न – सम्यक्दृष्टि जीव कहाँ – कहाँ उत्पन्न होता है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि जीव उत्कृष्ट ऋद्धि धारी देव, इन्द्र, बलभद्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुष ही होते हैं। वे तीर्थंकर पद भी प्राप्त करते हैं तथा मोक्ष लक्ष्मी के स्वामी होते हैं।

प्रश्न – सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं और सम्यग्ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर – संशय, विभ्रम (विपर्यय), विमोह (अनध्यवसाय) रहित स्व–पर के यथार्थ निर्णय को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न – सम्यग्ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर – सम्यग्ज्ञान के ५ भेद हैं – १. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मनःपर्ययज्ञान ५. केवलज्ञान।

प्रश्न – मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न – श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के संबध से किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे – घट शब्द सुनने के बाद कम्बु – ग्रीवा आदि आकार रूप घट का ज्ञान होना अथवा मतिज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थ को विशेष रूप से जानना श्रुतज्ञान कहलाता है।

प्रश्न – अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा पूर्वक रूपी पदार्थों को जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न – मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थों को जानता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

प्रश्न – केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान समस्त द्रव्यों को और उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायों को एक समय में एक साथ जानता है उसे केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्न – गुरूदेव तारण स्वामी जी ने सम्यग्ज्ञान के बारे में क्या कहा है ?

उत्तर – आत्मा ज्ञानमयी है, ज्ञान ही सबको जानता है, इसलिए ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है। ज्ञान के बल से ही आत्मा परमात्मा होता है इसलिए सम्यग्ज्ञान तीन लोक में सारभूत है।

सम्यग्ज्ञान के उदय होते ही अज्ञान अंधकार नष्ट हो जाता है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान के बारे में गुरूदेव तारण स्वामी जी ने विशद् वर्णन किया है।

प्रश्न – सम्यग्ज्ञान को रत्न क्यों कहा जाता है ?

उत्तर – अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में भी तप करके उतने कर्मों की निर्जरा नहीं कर पाता जितनी निर्जरा ज्ञानी जीव सम्यग्ज्ञान सहित त्रियोग की एकता पूर्वक सहज में कर देता है। ज्ञान ही परम पद में स्थित होने का मार्ग प्रशस्त करता है, इस प्रकार ज्ञान महान रत्न है।

प्रश्न – श्री ज्ञान समुच्चय सार जी ग्रन्थ के रत्नत्रय संबंधी सूत्रों का उल्लेख कीजिये ?

उत्तर – १. 'दंसन धरनं च मुक्ति गमनं च' सम्यग्दर्शन को धारण करने से मुक्ति गमन होता है। (२५६/४)

२.'न्यानं तिलोय सारं नायव्वो गुरू पसाएन' सम्यग्ज्ञान ही तीन लोक में सारभूत है ऐसा श्री गुरू के प्रसाद से जानो। (२६१/३-४)

३.'न्यानं दंसन सम्मं, समभावना हवदि चारित्तं' सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो समभावना (रागद्वेष रहित भावना) होती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। (२६२/१२)

प्रश्न – रत्नत्रय को धारण करने का क्या फल है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता मोक्ष का मार्ग है। यही मुक्ति की प्राप्ति का उपाय है। इसलिए रत्नत्रय को धारण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(सम्यक्चारित्र से संबंधित प्रश्न अध्याय ३ में श्री कमलबत्तीसी ग्रंथ की गाथा २४ में देखें।)

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – सही विकल्प चुनकर लिखिए।

(क) मोक्षमार्ग का मूल है – (अ) रत्नत्रय (ब) सम्यग्दर्शन (स) सम्यग्ज्ञान (द) सम्यक्चारित्र

(ख) सम्यग्दर्शन के लिए आवश्यक है–

(अ) भेदज्ञान (ब) श्रद्धा (स) तत्वों की जानकारी (द) जैन धर्म

(ग) सम्यग्दृष्टि ने सम्यक्दृष्टि होने के पूर्व नरक गति बांध ली हो तो कहाँ जाता है ?

(अ) सातवें नरक (ब) सोलहवें स्वर्ग (स) मोक्ष (द) प्रथम नरक

प्रश्न २ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) सम्यक्दृष्टि जीव अल्पायु और............नहीं होता।

(ख) मुनिधर्म के आचार का प्रतिपादन करने वाले आचार सूत्र को सुनकर जो श्रद्धान होता है उसे............कहते हैं।

(ग) अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में भी तप करके कर्मों की............नहीं कर पाता है।

(घ) दंसन धरनं च............गमनं च।

प्रश्न ३ – लघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) सम्यग्ज्ञान के भेद लिखिए।

उत्तर – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, केवलज्ञान ये पाँच सम्यग्ज्ञान के भेद हैं।

(ख) करणानुयोग की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के भेद लिखिए।

उत्तर – करणानुयोग की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के ३ भेद हैं – उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक।

प्रश्न ४ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) सम्यग्दर्शन विषय पर टिप्पणी लिखिए।

(ख) ''रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग'' विषय पर संक्षिप्त निबंध लिखिए। आवश्यकतानुसार चार्ट बनाइये।

वस्तु स्वभाव का रहस्य

ज्ञानी पुरुष यह जानता है कि जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य दोनों द्रव्यों में यही सबसे बड़ा अन्तर है कि जीव अपनी परिणति को जानता है। पुद्गल के परिणमन को जानता है। पुद्गलकर्म की उदय जन्य अवस्था को जानता है। किन्तु पुद्गल द्रव्य न तो अपने परिणमन को जानता है। न अपने परिणाम के फल को जानता है। और न जीव ही को और उसकी परिणति को जानता है क्योंकि वह अचेतन जड़ द्रव्य है। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध लक्षण धारण करने वाले जीव और अजीव दोनों द्रव्यों में, गुणों में तथा दोनों की पर्यायों में अत्यन्त भेद है। उनमें एक दूसरे की पर्यायों से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता।

जो स्वाधीन हो वह स्वभाव कहलाता है, परंतु जो पर के आधीन हो वह विभाव होता है।

ज्ञानी जीव वस्तु स्वरूप को समझता है अत: वह पर को पर वस्तु जान कर मोह नहीं करता अत: बन्ध नहीं करता। वह वस्तु के स्वभाव का मात्र ज्ञाता होता है। पर वस्तु के साथ उसका मात्र ज्ञेय–ज्ञायक संबंध है। अत: वह संसार के सम्पूर्ण परिवर्तन को तटस्थ रहकर मात्र देखता जानता है, उसमें लीन नहीं होता। इस प्रकार भेदविज्ञानी पर के कर्तृत्व भाव से विरक्त रहता है।

शुद्ध निश्चयनय के द्वारा जो शुद्ध आत्मा का ज्ञान है वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है, ऐसा जानकर जब कोई अपने आत्मा को अपने आत्मा में निश्चल रूप से ध्याता है उस ज्ञानी को एक ज्ञानघन आत्मा ही अनुभव में आता है।

बृहद् मंदिर विधि - प्रस्तावना

आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्यजी महाराज आत्मज्ञानी, वीतरागी, अध्यात्म योगी स्वानुभूति संपन्न शुद्ध चैतन्य प्रकाश से आलोकित, छटवें - सातवें गुणस्थान में सानन्द वीतराग निर्विकल्प समाधि में रत रहते हुए आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द अमृत रस का पान करने वाले, मोक्षमार्ग में निरतंर अग्रणी आध्यात्मिक संत थे। उन्होंने स्वयं का जीवन अध्यात्म ज्ञान ध्यान साधनामय बनाया और सभी भव्यात्माओं के लिये आत्म स्वभाव के अनुभव पूर्वक ज्ञानमार्ग में चलकर स्वभाव की साधनामय जीवन बनाने की प्रेरणा प्रदान की।

साधना पूर्वक लक्ष्य की सिद्धि होती है। साधक दशा में सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी अपने स्वभाव के आश्रय से निरंतर कल्याण मार्ग में अग्रसर रहता है। वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र की श्रेणियों पर आरूढ़ होकर साधना से सिद्धि को प्राप्त करता है।

अध्यात्म साधना के मार्ग में बाह्य क्रिया मुख्य नहीं होती। आध्यात्मिक मार्ग में सच्चे देव, गुरू के गुणों का आराधन किया जाता है। शास्त्रों का स्वाध्याय और धर्म की साधना की जाती है। पूज्य के समान स्वयं का आचरण बनाने की साधना ही परमात्मा की सच्ची पूजा विधि है।

मंदिर विधि क्या है ?

आत्म स्वरूप ज्ञानादि अनंत गुणों का निधान है। चित्तस्वभावी प्रकाशमान है। ऐसे महिमामयी निज स्वरूप को जानने पहिचानने की विधि मंदिरविधि है। मंदिर विधि के द्वारा सच्चे देव, गुरु, धर्म का गुणानुवाद शब्दों से करना द्रव्य पूजा है तथा अपने स्वरूप का आराधन करना, परमात्म स्वरूपमय होना भाव पूजा है।

मंदिर विधि वस्तु स्वरूप का यथार्थ बोध कराने की विधि है। यह सत्-असत् का विवेक जाग्रत कराने वाली ऐसी विधि है जिसमें सच्चे देव गुरू धर्म की विनय वंदना भक्ति सहित सच्चे-झूठे, हेय-उपादेय का निर्णय करके सत्य को स्वीकार करने की प्रेरणा दी गई है। मंदिर विधि तारण समाज का प्राण है। आध्यात्मिक और धार्मिक जागरण में मंदिर विधि प्रमुख माध्यम है वहीं दूसरी ओर सामाजिक संगठन, धर्म प्रभावना में मंदिर विधि का अपना विशेष महत्व है।

मंदिर विधि शास्त्र सूत्र सिद्धांत की ऐसी आधार शिला है जो अन्यत्र दुर्लभ है। त्रिकाल की चौबीसी के वर्णन सहित देव गुरू धर्म शास्त्र की महिमा को बताने वाली है। जिनागम के सार स्वरूप सिद्धांत को अपने में समाहित किये हुए मंदिर विधि ज्ञान का असीम भंडार है।

मंदिर विधि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की महिमा को प्रगट करने वाली है। समवशरण की महिमा, तारण पंथ का यथार्थ स्वरूप और अपने आत्म कल्याण का पथबोध कराने वाली मंदिर विधि जीव को संसार से दृष्टि हटाकर वैराग्य भावपूर्वक धर्म मार्ग में दृढ़ करके स्वरूपस्थ होकर आत्मा से परमात्मा होने का मार्ग प्रशस्त करने वाली है।

मंदिर विधि क्यों करना चाहिये ?

संसारी कर्म संयोगी जीवन में यह जीव मन, वचन, काय, समरम्भ, समारम्भ, आरंभ, कृत, कारित, अनुमोदना, क्रोध, मान, माया, लोभ (इन सबका आपस में गुणा करने पर) १०८ प्रकार से

निरन्तर कर्मों का आस्रव बंध करता रहता है। बोलते-विचारते, उठते-बैठते, आते-जाते, खाते-पीते, सोते-जागते व्यापार कामधंधा करते हुए सतत् कर्मास्रव होता है। चौबीस घंटे की दिनचर्या में जीव पाप कर्म का बहुभाग उपार्जित करता है। इस सबसे परे होकर अपने इष्ट का आराधन थोड़ी भी देर के लिये करता है तो हित का मार्ग बनता है। इस अभिप्राय को मंदिर विधि में भी स्पष्ट किया है '' इष्ट ही दर्शन, इष्ट ही ज्ञान ऐसा जानकर हे भाई ! आठ पहर की साठ घड़ी में एक घड़ी, दो घड़ी स्थिर चित्त होय, देव गुरू धर्म को स्मरण करे तो इस आत्मा को धर्म लाभ होय, कर्मन की क्षय होय और धर्म आराध्य आराध्य जीव परम्परा से निर्वाण पद को प्राप्त होय है।''

इस प्रकार मंदिर विधि करने से पाप कर्म की अनुभाग शक्ति अर्थात् फलदान शक्ति मंद पड़ती है। पुण्य कर्म की अनुभाग अर्थात् फलदान शक्ति में वृद्धि होती है। जब शुभ भावपूर्वक सच्चे देव गुरू धर्म का आराधन, गुणानुवाद किया जाता है तो लेश्या विशुद्धि भी होती है अशुभ लेश्या के परिणाम बदलते हैं और शुभ लेश्या होती है। जो वर्तमान जीवन में सुखशांति से रहने में कारण बनती है और इससे धर्म की प्राप्ति की भूमिका तैयार होती है।

मंदिर विधि का श्रावकचर्या से क्या संबंध है ?

आचार्य श्री जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने श्री तारण तरण श्रावकाचार जी ग्रंथ में षट् आवश्यक का वर्णन दो रूप में किया है। अशुद्ध षट् आवश्यक गाथा ३१० से ३१९ तक तथा श्रावक के शुद्ध षट् आवश्यक गाथा ३२० से ३७७ तक वर्णन किये गये हैं। देव आराधना, गुरू उपासना,शास्त्र स्वाध्याय,संयम, तप और दान यह श्रावक के षट् आवश्यक होते हैं। यह श्रावक के जीवन की प्रतिदिन की चर्या है। प्रतिदिन षट् आवश्यक के पालन करने से ही श्रावक धर्म की महिमा होती है।

मंदिर विधि करने से श्रावक के यह षट् आवश्यक कर्म पूर्ण होते हैं। सो किस प्रकार ? तत्त्व मंगल में देव गुरू (धर्म) की आराधना है। चौबीसी, विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर, विनय बैठक में और नाम लेत पातक कटें स्तवन में देव गुरू की महिमा है। इस प्रकार विभिन्न स्थलों पर हम देव आराधना, गुरू उपासना करते हैं। धर्मोपदेश तथा शास्त्र सूत्र सिद्धांत की व्याख्या में शास्त्र स्वाध्याय पूर्ण होता है। मंदिर विधि करते समय मन और इन्द्रियाँ वश में रहने से संयम, इच्छाओं का निरोध होने से तप और प्रभावना स्वरूप प्रसाद तथा चार दान के अंतर्गत व्रत भंडार देने से दान संपन्न होता है। इस प्रकार मंदिर विधि करने से श्रावक चर्या संबंधी षट् आवश्यक कर्म पूर्ण होते हैं।

मंदिर विधि से विशेष उपलब्धि क्या होती है ?

मंदिर विधि के द्वारा हमें देव-अदेव, गुरू-कुगुरू, धर्म-अधर्म, शास्त्र-कुशास्त्र, सूत्र-असूत्र आदि सत्-असत् के बोध के साथ ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान,चारित्र की महिमा और रत्नत्रय को अपने जीवन में धारण करने का मार्गदर्शन प्राप्त होता है। श्री गुरू महाराज के नौ सूत्र सुधरे थे उनका महत्त्व जानने में आता है तथा अपने सूत्रों को सुधारने की भी प्रेरणा प्राप्त होती है। इसके साथ ही सिद्धांत का सार समझकर स्वयं के जीवन में मुक्ति मार्ग बनाने का पथ प्रशस्त होता है यही मंदिर विधि से विशेष उपलब्धि होती है।

मंदिर विधि के पद्यात्मक विषय छंद, चौपाई, दोहा, श्लोक आदि सस्वर सबके साथ मिलकर पढ़ना चाहिए।

श्री बृहद् मंदिर विधि - धर्मोपदेश

प्रारंभ कैसे करें ?

❀ दशलक्षण पर्व के प्रारंभ में, मेला महोत्सव, वेदी प्रतिष्ठा तिलक महोत्सव तथा अन्य विशिष्ट अवसरों पर ध्वजगान पढ़कर ध्वज वंदन एवं ध्वजारोहण करना चाहिये।

❀ सर्व प्रथम तत्त्व मंगल पढ़कर श्री ममलपाहुड़ जी ग्रन्थ से कोई एक फूलना पढ़ें तत्पश्चात् झंझाभक्ति पूर्वक पाँच भजन आयरन फूलना सहित पढ़ना चाहिए। आयरन फूलना के प्रारंभ में आरती प्रज्वलित कर लेना चाहिये।

❀ भजनों के पश्चात् पंडित जी 'सावधान' कहें तब सभी श्रावकजन विनय पूर्वक खड़े हो जावें। श्री अध्यात्मवाणीजी ग्रंथराज को उच्चासन पर विराजमान करके सामूहिक रूप से ''जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक, सो वाणी मस्तक धरूँ सदा देत पदधोक '' यह दोहा पढ़कर विनय सहित पंचांग नमस्कार करें एवं खड़े हो जावें।

❀ पंडित जी 'जय नमोऽस्तु' कहें और सभी भव्यजन मिलकर तत्त्व मंगल पढ़ें। पश्चात् पहले दिन तीनों बत्तीसी और धम्म आयरन फूलना क्र. ८७ का अस्थाप करें।

❀ **अस्थाप की विधि**–सभी श्रावकजन हाथ जोड़कर विनय पूर्वक खड़े होवें। पंडित जी ''ॐ परमात्मने नम:'' और ''ॐ नम:सिद्धं'' मंत्र ३-३ बार उच्चारण करवाकर ''अथ श्री भय षिपनिक ममलपाहुड जी - धम्म आयरन फूलना अस्थाप्यते'' कहें और प्रारंभ से लेकर उत्तम क्षमा धर्म तक की गाथायें पढ़ें। पश्चात् पुन: उपरोक्त मंत्र का उच्चारण करवाकर श्री मालारोहण जी, श्री पंडितपूजा जी और श्री कमल बत्तीसी जी ग्रंथ का अस्थाप करें। पहले दिन फूलना और तीनों बत्तीसी के नाम के साथ ''अस्थाप्यते'' शब्द का उच्चारण करें और शेष दिनों में मंत्रोच्चारण के बाद फूलना और तीनों बत्तीसी के नाम के साथ ''प्रारभ्यते''शब्द बोलें। जैसे - ''अथ श्री मालारोहण जी ग्रंथ प्रारभ्यते''इसी प्रकार अन्य ग्रंथों का भी उल्लेख करें।

❀ प्रथम दिन प्रात: काल के अस्थाप में श्री मालारोहण जी, श्री पंडितपूजा जी, श्री कमलबत्तीसी जी ग्रंथ की ३-३ गाथाओं का सावधान अर्थात् विनय पूर्वक खड़े होकर सस्वर वांचन करें।

❀ दूसरे दिन से प्रात:काल धम्म आयरन फूलना की प्रत्येक धर्म से संबंधित गाथा आचरी सहित पढ़ें तथा श्री पंडितपूजा जी और श्री कमल बत्तीसी जी की मंगलाचरण की गाथा पढ़कर ३-३ गाथाओं का प्रतिदिन क्रमश: वांचन करें। रात्रि में लघु मंदिर विधि करें, प्रतिदिन विनती फूलना या अन्य कोई भी फूलना पढ़कर श्री मालारोहण जी ग्रंथ की प्रतिदिन ३-३ गाथायें पढ़ें।

❀ अस्थाप के पश्चात् तथा अन्य दिनों में अस्थाप किये हुए ग्रन्थों की गाथायें पढ़ने के पश्चात् पंडितजन धर्मोपदेश का भक्ति पूर्वक वांचन करें तथा सभी श्रावक, श्रोतागण विनयपूर्वक एकाग्रचित्त से धर्मोपदेश श्रवण करें।

❀ मंदिर विधि में जो पद्यात्मक विषय, दोहा, श्लोक, चौबीसी आदि हैं, इनको सामूहिक रूप से शुभभाव पूर्वक पढ़ना चाहिये। बीच-बीच में जो ''जयन् जय बोलिए जय नमोऽस्तु'' कहा जाता है या जय बोली जाती है वह भी सबको एक साथ उत्साह पूर्वक बोलना चाहिये।

❀ सूत्र नाम काहे सों कहिये या शास्त्र जी को नाम कहा दर्शावत हैं, पंडित जी के बोलने के बाद सभी श्रावकजनों को एक साथ - कहिये जी, दर्शाइये जी बोलकर वाणीजी का बहुमान करना चाहिये।

❀ अस्थाप किये हुए ग्रन्थों की गाथायें पढ़कर प्रवचन करने के पश्चात् सावधान होकर तीन आशीर्वाद पढ़ना चाहिये, अन्त में अंतिम आशीर्वाद अबलबली आदि का वांचन करना चाहिये।

❀ अस्थाप और तिलक प्रात:काल ही सम्पन्न किये जाते हैं।

धर्मोपदेश का क्रम

- ❖ तत्त्व मंगल
- ❖ ओंकार मंगल
- ❖ अस्थाप किये हुए ग्रंथों की गाथायें
- ❖ श्री धर्मोपदेश
- ❖ केवलज्ञानी भगवान की महिमा
- ❖ सम्यक्त्व की महिमा
- ❖ श्री अनंतवीर्य स्वामी जी का प्रसाद आदिनाथ जी लै उत्पन भये
- ❖ आदिनाथ जी का वैराग्य और केवलज्ञान
- ❖ देवांगली पूजा
- ❖ इन्द्रध्वज पूजा
- ❖ शास्त्र पूजा
- ❖ गुण पाठ पूजा
- ❖ भगवान आदिनाथ जी का निर्वाण
- ❖ वर्तमान चौबीसी
- ❖ विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर
- ❖ धर्म की महिमा
- ❖ जिनेन्द्रों का एक सा स्वरूप
- ❖ भगवान महावीर स्वामी की महिमा
- ❖ मंगल – चौथे काल के अन्त.....
- ❖ राजा श्रेणिक का समवशरण के लिये प्रस्थान और महावीर प्रभु की स्तुति भक्ति
- ❖ राजा श्रेणिक का मध्यनायक के रूप में उल्लेख
- ❖ राजा श्रेणिक के आगामी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होने की सूचना
- ❖ भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण
- ❖ आशा रूपी नदी की विशेषता
- ❖ धर्मोपदेश के लिपिबद्ध कर्ता
- ❖ वक्ता श्रोता की विशेषता
- ❖ शास्त्र सूत्र सिद्धांत की व्याख्या
- ❖ नाम लेत पातक कटें......स्तवन
- ❖ श्री शास्त्र जी का नाम
- ❖ अस्थाप किये हुए ग्रंथों की गाथा का वांचन
- ❖ गाथाओं पर व्याख्या, प्रवचन
- ❖ तीन आशीर्वाद
- ❖ अंतिम आशीर्वाद
- ❖ अबलबली
- ❖ प्रमाण गाथायें
- ❖ आरती
- ❖ चंदन
- ❖ प्रसाद–प्रभावना
- ❖ तत्त्व मंगल
- ❖ स्तुति

साधारण (लघु) मंदिर विधि का क्रम

- ❖ तत्त्व मंगल
- ❖ ओंकार मंगल
- ❖ फूलना वांचन
- ❖ वर्तमान चौबीसी
- ❖ विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर
- ❖ शास्त्र सूत्र सिद्धांत की व्याख्या
- ❖ दोहा स्तवन – नाम लेत.......
- ❖ शास्त्र जी का नाम
- ❖ अस्थापित ग्रंथ की गाथा वांचन
- ❖ गाथाओं पर व्याख्या, प्रवचन
- ❖ अंतिम आशीर्वाद
- ❖ अबलबली
- ❖ प्रमाण गाथायें
- ❖ आरती
- ❖ चंदन
- ❖ प्रसाद– प्रभावना
- ❖ तत्त्व मंगल
- ❖ स्तुति

धम्म आयरन फूलना

गुन आयरन धम्म आयरनं, आयरन न्यान पय परम पयं ।
तव आयरन जिनय जिन उत्तं, आयरन तिअर्थ सु ममल पयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। १ ।।

(गुन आयरन धम्म आयरनं) गुणों में आचरण करना ही धर्म का आचरण है **(आयरन न्यान)** ज्ञान पूर्वक इस आचरण से **(पय परम पयं)** परम पद की प्राप्ति होती है **(जिन उत्तं)** श्री जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि **(जिनय)** स्वभाव को जीतने अर्थात् स्वभाव में लीनता रूप **(तव आयरन)** तपश्चरण को धारण करो **(तिअर्थ सु ममल पयं)** रत्नत्रयमयी अपने ममल पद में लीन रहना **(आयरन)** सम्यक्चारित्र है **(उव)** परमात्म सत्ता स्वरूप **(सु ममल पयं)** अपने ममल पद में **(सम)** सम भाव [वीतराग भाव] पूर्वक **(रमन)** रमण करना **(षिम)** उत्तम क्षमा आदि धर्म है।

उव उवन पयं उव समय समं, तं विंद रमन उव सुन्न समं ।
उव उवन सरनि विष विषम रमनि,उत्पन्न षिपिय जिननाथ सुयं ।।
भवियन, भय षिपिय अमिय रस मुक्ति जयं ।। २ ।। आचरी ।।

(उव उवन पयं) ओंकारमयी परमात्म स्वरूप निज पद उदित हुआ है **(उव समय समं)** शुद्धात्मा ही परमात्म स्वरूप है **(उव सुन्न समं)** ओंकारमयी शून्य स्वभाव के आश्रय से **(तं विंद रमन)** निर्विकल्प स्वानुभूति में लीन रहो **(सुयं)** अपने **(उव)** परमात्म सत्ता स्वरूप **(जिननाथ)** जिनेन्द्र पद को **(उत्पन्न)** प्रकट करो, इससे **(उवन सरनि)** संसार में जन्म मरण का होना और **(विष विषम रमनि)** दुःखदाई रागादि रूप विष में रमण करना **(षिपिय)** हमेशा के लिये छूट जायेगा **(भवियन)** हे भव्यात्मन् ! **(भय षिपिय)** भयों को क्षय करने वाले **(अमिय रस)** अमृत रस में रमण करके **(मुक्ति जयं)** मुक्ति को प्राप्त करो।

उत्तम षिम उवन उवन जिनु रमनं, उववन्न कम्मु विलयंतु सुयं ।
उत्पन्न षिपिय भय षिपक रमन जिनु, तं न्यान अमिय रस ममल पयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। ३ ।।
।। उव उवन ।।

(उवन उवन जिनु रमनं) अपने जिन स्वभाव के स्वानुभव में लीन रहना **(उत्तम षिम)** उत्तम क्षमा धर्म है, इससे **(उववन्न कम्मु)** कर्मों का उत्पन्न होना **(विलयंतु सुयं)** स्वयं विला जाता है **(उत्पन्न षिपिय)** अपने क्षायिक भाव को उत्पन्न करो **(रमन जिनु)** जिन स्वभाव में रमण करो, इससे **(भय षिपक)** भय क्षय हो जायेंगे **(तं न्यान अमिय रस)** ज्ञानमयी अमृत रस से परिपूर्ण **(ममल पयं)** ममल पद में लीन रहो यही उत्तम क्षमा धर्म है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से क्रोध कषाय का अभाव होना उत्तम क्षमा धर्म है।

मय मूर्ति तं अर्क रमन जिनु, दर्स दर्स उत्पन्न रसं ।
वारापार अपार रमन जिनु, दिस्टि सब्द उत्पन्न जिनं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। ४ ।।
।। उव उवन ।।

(तं अर्क) परम दैदीप्यमान **(मय मूर्ति)** पूर्ण प्रकाशमयी चैतन्य मूर्ति **(जिनु रमन)** वीतराग जिन स्वभाव में रमण करो **(दर्स दर्स उत्पन्न रसं)** देखो देखो ! स्वानुभव में अतीन्द्रिय अमृत रस उत्पन्न हो रहा है **(वारापार अपार)** यह

अपरम्पार है, इसकी कोई सीमा नहीं है **(रमन जिनु)** ऐसे वीतराग स्वभाव में रमण करो **(दिस्टि सब्द)** दृष्टि में अर्थात् उपयोग में जिन वचनों के अनुसार **(उत्पन्न जिनं)** वीतराग जिन स्वरूप उत्पन्न हो गया है, यही उत्तम मार्दव धर्म है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से ज्ञान आदि आठ मदों का अभाव होना उत्तम मार्दव धर्म है।

आर्जव आयरन सु चरन रमन जिनु, उववन्न समय सम समय जिनं ।
न्यान विन्यान सु आर्जव ममलं, न्यान अन्मोय सु विष विलयं ॥
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ॥ ५ ॥
॥ उव उवन ॥

(आर्जव) आर्जव धर्म **(सु चरन)** सम्यक्चारित्र रूप **(आयरन)** आचरण **(रमन जिनु)** अपने जिन स्वभाव में रमण करना है **(समय सम)** शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय पूर्वक **(न्यान विन्यान सु)** ज्ञान विज्ञानमयी अपने **(समय जिनं)** वीतराग शुद्धात्म स्वरूप **(ममलं)** ममल स्वभाव में रहने से **(आर्जव)** उत्तम आर्जव धर्म **(उववन्न)** प्रकट होता है **(न्यान अन्मोय सु)** अपने ज्ञान स्वभाव में लीन होने से **(विष विलयं)** रागादि का विष विलय अर्थात् क्षय हो जाता है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से माया कषाय रूप कुटिलता का अभाव होना उत्तम आर्जव धर्म है।

सत्यं तं सहजनन्द जिनु रमनं, रमन विंद रै उवन समं ।
भय सल्य संक विलयंतु जिनय जिनु,निसंक सब्द दिपि दिप्ति रमं ॥
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ॥ ६ ॥
॥ उव उवन ॥

(सहजनन्द जिनु रमनं) सहजानंदमयी जिन स्वभाव में रहना ही **(सत्यं तं)** उत्तम सत्य धर्म है **(रमन विंद रै)** सानंद निर्विकल्प स्वभाव में रति पूर्वक रमणता से **(उवन समं)** अपूर्व समभाव अर्थात् वीतरागता उदित होती है **(जिनय जिनु)** वीतराग स्वभाव को जीतने पर **(भय सल्य संक विलयंतु)** भय शल्य शंकायें विला जाती हैं **(निसंक)** नि:शंक होकर **(सब्द)** जिन वचनों के अनुसार **(दिपि दिप्ति रमं)** परम दैदीप्यमान ज्ञान स्वभाव में लीन रहो अर्थात् द्रव्य दृष्टि पूर्वक अपने द्रव्य स्वभाव को देखो यही उत्तम सत्य धर्म है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से झूठ पाप का अभाव होना और सत् स्वरूप में आचरण होना यही उत्तम सत्य धर्म है।

सौच्य सहकार सहज रै रमनं, हिययार उवन पय उवन रमं ।
उव उवन मिलन उव उवन विलन, तं भुक्त उवनु सुइ भुक्त विलं ॥
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ॥ ७ ॥
॥ उव उवन ॥

(सहज) सहज स्वभाव का **(सहकार)** सहकार कर **(रै रमनं)** रति पूर्वक रमण करो, यही **(सौच्य)** शुचिता अर्थात् उत्तम शौच धर्म है **(उवन रमं)** इस रमणता का उदय होना ही **(हिययार उवन पय)** हितकारी पद का प्रकट होना है **(उव उवन मिलन)** स्वानुभव में ओंकार स्वरूप से मिलो **(उव उवन)** परमात्म सत्ता स्वरूप के उदय होने पर **(विलन)** पर भाव विला जायेंगे **(तं भुक्त उवनु)** स्वानुभव में स्वभाव का भोग करने पर **(सुइ भुक्त विलं)** अशुद्ध पर्याय का भोग करना स्वयं ही विला जायेगा।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से लोभ कषाय का अभाव होना, निर्लोभता, शुचिता का प्रगट होना उत्तम शौच धर्म है।

अन्मोय अबलबलि विषय विनन्द विली, सहयार उवन पय मुक्ति मिलं ।
संजम सुइ जयो जयो जय रमनं, जाता उववन्नु सु मुक्ति जयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। ८ ।।
।। उव उवन ।।

(अन्मोय अबलबलि) अबलबली स्वभाव की अनुमोदना करने से **(विषय विनन्द विली)** विषय जनित दुःख विला जाता है **(उवन पय)** निज पद की अनुभूति को **(सहयार)** सहकार करने रूप सम्यक्चारित्र से **(मुक्ति मिलं)** मुक्ति की प्राप्ति होती है **(सुइ जयो जयो)** शुद्धात्म स्वरूप की जय हो जय हो **(जय रमनं)** इसी जयवंत स्वरूप में रमण करना **(संजम)** उत्तम संयम धर्म है **(जाता उववन्नु सु)** अपने त्रिकाली ज्ञाता स्वभाव का उत्पन्न होना ही **(मुक्ति जयं)** मुक्ति को प्राप्त करना है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से हिंसा पाप का अभाव होना तथा व्यवहार में पाँच स्थावर, एक त्रस इस प्रकार षट्काय के जीवों की रक्षा करना तथा पाँच इंद्रियों और मन को वश में करना उत्तम संयम धर्म है।

तप तत्काल उवन सुइ उवनं, उव उवन न्यान सुइ विषय विलयं ।
उववन्न परम पय परम उवन जय, तं कम्मु विलय सुई मुक्ति पयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। ९ ।।
।। उव उवन ।।

[रागादि भावों का त्याग करके] **(तत्काल उवन)** इसी समय स्वानुभव में ठहरना **(सुइ उवनं)** शुद्धात्म स्वरूप का उदित हो जाना **(तप)** उत्तम तप धर्म है **(उव उवन न्यान)** परमात्म सत्ता स्वरूप के स्वानुभव सम्पन्न ज्ञान के बल से **(सुइ विषय विलयं)** विषय विकार अथवा पर ज्ञेय सहज ही विला जायेंगे **(परम उवन जय)** परमात्म स्वरूप का अनुभव जयवंत हो, इससे ही **(उववन्न परम पय)** परम पद उत्पन्न होता है, और **(तं कम्मु विलय)** कर्मों की निर्जरा होने पर **(सुइ मुक्ति पयं)** सहज ही मुक्ति पद की प्राप्ति होती है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय पूर्वक इच्छाओं का निरोध करना, १२ प्रकार के तप का पालन करना और समस्त रागादि भावों का परिहार कर स्वरूप में लीन रहना उत्तम तप है।

त्यागं तिक्त तिक्त पर पर्जय, भय सल्य संक विलयंतु सुयं ।
दानं तं नन्त नन्त जिन रमनं, त्याग न्यान सुइ सिद्धि जयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। १० ।।
।। उव उवन ।।

(पर पर्जय) पर पर्याय का **(तिक्त तिक्त)** देखना मानना छूट जाये **(त्यागं)** यही उत्तम त्याग धर्म है, इससे **(भय सल्य संक विलयंतु सुयं)** भय, शल्य, शंकायें स्वयं ही विला जाती हैं **(तं नन्त नन्त)** अपने अनंत चतुष्टयमयी **(जिन रमनं)** जिन स्वभाव में उपयोग लगाना अर्थात् वीतराग स्वभाव में रमण करना **(दानं)** दान है, ऐसे **(त्याग न्यान)** ज्ञान पूर्वक त्याग से **(सुइ सिद्धि जयं)** सहज ही सिद्धि मुक्ति की प्राप्ति होती है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से चोरी पाप का त्याग और अंतर में रागादि भावों का त्याग तथा व्यवहार में चार प्रकार के दान देना यही उत्तम त्याग धर्म है।

आकिंचन आयरन जिनय जिनु, अर्थति अर्थ सु ममल पयं ।
षट् कमलह तह अंगदि अंगह, आयरन धम्म तं मुक्ति पयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। ११ ।।
।। उव उवन ।।

(जिनु जिनय) वीतरागी पद को जीतना अर्थात् निर्ग्रन्थ साधु पद धारण करके **(अर्थति)** प्रयोजनीय रत्नत्रयमयी **(सु ममल पयं)** अपने ममल पद में **(आयरन)** आचरण करना **(आकिंचन)** उत्तम आकिंचन्य धर्म है **(षट् कमलह तह)** तथा षट् कमल की साधना के द्वारा **(अंगदि अंगह)** सर्वांग शुद्ध स्वभाव रूप **(आयरन धम्म)** धर्म में आचरण **(तं मुक्ति पयं)** मुक्ति पद को देने वाला है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय से चौबीस प्रकार के परिग्रह का त्याग कर निःस्पृह आकिंचन्य निर्ग्रन्थ वीतरागी हो जाना उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

बंभ चरन आयरन अरुह रुइ, षट् रमन रयन सुइ जिनय जिनं ।
अबंभ रमन सुइ विलय सहज जिनु, अन्मोय न्यान सुइ बंभ पयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। १२ ।।
।। उव उवन ।।

(अरुह रुइ) अरिहंत अर्थात् परमात्म स्वरूप में रुचि पूर्वक **(आयरन)** आचरण करना **(बंभ चरन)** उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है **(षट् रमन)** षट् रमन अर्थात् छह प्रकार से स्वरूप रमण की साधना के द्वारा **(सुइ रयन)** अपने रत्नत्रयमयी **(जिनं जिनय)** जिनेन्द्र स्वरूप को जीतो अर्थात् प्रकट करो **(सहज जिनु)** सहजानन्द जिन स्वभाव में रहो, इससे **(अबंभ रमन)** अब्रह्म रूप पर पर्याय में रमण करना **(सुइ विलय)** स्वयं विला जायेगा **(अन्मोय न्यान)** ज्ञान स्वभाव के आश्रय से **(सुइ पयं)** निज पद में रहना ही **(बंभ)** ब्रह्मचर्य धर्म है।

सार सिद्धांत – स्वभाव के आश्रय पूर्वक कुशील पाप का त्याग और पाँच इन्द्रियों के २७ विषयों पर विजय प्राप्त करना, ब्रह्म स्वरूप में चर्या करना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है।

दह विहि आयरन सुयं जिन रमनं, भय षिपनिकु सुइ अमिय रसं ।
तारन तरन सु विंद रमन जिनु, अन्मोय समय सिहु मुक्ति जयं ।।
उव सम षिम रमन सु ममल पयं ।। १३ ।।
।। उव उवन ।।

(सुयं जिन रमनं) अपने जिन स्वभाव में रमण करना **(दह विहि आयरन)** दशलक्षण धर्म का आचरण है **(सुइ अमिय रसं)** अतीन्द्रिय अमृत रस का पान करने से **(भय षिपनिकु)** समस्त पर्यायी भय क्षय हो जाते हैं **(तारन तरन सु)** अपने तारण तरण **(जिनु)** जिन स्वभाव की **(विंद)** निर्विकल्प स्वानुभूति में **(रमन)** रमण करो **(अन्मोय समय)** स्वसमय शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय से **(सिहु)** शीघ्र ही अर्थात् अल्प समय में ही **(मुक्ति जयं)** मुक्ति की प्राप्ति होती है।

भावार्थ – धम्म आयरन फूलना, आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री भय षिपनिक ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ की सत्त्याशीवीं फूलना है। इस फूलना में धर्म के दश लक्षणों का उत्कृष्ट स्वरूप निरूपित किया गया है। धम्म आयरन फूलना को लोक भाषा में धर्माचरण

फूलना भी कहा जाता है। जिसका अर्थ है धर्म और धर्म के लक्षणों में आचरण का स्वरूप दर्शन कराने वाली फूलना।

आचार्य कहते हैं कि गुणों में आचरण करना ही धर्म का आचरण है। ज्ञानमयी पद में आचरण करना अनंत गुणों के निधान आत्म स्वरूप में चर्या का प्रतीक है। रागादि भावों का परिहार कर तिअर्थमयी आत्म पद में निमग्न रहना सच्चा तपश्चरण है। परमात्म स्वरूप के आश्रय से निर्विकल्प स्वानुभूति, शून्य स्वभाव में रमण करने से रागादि भावों की विषमता और संसार के परिभ्रमण का अंत हो जाता है।

ज्ञानी जानता है कि जगत पूज्य अरिहंत सिद्ध भगवंतों के समान परम शुद्ध निश्चय से मैं परमात्म स्वरूप शुद्धात्मा हूँ। इसी महिमामय स्वभाव का अनुभव करते हुए आत्मार्थी साधक सम्यग्दर्शन स्वरूप उत्तम संज्ञा को प्राप्त होता है। पुनश्च, इस उत्तम संज्ञा के साथ क्रोधादि विकारों के अभाव होने पर क्षमा आदि गुण प्रगट होते है इन्हें दशलक्षण धर्म कहा जाता है। दशलक्षण धर्म के नाम इस प्रकार हैं – उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य।

धर्म को चार प्रकार से निरूपित किया गया है – १. वस्तु का स्वभाव धर्म है। २. उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म है। ३. रत्नत्रय धर्म है। ४. जीवों की रक्षा रूप दया अहिंसा धर्म है। धर्म अनेक नहीं होते, धर्म तो एक ही होता है। रागादि विभाव रहित रत्नत्रयमयी चेतना लक्षण स्वरूप वस्तु स्वभाव एक अखंड धर्म है। इसके आश्रय पूर्वक क्रोधादि विकारों का अभाव होता है और उत्तम क्षमा आदि अनेक गुण प्रगट होते हैं। इन गुणों की भी धर्म संज्ञा है। दशलक्षण धर्म इसी के अंतर्गत आता है।

दशलक्षण धर्म का स्वरूप

१. उत्तम क्षमा धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – अपने प्रति अपराध करने वालों का शीघ्र ही प्रतिकार करने की सामर्थ्य होते हुए भी जो पुरुष अपने उन अपराधियों को क्षमा करता है वह उत्तम क्षमा का धारी विज्ञ पुरुष है। अथवा क्रोध के निमित्त उपस्थित होने पर भी जो क्रोध नहीं करता यही उत्तम क्षमा धर्म है।

निश्चय अपेक्षा – क्रोधादि समस्त आस्रव भाव हैं इनका त्याग कर ज्ञानमयी अमृतरस से परिपूर्ण ममल पद में ठहरना उत्तम क्षमा धर्म है।

२. उत्तम मार्दव धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – जो मनस्वी पुरुष कुल, जाति, रूप, तप, बुद्धि, शास्त्र और शील आदि में रंचमात्र भी घमंड अथवा अहंकार नहीं करता है उसको उत्तम मार्दव धर्म होता है। उत्कृष्ट ज्ञानी और उत्कृष्ट तपस्वी होते हुए भी जो मद् नहीं करता वह मार्दव धर्म रत्न का धारी है।

निश्चय अपेक्षा – विभाव परिणामों की गहलता से परे होकर परम दैदीप्यमान चैतन्य मूर्ति जिन स्वभाव के प्रति समर्पित होना, परोन्मुखी दृष्टि का त्याग करना उत्तम मार्दव धर्म है।

३. उत्तम आर्जव धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – जो विचार हृदय में स्थित है, वही वचन में रहता है तथा वही बाहर फलता है अर्थात् शरीर से भी तदनुसार ही कार्य किया जाता है यह आर्जव धर्म है। इसके विपरीत दूसरों को धोखा देना अधर्म है। योगों का वक्र न होना आर्जव धर्म है।

शुभ विचार वाला जो मनस्वी प्राणी कुटिल भाव व मायाचारी के परिणामों को छोड़कर शुद्ध हृदय से चारित्र का पालन करता है वह भव्य जीव आर्जव धर्म का धारी होता है।

निश्चय अपेक्षा – योग की वक्रता के साथ – साथ उपयोग की अस्थिरता को छोड़कर ज्ञान विज्ञानमयी सहज सरल ममल स्वभाव में रहना उत्तम आर्जव धर्म है।

४. उत्तम सत्य धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – श्री जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार आचारों का पालन करने में असमर्थ होते हुए भी जिन वचनों का यथावत् कथन करना, सिद्धांत से विपरीत कथन नहीं करना यह उत्तम सत्य है। धर्म की वृद्धि के लिये धर्म सहित हितमित प्रिय वचन कहना उत्तम सत्य धर्म है। इस धर्म के व्यवहार की आवश्यकता शिष्य समुदाय के लिये ज्ञान चारित्र सिखाने के लिये होती है।

निश्चय अपेक्षा – शरीरादि अचैतन्य संयोग और रागादि असत् भावों को त्याग कर त्रिकाली शाश्वत सत्स्वरूप की अनुभूति करना एवं उसी में लीन होना उत्तम सत्य धर्म है।

५. उत्तम शौच धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – धन आदि संयोगी पदार्थों में यह मेरे हैं ऐसी अभिलाषा रूप बुद्धि ही मनुष्य को संकटों में डालती है, इस ममत्व को हृदय से दूर करना ही शौच धर्म है। जो जीव समभाव पूर्वक संतोष रूपी जल से मल समूह को धो देते हैं वह मनस्वी प्राणी शौच धर्म के धारी होते हैं।

निश्चय अपेक्षा – सम्यग्ज्ञान पूर्वक सहज स्वभाव में रमण करना, अतीन्द्रिय अमृत रस का भोग करना, इच्छा और रागादि का भोग विलय हो जाना उत्तम शौच धर्म है।

६. उत्तम संयम धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह का त्याग, मन वचन काय रूप व्यापार से निवृत्ति, इन्द्रिय विषयों से विरक्ति, कषायों पर विजय और व्रतादि का पालन करना संयम धर्म है।

निश्चय अपेक्षा – मन के समस्त संकल्प – विकल्पों से मुक्त होकर ज्ञाता स्वभाव में रमण करना, आत्मा का आत्मा में संयमन करना उत्तम संयम धर्म है।

७. उत्तम तप धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – अपनी शक्ति को न छिपाकर काय क्लेश आदि करना तप है। जो समभाव से युक्त मोक्षार्थी जीव इस लोक और परलोक के सुख की अपेक्षा न करके अनेक प्रकार का काय क्लेश करता है उसको निर्मल तप धर्म होता है।

निश्चय अपेक्षा – '' समस्त रागादि इच्छा परिहारेण स्व स्वरूपे प्रतपनं विजयनं इति तपः ''। समस्त रागादि भाव और इच्छा का परिहार कर स्व स्वरूप में लीन रहना, अपने आपमें प्रतपन करना उत्तम तप धर्म है।

८. उत्तम त्याग धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – जो मिष्ट भोजन को, राग – द्वेष को उत्पन्न करने वाले उपकरण को और ममत्व भाव के उत्पन्न होने में निमित्तभूत वसति को छोड़ देता है उस मुनि को उत्तम त्याग धर्म होता है।

निश्चय अपेक्षा – समस्त पर पर्यायों का त्याग कर, भय शल्य शंकाओं से रहित होकर अमृतमयी

आत्म स्वभाव में रमण करना उत्तम त्याग धर्म है। (धन आदि पर पदार्थों से ममत्व और राग को छोड़ना त्याग है। पर पदार्थों में मम भाव के अभाव पूर्वक योग्य आहार औषधि आदि पात्रों को देना दान है।

९. उत्तम आकिंचन्य धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – '' मेरा कुछ नहीं है '' ऐसे अभिप्राय पूर्वक संपूर्ण परिग्रह का त्याग करना आकिंचन्य धर्म है। जो मुनि तीन प्रकार के परिग्रह को अर्थात् १. चेतन परिग्रह (संयोगी जीव) २. अचेतन परिग्रह (धन, मकान आदि) ३. मिश्र परिग्रह (नगर, ग्राम आदि) का त्याग कर रागादि विभावों से परे होकर निश्चिंतता से आचरण करता है उसको आकिंचन्य धर्म होता है।

निश्चय अपेक्षा – संयोगी जीव और संयोगी पदार्थों में ममत्व भाव के त्याग पूर्वक प्रयोजनीय रत्नत्रयमयी ममल पद की आराधना करना। षट्कमल के माध्यम से सर्वांग ज्ञान से दैदीप्यमान परमात्म स्वरूप का ध्यान करना और वीतराग भाव में आचरण करना उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

१०. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म –

व्यवहार अपेक्षा – जो साधु अथवा साधक अपने शरीर से निर्ममत्व होता हुआ, विषयाभिलाषा का त्याग कर इन्द्रिय विजयी होता है तथा वृद्धा आदि स्त्रियों को क्रम से माता, बहिन और पुत्री के समान समझता है वह ब्रह्मचारी होता है। नौ बाड़ सहित ब्रह्मचर्य का पालन करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

निश्चय अपेक्षा – ब्रह्म शब्द का अर्थ निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा है, इस आत्मा में चर्या करना, लीन रहना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है।

पर्यूषण शब्द की व्याख्या

पर्व का अर्थ गांठ ,अवसर या संधिकाल भी होता है। जो किसी आध्यात्मिक गहराई से हमें जोड़े वह पर्व कहलाता है।

पर्यूषण शब्द की व्याख्या – '' परिआसमन्तात् उष्यन्ते दह्यन्ते पाप कर्माणि यस्मिन् तत् पर्यूषणम् '' अर्थात् पाप और राग – द्वेष रूप आत्मा में रहने वाले कर्मों को जो सब तरफ से जलाये, तपाये, नष्ट करे वह है पर्यूषण। जैसे – बाहर की किसी अशुद्ध वस्तु को रसायन लगाकर शुद्ध बना लिया जाता है इसी प्रकार इन धर्म के दशलक्षणों के रसायनों से हम अपनी आत्मा को शुद्ध, विशुद्ध और परिमार्जित करते हैं। आत्मा को रागादि विभाव परिणामों और काषायिक विकारों से दूर करके समुज्ज्वल पवित्र और धर्ममय बनाने का अपूर्व अवसर है पर्यूषण।

श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी में दश लक्षणधर्म

दहविहि धम्मं झायदि वर उत्तमषिमा न्यान संजुत्तं। मद्दव अज्जव सुद्धं सत्तं सउच्च संजम तप त्यागं॥३६७॥

आकिंचन बंभवयं, दहविहि धम्मं च सुद्ध चरनानि। झायंति सुद्ध झानं, न्यान सहावेन धम्म संजुत्तं॥३६८॥

उत्तम ऊर्ध सहावं षिम षिपनिक स्रेणिलय सभावं। मद्दवमग उवएसं अज्जव उवसमइ सरनि संसारे॥३६९॥

सत्तं सद्भाव रूवं, सौचं विमल निम्मलं भावं। संजम मन संजमनं, तव पुन अप्प सहाव निद्दिट्ठं॥ ३७०॥

त्यागं न्यान सहावं, आकिंचन धम्म धुरा वर धरनं। बंभं बंभ सरूवं, न्यानमयं दहविहि धम्मं॥ ३७१॥

दहविहि धम्म उवएसं धरयति धम्मं च जान परमत्थं।परिनाम सुद्ध करनं धरयंति धम्मं मुनेयव्वा॥३७२॥

[सम्यक्दृष्टि ज्ञानी] **(दहविहि धम्मं झायदि)** दशलक्षण धर्म को **(झायदि)** ध्याता है, साधना करता है **(वर)** श्रेष्ठ **(न्यान)** सम्यग्ज्ञान सहित **(उत्तम षिम)** उत्तम क्षमा धर्म को **(संजुत्तं)** धारण करता है **(मद्दव अज्जव सुद्धं)** उत्तम मार्दव, आर्जव **(सत्तं सउच्च संयम तप त्यागं)** सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग का आराधन करता है। (३६७)

[सम्यक्दृष्टि ज्ञानी] **(आकिंचन)** आकिंचन **(च)** और **(बंभवयं)** ब्रह्मचर्य व्रत सहित **(दहविहि धम्मं)** दशलक्षण धर्म को **(सुद्ध चरनानि)** शुद्ध चारित्र अर्थात् सम्यक्चारित्र का अंग जानते हुए **(न्यान सहावेन)** ज्ञान स्वभाव के आश्रय पूर्वक **(सुद्ध झानं)** शुद्ध ध्यान में **(धम्मं)** धर्म को **(झायंति)** ध्याते हैं [और] **(संजुत्तं)** साधना में लीन रहते हैं। (३६८)

(ऊर्ध सहावं) ऊर्ध्वगामी अथवा श्रेष्ठ स्वभाव में लीन होकर वीतरागी योगी **(षिपनिक श्रेणिलय)** क्षपक श्रेणी में आरोहण करते हैं **(सभावं)** स्वभाव के आश्रय पूर्वक [वैसी ही वीतरागता का अंश प्रगट होना] **(उत्तम)** उत्तम **(षिम)** क्षमा धर्म है **(उवएसं)** जिनेन्द्र भगवान के उपदेशानुसार **(मग)** मोक्षमार्ग पर चलना **(मद्दव)** उत्तम मार्दव है **(संसारे)** संसार में **(सरनि)** जन्म – मरण रूप परिभ्रमण का **(उवसमइ)** उपशमित हो जाना **(अज्जव)** उत्तम आर्जव धर्म है। (३६९)

(रूवं) आत्म स्वरूप का **(सद्भावं)** सद्भाव अर्थात् त्रिकाल एक रूप बने रहना यही **(सत्तं)** सत्य धर्म है **(विमल निम्मलं भावं)** विमल निर्मल भाव का प्रगट होना **(सौच)** शौच धर्म है **(संजम मन संजमनं)** मन का संयमन करना संयम धर्म है **(पुन)** और [पुनश्च] **(अप्प सहाव)** आत्म स्वभाव में लीनता को **(तव)** तप धर्म **(निद्दिट्ठं)** निर्दिष्ट किया अर्थात् कहा गया है। (३७०)

(त्यागं न्यान सहावं) ज्ञान स्वभाव में जाग्रत रहना त्याग धर्म है **(वर)** श्रेष्ठ **(धम्म)** वीतराग धर्म की **(धुरा)** धुरा को **(धरनं)** धारण करना अर्थात् निर्ग्रन्थ वीतरागी होना **(आकिंचन)** आकिंचन्य धर्म है **(बंभ सरूवं)** ब्रह्म स्वरूप में चर्या करना **(बंभं)** ब्रह्मचर्य धर्म है [इस प्रकार] **(दहविहि धम्मं)** दशलक्षण धर्म **(न्यान मयं)** ज्ञान मय हैं। (३७१)

(च) और [इस प्रकार] **(दहविहि धम्म उवएसं)** दशलक्षण धर्म का उपदेश दिया, सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(धम्मं)** धर्म को **(परमत्थं)** कल्याणकारी **(जान)** जानकर अर्थात् ज्ञानपूर्वक **(धरयति)** धारण करते हुए **(परिनाम सुद्ध करनं)** परिणामों की शुद्धि में वृद्धि करने के लिये **(धम्मं)** धर्ममय **(धरयंति)** जीवन जीते हैं, ऐसा **(मुनेयव्वा)** जानो। (३७२)

श्री तारण तरण

बृहद् मंदिर विधि - धर्मोपदेश

तत्त्व मंगल

देव को नमस्कार

तत्त्वं च नन्द आनन्द मउ , चेयननन्द सहाउ ।
परम तत्त्व पद विंद पउ, नमियो सिद्ध सुभाउ ।।

गुरू को नमस्कार

गुरु उवएसिउ गुपित रुइ, गुपित न्यान सहकार ।
तारन तरन समर्थ मुनि, गुरु संसार निवार ।।

धर्म को नमस्कार

धम्मु जु उत्तउ जिनवरहं, अर्थ तिअर्थह जोउ ।
भय विनासु भवु जु मुनहु, ममल न्यान परलोउ ।।
(देव को, गुरु को, धर्म को नमस्कार हो)

: दोहा :

ॐकार से सब भये, डार पत्र फल फूल ।
प्रथम ताहि को वंदिये, यही सबन को मूल ।।

: श्लोक :

ॐकारं विन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिन: ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नम: ।।

: चौपाई :

ॐकार सब अक्षर सारा,पंच परमेष्ठी तीर्थ अपारा ।
ॐकार ध्यावे त्रैलोका, ब्रह्मा विष्णु महेसुर लोका ।।
ॐकार ध्वनि अगम अपारा, बावन अक्षर गर्भित सारा ।
चारों वेद शक्ति है जाकी, ताकी महिमा जगत प्रकाशी ।।
ॐकार घट घट परवेसा, ध्यावत ब्रह्मा विष्णु महेशा ।
नमस्कार ताको नित कीजे, निर्मल होय परम रस पीजे ।।

प्रारम्भ कैसे करें ?

तत्त्व मंगल, मंगल स्वरूप है। इसके स्मरण करने से मंगल होता है।''जय नमोऽस्तु'' कहकर तत्त्व मंगल प्रारम्भ करना चाहिये। जय नमोऽस्तु का अर्थ है– जय हो, नमस्कार हो। यह अपने इष्ट के प्रति बहुमान का सूचक है।

: तत्त्व मंगल का अर्थ :

देव वंदना –

शुद्धात्म तत्त्व नन्द आनन्दमयी चिदानन्द स्वभावी है। यही परमतत्त्व निर्विकल्पता युक्त विन्द पद है जिसे स्वानुभव में प्राप्त करते हुए सिद्ध स्वभाव को नमस्कार करता हूँ।

गुरूवंदना –

सच्चे गुरू गुप्त रूचि अर्थात् आत्म श्रद्धान, स्वानुभूति का उपदेश देते हैं और गुप्त ज्ञान (आत्मज्ञान) से सहकार कराते हैं। ऐसे स्वयं तरने और दूसरों को तारने में समर्थ (निमित्त) वीतरागी मुनि सद्‌गुरू ही संसार से पार लगाने वाले हैं।

धर्म की महिमा –

धर्म वह है जो जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर भगवंतों ने कहा है। क्या कहा है ? कि अपने प्रयोजनीय रत्नत्रयमयी स्वभाव को संजोओ यही धर्म है। जो भव्य जीव रत्नत्रय स्वरूप का मनन करते हैं उनके भय विनस जाते हैं और परलोक अर्थात् आगामी काल में उन्हें ममल ज्ञान, पूर्ण ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

दोहा का अर्थ –

'ॐकार' सबके मूल में है अर्थात् वृक्ष की जड़ के समान है, इसी से डालियां, पत्ते, फल, फूल सब प्रगट होते हैं इसलिये मैं सर्वप्रथम ॐकार की वंदना करता हूँ।

श्लोक का अर्थ –

योगीजन विन्दु संयुक्त ॐकार का नित्य ध्यान करते हैं। यह ॐकार सर्व इच्छाओं की पूर्ति करने वाला और मोक्ष भी देने वाला है। ऐसे ॐकार के लिये बारम्बार नमस्कार है।

चौपाई का अर्थ –

ॐकार समस्त अक्षरों का सार है, यही पंच परमेष्ठीमयी अपार तीर्थ स्वरूप है।
तीनों लोकों के समस्त जीव ॐकार का ध्यान करते हैं तथा इस लोक में ब्रह्मा विष्णु महेश भी ॐकार को ध्याते हैं।
ॐकार ध्वनि अरिहंत भगवान की निरक्षरी दिव्य वाणी अगम और अपार है। जिसका सार बावन अक्षरों में गर्भित है।
चारों वेद अर्थात् चारों अनुयोग इसी की शक्ति हैं। जिसकी महिमा जगत में प्रकाशमान हो रही है।
ॐकार स्वरूपी शुद्धात्मा जो घट – घट में निवास कर रही है। ऐसे शुद्धात्मा का ब्रह्मा विष्णु महेश भी ध्यान करते हैं।
ऐसे ॐकार स्वरूप शुद्धात्मा व ॐकारमयी दिव्य वाणी को हमेशा नमस्कार करते हुए निर्मल होकर अमृत रस का पान करो।

: श्लोक :

देव देवं नमस्कृतं, लोकालोक प्रकासकं ।
त्रिलोकं भुवनार्थं जोति, उवंकारं च विन्दते ।।
अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानांजनश्लाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नम: ।।
श्री परम गुरवे नम:, परम्पराचार्येभ्यो नम: ।।

विशेष : तत्त्व मंगल के पश्चात् प्रथम दिन श्री ममलपाहुड जी ग्रंथ का धम्म आयरन फूलना तथा श्री तीनों बत्तीसी का पृष्ठ क्रमांक १६ पर निर्देशित अस्थाप की विधि के अनुसार अस्थाप करें तत्पश्चात् धर्मोपदेश का वांचन करें। शेष दिनों में प्रात: काल धम्म आयरन फूलना, श्री पंडितपूजा जी, श्री कमल बत्तीसी जी की गाथायें पढ़ें । रात्रि में लघु मंदिर विधि करें, तत्त्व मंगल और विनती फूलना या अन्य कोई भी फूलना का वांचन करने के पश्चात् श्री मालारोहण जी ग्रंथ की प्रतिदिन ३-३ गाथाओं का वांचन करें।

श्री धर्मोपदेश :

श्री धर्मोपदेश अतुल, अनिर्वचनीय और महादीर्घ कहें केवली पुरुष कहने सामर्थ्य, त्रैलोक्यनाथ, अचिन्त्य चिंतामणि चिन्ता कर रहित हैं। वे भगवान स्वयं ज्ञाता,सिद्ध के जावन हारे, तीन ज्ञान मय उत्पन्न होय हैं। परिहरैं लिंग-जो तीन लिंग को परिहार कर फिर जन्म नहीं धरैं हैं।

अचिन्त्य व्यक्त रूपाय, निर्गुणान् महात्मने ।
जगत सर्व आधार, मूर्ति ब्रह्मने नम: ।।

ऐसे ब्रह्म स्वरूप मूर्ति को मैं नमस्कार करता हूँ। फिर भगवान का उपदेश्या धर्म कैसा है ?

धर्मं च आत्म धर्मं च, रत्नत्रयं मयं सदा ।
चेतना लक्षणो जेन, ते धर्मं कर्म विमुक्तयं ।।

(श्री तारण तरण श्रावकाचार जी गाथा -१६९)

उन भगवान ने आत्म धर्म रूप धर्म की प्रवर्तना की, जिससे अनेकानेक भव्य प्राणी रागादिक विभाव परिणामों को शमन करके आत्म संयम द्वारा शुभ गति को प्राप्त भये हैं। वे भगवान तथा उनका कथित यह जिन धर्म अपने शरण में आये हुए प्राणी मात्र पर सहज स्वभाव ही से दयालु और अनेक सिद्धि का करनहारा है।

उल्टो जीव अनादि को, अब सुल्टन को दाव ।
जो अबके सुल्टे नहीं, तो गहरे गोता खाव ।।

पंचमज्ञान धर्तार, विवेक संपूर्ण, दया दृष्टि, दयाल मूर्ति, कृपानिधान,सौ इन्द्र कर वंदित, श्री परम गुरू तीर्थंकर भगवान आप तरैं औरन को तारैं हैं।

भवणालय चालीसा, व्यंतर देवाण होंति बत्तीसा ।
कम्पामर चौबीसा, चंदो सूरो णरो तिरियो ।।

ऐसे सौ इन्द्र कर वन्दित श्री परम गुरु, तिनको चलो सम्यक्त्व उपदेश, सो उपदेश - अनंत प्रवेश। सम्यक्त्व उपदेश कैसा है - जिस उपदेश की धारणा से अनंते जीव मुक्ति प्रवेश होते आये हैं और होवेंगे। सो कैसी है सम्यक्त्व की महिमा -

श्लोक का अर्थ –
जो परमात्मा ॐकार स्वरूप का अनुभव करते हैं, लोक और अलोक के प्रकाशक हैं। तीन लोक रूपी भुवन को प्रकाशित करने में जो ज्योति स्वरूप हैं, ऐसे देवों के देव को नमस्कार करता हूँ।
अज्ञानरूपी तिमिर से अंधे जीवों के चक्षुओं (नेत्रों) को जो ज्ञानांजन रूप शलाका के द्वारा खोल देते हैं इसलिये ऐसे श्री गुरू को नमस्कार है।
श्री परम गुरू अर्थात् केवलज्ञानी तीर्थंकर भगवंतों के लिये नमस्कार है और उनकी परम्परा में जो वीतरागी आचार्य भगवंत हुए हैं उन सबके लिये नमस्कार है।

श्री धर्मोपदेश अर्थात् धर्म का उपदेश –
धर्मोपदेश तुलना रहित, वचनों से नहीं कहा जाने योग्य, महा श्रेष्ठ है, श्री केवलज्ञानी भगवान ही धर्मोपदेश के अधिकारी हैं, जो सिद्धि को प्राप्त करने वाले हैं और तीन लिंग (पुरुष, स्त्री, नपुंसक) का परिहार कर फिर संसार में जन्म धारण नहीं करते हैं।

अचिंत्य व्यक्त....... श्लोकार्थ –
जिन्होंने अचिंत्य चिंतामणी स्वरूप को व्यक्त कर लिया है। ज्ञान पूर्ण केवलज्ञान है, दर्शन केवलदर्शन है, सभी गुण अपने में परिपूर्ण और अन्य गुणों से रहित हैं। ऐसे निर्गुण महान आत्मा संपूर्ण जगत के आधार अर्थात् संसार के प्राणी मात्र को कल्याण का मार्ग बताने वाले ब्रह्म मूर्ति केवलज्ञानी अरिहंत सर्वज्ञ परमात्मा को नमस्कार करता हूँ।

धर्मं च .... श्लोकार्थ –
आत्म धर्म ही सच्चा धर्म है, जो हमेशा रत्नत्रयमयी और चैतन्य लक्षण से पूर्ण है वह धर्म अर्थात् चेतना लक्षणमयी शुद्ध स्वभाव समस्त कर्मों से रहित है।

उल्टा श्री पुलट या उलट श्री पुलट –
उपरोक्त वाक्य के भाव को स्पष्ट करने वाला यह दोहा है। जिसका अर्थ है कि–यह जीव अनादि काल से अज्ञान मिथ्यात्व के कारण उल्टा हो रहा है, विपरीत मार्ग में चल रहा है। मनुष्य भव में अब सुलटने का, मोक्षमार्ग में चलने का अवसर है और यदि इस जन्म में नहीं चेते, नहीं सुलटे तो अनंत संसार में गोते खाना पड़ेंगे। अत: सावधान ! उलट श्री पुलट।
पंचमज्ञान अर्थात् केवलज्ञान को धारण करने वाले भगवान सौ इन्द्रों से वंदनीय जिनेंद्र तारण तरण परम गुरू हैं।

भवणालय..........श्लोकार्थ –
भवनवासी देवों के ४० इन्द्र, व्यंतर देवों के ३२ इन्द्र, कल्पवासी देवों के २४ इन्द्र, ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र–चंद्रमा और सूर्य। मनुष्यों में एक–चक्रवर्ती। तिर्यंचों में एक – अष्टापद, इस प्रकार सौ इन्द्र होते हैं।

सम्मत्त सलिल पवहो, णिच्चं हियए पवट्टए जस्स ।
कम्मं वालुयवरणं, बंधुच्चिय णासए तस्स ॥

(दर्शन पाहुड गाथा– ७)

चारित्र आदिकों के द्वारा शुद्ध हुए हृदय स्थल में सम्यक्त्व रूपी सरिता का प्रवाह कर्मरूपी रेत कणों के ढेर को हटाकर चारों गतियों के बंध की प्रतारणा के नाश का कारण है।

यह सम्यक्त्वरूपी जल शांत है, शांतिदायक है। कर्म आताप से व्याकुल हुए प्राणियों के दु:ख का हरनहारा है। अपने ज्ञान और चारित्रादि को साथ लिये हुए यह मोक्षमार्ग को निष्कंटक और सुलभ करनहारा जगदेक बन्धु है। याही को ग्रहण कर अनन्ते पुरुष सिद्ध सिद्धालय को प्राप्त हुए हैं और आगे होवेंगे। मुनीश्वरों के वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं।

॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥

गतोत्सर्पिणी के चतुर्थ कालान्तर्गत चतुर्विंशति तीर्थंकरों में अंतिम तीर्थंकर ''श्री अनंतवीर्य स्वामी'' जी का प्रसाद अवसर्पिणी के चौथे कालान्तर्गत चौदहवें प्रजापति श्री नाभिराय जी के पुत्र प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ देव जी लै उत्पन्न भये। कहा प्रसाद लै उत्पन्न भये ? पंच परमेष्ठी के एक सौ तैतालीस गुण, छह यंत्र की पूजा, पचहत्तर गुण, सत्ताईस तत्वों का विचार, एक सौ आठ गुण की जाप, तीन पात्र, दान चार, त्रेपन क्रिया की विधि विचार।

अर्हन्ता छय्याला, सिद्धं अट्ठामि सूरि छत्तीसा ।
उवज्झाया पणवीसा, अठवीसा होंति साहूणं ॥
बारा पुञ्ज विशेषं, सिद्धं अट्ठामि षोडसी करणं ।
दह धम्मं दंसण अट्ठा, णाणं अट्ठामि त्रयोदशी चरणं ॥
ये पचहत्तर गुण शुद्धं,वेदी वेदंति णाण सिरि सुद्धं ।
मुक्ति सुभावं दिढ़यं, ये गुण आराह सिद्धि संपत्तं ॥
उत्तमं जिन रूवी च, मध्यमं च मति श्रुतं ।
जघन्यं तत्त्व सार्धं च,अविरतं संमिक दिस्टितं ॥
गुण वय तव सम पडिमा, दाणं जलगालणं अणत्थमियं ।
दंसण णाण चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥

श्री आदिनाथ स्वामी की पाँच सौ धनुष ऊँची वज्रमयी काया, सवा पाँच सौ धनुष ऊँचो वट वृक्ष, चौरासी लाख पूर्व की आयु होती भई। एक पूर्व की संख्या –

सत्तर लाख करोड़मित, छप्पन सहस करोड़ ।
इतनी वर्ष मिलाय कर, पूर्व संख्या जोड़ ॥

स्वामी आदिनाथ देवजू ने प्रथम २० लाख पूर्व वर्ष बालक्रीड़ा करी और ६३ लाख पूर्व वर्ष राज्य शासन में व्यतीत कर शेष एक लाख पूर्व प्रमाण आयु रही, तब आदिनाथ स्वामी संसार, देह, भोगों से विरक्त होते भये, अनित्यादि बारह भावना भावते भये। तब पाँचवें स्वर्ग से ऋषीश्वर जाति के लौकांतिक देव आयकर भगवान के ज्ञान वैराग्य की स्तुति करके भगवान को वैराग्य भावनाओं में दृढ़ करते भये। तब वे आदिनाथ स्वामी –

सम्मत्त.......श्लोकार्थ –

जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्व रूपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवर्तमान है, उसके कर्मरूपी रज–धूल का आवरण नहीं लगता तथा पूर्व काल में जो कर्म बंध हुआ हो वह भी नाश को प्राप्त होता है।

गतोत्सर्पिणी के चतुर्थ कालान्तर्गत.... –

अतीत की चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर श्री अनंतवीर्य स्वामी जी से श्रद्धा, ज्ञान, धर्म और वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर होने का प्रसाद अर्थात् धर्म संस्कार श्री आदिनाथ जी को प्राप्त हुआ। वे क्या प्रसाद लेकर उत्पन्न हुए ? उसका विवरण इस प्रकार है –

जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु का अर्थ –

जय जयकार करो, जय हो, नमस्कार हो, स्वीकार है, यह तो शाब्दिक अर्थ हुआ किन्तु जब हम श्रद्धा से यह बोलते हैं तब हृदय वीणा के तार झनझना उठते हैं सच्चा अर्थ तो वही है।

पंच परमेष्ठी के १४३ गुण, अर्हन्ता छय्याला........ श्लोकार्थ–

अरिहंत परमेष्ठी के ४६ गुण, सिद्ध के ८ गुण, आचार्य के ३६ गुण, उपाध्याय के २५ गुण और साधु के २८ गुण इस प्रकार पंच परमेष्ठी के १४३ गुण होते हैं।

छह यंत्र की पूजा –

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु यह पंच परमेष्ठी और एक जिनवाणी यह छह यंत्र कहलाते हैं।

पचहत्तर गुण, बारा पुंज........ श्लोकार्थ–

बारह पुंज अर्थात् ५ परमेष्ठी, ३ रत्नत्रय, ४ अनुयोग तथा सिद्ध के ८ गुण, सोलह कारण भावना (१६), दसलक्षण धर्म (१०), सम्यग्दर्शन के ८ अंग, सम्यग्ज्ञान के ८ अंग और १३ प्रकार का चारित्र यह ७५ गुण हैं।

ये पचहत्तर गुण ..... श्लोकार्थ–

जो जीव इन पचहत्तर शुद्ध गुणों के द्वारा ज्ञान लक्ष्मी से शुद्ध, जानने वाले ज्ञायक स्वभाव का वेदन करते हैं, मुक्ति स्वभाव में दृढ़ होते हैं, वे जीव इन गुणों की आराधना कर सिद्धि की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं।

३ पात्र, उत्तमं जिन....... श्लोकार्थ–

जिनेन्द्र भगवान के रूप के समान वीतरागी भावलिंगी साधु उत्तम पात्र हैं। मति श्रुत ज्ञान जिनका शुद्ध हो गया वे देशव्रती श्रावक मध्यम पात्र हैं और तत्त्व के श्रद्धानी अविरत सम्यक्दृष्टि जघन्य पात्र हैं।

५३ क्रिया, गुण वय ..... श्लोकार्थ–

मूलगुण –८, व्रत–१२, तप–१२, समताभाव –१, दर्शन आदि प्रतिमा –११, दान–४, पानी छानकर पीना–१, रात्रि भोजन त्याग–१, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की साधना–३, इस प्रकार श्रावकों की ५३ क्रियायें कही गई हैं।

एक पूर्व की संख्या, सत्तर लाख..... दोहा का अर्थ–

सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष को मिलाने पर जो योग आता है वह एक पूर्व की संख्या जानो। सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ (७०,५६,०००,०००००००) वर्ष का एक पूर्व होता है।

ऋषीश्वर जाति के लौकांतिक देव–

यह देव पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग में निवास करते हैं, बाल ब्रह्मचारी होते हैं, एक भवावतारी होते हैं। भगवान के मात्र दीक्षा कल्याणक के समय वैराग्य भावना की अनुमोदना करने के लिये आते हैं।

पुर पट्टन तज चले हैं निरास, ग्रन्थ छोड़ निर्ग्रंथ उदास ।
छांड़ै राज पाट परिवार, छांड़ै मंदिर ज्योति अपार ॥
सकल वस्तु मेरी कछु नाहीं, भये वैराग्य कैलासहिं जाहीं ।
वर्ष सहस्र घोर तप कीना, केवल लक्ष्मी को वर लीना ॥

तब, तप कल्याणक के निमित्त इन्द्र आयकर भगवान को विमला नामक पालकी में बैठाय उत्सव सहित आकाश मार्ग से सिद्धार्थ वन में ले गये। तहाँ चन्द्रकांत मणि की शिला ऊपर इन्द्राणी ने केसर को सांथिया रच्यो, तिस ऊपर भगवान विराजमान होय पंच चेल, चौबीस प्रकार के परिग्रह को त्याग कर पंच मुष्टि केशलौंच कर दिगम्बरी दीक्षा धार अट्ठाईस मूलगुण तथा चौरासी लाख उत्तर गुण पालते भये। कर्म निर्जरा के हेतु घोर तपश्चरण के द्वारा चार घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया।

जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु। **श्री आदिनाथ भगवान की- जय।**

तब, केवल कल्याणक के निमित्त इन्द्रों ने आयकर अड़तालीस कोस के गिरदाकार में समवशरण की रचना करी। साढ़े बारह करोड़ वाद्य बाजते भये। ऐसे महोत्सव पूर्ण समवशरण में भगवान अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते भये। भगवान के उपदेश से समवशरण के मध्य बारह कोठों में बैठे हुए असंख्य देव, मनुष्य तथा पशुओं तक ने अपने कल्याण का मार्ग ग्रहण किया। तब हर्षित आनंदित होते हुए इन्द्रों ने इन्द्रध्वज पूजा और चतुर्विध संघ ने देवांगली पूजा पढ़कर जय जयकार किया।

देवांगलीय पूजा

ॐ जय जय जय, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥
चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्च नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ २ ॥
अपराजित मंत्रोऽयं सर्व विघ्न विनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३ ॥
एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलम् ॥ ४ ॥

पुर पट्टन तज...... चौपाई का अर्थ –

श्री आदिनाथ स्वामी पुर पट्ट नगर ग्राम आदि त्याग कर विरक्त भाव से परिग्रह को छोड़ कर निर्ग्रन्थ वीतरागी होने के लिये चल दिये। समस्त राज पाट, परिवार, महल मकान, अपार धनसंपदा आदि को छोड़ दिया। अंतर में यह निर्णय था कि इन समस्त वस्तुओं में मेरा कुछ भी नहीं है। प्रभु को वैराग्य हुआ और वे तपस्या करने के लिये अयोध्या से थोड़ी दूर सिद्धार्थ वन में पहुँच गये। एक हजार वर्ष तक घोर तपशरण करके केवलज्ञान को प्राप्त किया।

पंच चेल (वस्त्र) का स्वरूप –

१. अंडज – रेशम से बने हुए वस्त्र। २. वुण्डज – कपास से बने हुए वस्त्र। ३. वंकज – वृक्ष की छाल से बने हुए वस्त्र। ४. चर्मज – मृग आदि पशुओं के चर्म से बने हुए वस्त्र। ५. रोमज – ऊन से बने हुए वस्त्र।

चौबीस प्रकार का परिग्रह –

दस बाह्य परिग्रह – खेत, मकान, सोना, चांदी, धन, धान्य, दासी, दास, बर्तन और वस्त्र। चौदह आभ्यंतर परिग्रह – मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद।

अट्ठाईस मूल गुण –

पाँच महाव्रत – अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। पाँच समिति – ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापना। पाँच इन्द्रिय निरोध – स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन्द्रिय पर विजय। छह आवश्यक – समता, स्तुति, वंदना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग। सात अन्य गुण – भूमि शयन, अस्नान, वस्त्रत्याग, केशलोंच, एक बार भोजन, खड़े होकर भोजन करना, अदंत धावन।

देवांगली पूजा का अर्थ –

ॐकार मयी पंच परमेष्ठी भगवान की जय हो, जय हो, जय हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

लोक में चार मंगल हैं – अरिहंत भगवान मंगल हैं, सिद्ध भगवान मंगल हैं, साधु परमेष्ठी मंगल हैं, केवली प्रणीत धर्म मंगल है।

लोक में चार उत्तम हैं – अरिहंत भगवान उत्तम हैं, सिद्ध भगवान उत्तम हैं, साधु परमेष्ठी उत्तम हैं, केवली प्रणीत धर्म उत्तम है।

मैं चार की शरण में जाता हूँ – अरिहंत भगवान की शरण में जाता हूँ, सिद्ध भगवान की शरण में जाता हूँ, साधु परमेष्ठी की शरण में जाता हूँ, केवली प्रणीत धर्म की शरण में जाता हूँ।

अपवित्र हो या पवित्र हो सुख रूप हो या दु:ख रूप हो (अच्छी हालत हो या खराब हो, निरोग हो या रोगी हो, धनी हो या दरिद्र हो) पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान करने से जीव सर्व पापों से छूट जाता है॥ १॥

अपवित्र हो पवित्र हो या सर्व अवस्थागत हो अर्थात् बैठा हो, खड़ा हो, लेटा हो, चलता हो, खाता पीता हो या अन्य किसी अवस्था को प्राप्त होकर भी जो परमात्मा का स्मरण करता है वह बाह्य और अंतरंग से शुद्ध हो जाता है॥ २॥

यह अपराजित (अ+पराजित) मंत्र सर्व विघ्नों का नाश करने वाला है और सर्व मंगलों में पहला मंगल माना गया है॥ ३॥

यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और सब मंगलों में पहला मंगल है॥ ४॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिन: ।
सिद्धचक्रस्य सद्‌बीजं सर्वत: प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
कर्माष्टक विनिर्मुक्तम् मोक्षलक्ष्मी निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥
विघ्नौघा: प्रलयं यान्ति शाकिनी भूत पन्नगा: ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ ७ ॥

इन्द्रध्वज पूजा

श्री मज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं, स्याद्वादनायकमनंत चतुष्टयार्हम् ।
श्री मूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु, जैनेन्द्रयज्ञ विधिरेष मयाभ्यधायि ॥ १ ॥

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय, स्वस्ति स्वभाव महिमोदय सुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाश सहजोर्जित दृङ्मयाय,स्वस्ति प्रसन्न ललिताद्‌भुत वैभवाय ॥ २ ॥

स्वस्त्युच्छलद्विमलबोध सुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभाव परभाव विभासकाय ।
स्वस्ति त्रिलोक विततैकचिदुद्‌गमाय,स्वस्ति त्रिकाल सकलायत विस्तृताय ॥ ३ ॥

अर्हत्पुराण पुरुषोत्तम पावनानि, वस्तून्य नूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवल बोधवन्हौ,पुण्यंसमग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ ४ ॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकाम: ।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,भूतार्थयज्ञ पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ ५ ॥

शास्त्र पूजा (गाथा)

संपइ सुह कारण कम्मवियारण,भवसमुद्र तारण तरणम् ।
जिनवाणि नमस्यं सत्य पयस्यम्, सग्ग मोक्ख संगम करणम् ॥ १ ॥

त्रैसट्ठ शालायभेयं सिद्धं पुराण ध्यान अवगहणं ।
वैचारित्रफलायणं प्रथमानुयोग एरस करणं ॥ २ ॥

उवाइट्ठं लोयदिढयं दह विहि प्रमाणस्स भणियं ।
करणाणुयोग एरस करणं द्वीपसमुद्दाय जिनवरगेहो ॥ ३ ॥

वैचारित्रफलायणं क्रियाणपर्म ऋद्धि सहय्याणं ।
उवासुग्गे सहय्याणं चरणाणुयोग एरस भणियं ॥ ४ ॥

मोक्खस्स करणं मोक्खं क्रिया मोक्खस्स कारणं मोक्खं ।
हेयं च हियसंती दिव्वाणुयोग एरस भणियं ॥ ५ ॥

'अर्हं' यह शब्द 'ब्रह्म' अर्थात् अरिहंत परमेष्ठी का वाचक, सिद्ध चक्र का सद्‌बीज है, सब प्रकार से मैं उसे प्रणाम करता हूँ॥ ५ ॥ ज्ञानावरणादि आठों कर्मों से रहित तथा मोक्ष लक्ष्मी में निवास करने वाले सम्यक्त्वादि गुणों सहित ऐसे सिद्ध चक्र अर्थात् अनन्त सिद्ध भगवंतों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६ ॥ हे जिनेश्वर ! आपके स्तवन करने से शाकिनी, भूत और सर्प आदि से उत्पन्न होने वाले विघ्नों के समूह नाश को प्राप्त हो जाते हैं और विष भी निर्विष हो जाता है अर्थात् जहर भी उतर जाता है ॥ ७ ॥

इन्द्र ध्वज पूजा का अर्थ–

तीन लोक के ईश्वर त्रिलोकीनाथ, स्याद्वाद विद्या के नायक, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य के धारी, केवलज्ञान लक्ष्मी के स्वामी श्रीमद् जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके मेरे द्वारा यह जिनेन्द्र स्तवन की विधि प्रारम्भ की जा रही है। हे नाथ ! आपका स्तवन निर्दोष है और पुण्य प्राप्ति का अद्वितीय कारण है ॥ १ ॥ तीन लोक के प्रधान गुरू तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान आपका मंगल हो (अर्थात् आप मंगल स्वरूप हैं। आगे भी ऐसा ही अर्थ समझना) आत्मीक स्वभाव की महिमा के उदय अर्थात् केवलज्ञान के उदय में जो भले प्रकार स्थित हैं, ऐसे वीतराग भगवान आपका मंगल हो। स्वाभाविक प्रकाश अर्थात् केवलज्ञान से वृद्धि को प्राप्त और केवलदर्शन से युक्त भगवान के लिए मंगल हो। स्वच्छ सुंदर अलौकिक समवशरण आदि वैभव से युक्त भगवान आपका मंगल हो ॥ २ ॥ उछलते हुए निर्मल केवलज्ञान रूपी अमृत के प्रवाह वाले भगवान आपका मंगल हो। स्वभाव और परभाव का भेदज्ञान द्वारा बोध कराने वाले भगवान आपका मंगल हो। तीन लोक के समस्त पदार्थों का त्रिकालवर्ती ज्ञान होने से विस्तार को प्राप्त हुए ऐसे जिनेन्द्र भगवान का मंगल हो। तीन काल में जिनका यश विस्तृत हो रहा है ऐसे भगवान का मंगल हो ॥ ३ ॥ अरिहंत भगवान पुराण पुरुषोत्तम पावन हैं। उनमें निश्चय ही संपूर्ण गुण प्रकट हो गये हैं, किसी भी वस्तु अर्थात् गुण की कमी नहीं है। ऐसे प्रकाशित विमल केवलज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्र मन से मैं समस्त पुण्य को होम करता हूँ॥ ४ ॥ आत्म यज्ञ में होम करने के लिये शुद्ध द्रव्य यथानुरूप दिगम्बर अवस्था में है। भाव की अधिक शुद्धि पाने का इच्छुक मैं ध्यान आदि अनेक साधनों का सहारा लेकर भूतार्थ पुरुष के यज्ञ को अर्थात् आत्म यज्ञ को करता हूँ॥ ५ ॥

शास्त्र पूजा गाथा का अर्थ–

सर्व संपत्ति और सुख की कारण, कर्मों का नाश करने वाली, संसार सागर से तारने के लिये नौका के समान है, ऐसी जिनवाणी को नमस्कार है। जो सत्य का प्रकाश करने वाली स्वर्ग और मोक्ष का संगम कराने वाली है ॥ १ ॥ जिसमें ६३ शलाका पुरुषों के भेदों का कथन हो (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण,९ प्रतिनारायण,९ बलभद्र) सिद्ध पुरुषों की महिमा व पुराण पुरुषों के ध्यान तप आदि ग्रहण करने का वर्णन हो। निश्चय–व्यवहार चारित्र के पालन और उसके फल आदि का कथन हो। इस प्रकार के वैराग्य प्रधान परिणामों का वर्णन करने वाला प्रथमानुयोग है ॥ २ ॥ लोक की आधार शिला अर्थात् तीन लोक और उनको घेरे हुए घन वातवलय, घनोदधि वातवलय, तनु वातवलय का स्वरूप जिसमें उपदिष्ट किया हो, दस प्रकार के प्रमाण का कथन तथा द्वीप, समुद्र और जीव के परिणाम आदि का जिनेन्द्र परमात्मा ने वर्णन किया है उसे करणानुयोग कहते हैं ऐसा ग्रहण करो अर्थात् जानो ॥ ३ ॥ निश्चय – व्यवहार रूप चारित्र का पालन और उनका फल, अनेक प्रकार क्रिया रूप आचरण, उत्कृष्ट ऋद्धि आदि सहित जिसमें उपसर्ग को सहन करने, उपसर्ग विजयी होने का वर्णन किया हो ऐसा चरणानुयोग है ॥ ४ ॥ मोक्ष के परिणाम अर्थात् शुद्ध भाव मोक्ष प्राप्त कराने वाले हैं, मोक्ष की क्रिया अर्थात् शुद्ध स्वभाव में लीनता रूप शुद्ध परिणति मोक्ष की कारण है, ऐसा जिसमें शुद्ध वर्णन हो तथा हेय अर्थात् छोड़ने योग्य और उपादेय अर्थात् हृदय में धारण करने योग्य क्या है, इसका विवेचन किया गया हो वह द्रव्यानुयोग कहा गया है ॥ ५ ॥

गुणपाठ पूजा

बारा पुंज विशेषं सिद्धं अट्ठामि षोडसीकरणं ।
दह धम्मं दंसण अट्ठा णाणं अट्ठामि त्रयोदशी चरणं ॥ १ ॥

ए पचहत्तर गुण सुद्धं वेदी वेदंति णाण सिरि सुद्धं ।
मुक्ति सुभावं दिढयं ए गुण आराह सिद्धि संपत्तं ॥ २ ॥

अरहंता छय्याला सिद्धं अट्ठामि सूरि छत्तीसा ।
उवझाया पणवीसा अठवीसा होंति साहूणं ॥ ३ ॥

वर अतिशय चौंतीसा अष्ट महाप्रातिहार्य संजुत्तं ।
नंत चतुष्टय सहियं छय्याला अरहंत ज्ञानस्य ॥ ४ ॥

मोहक्षय सम्यक्तं केवलज्ञानेन हने अज्ञानं ।
केवल दरसण दरसं अनंतवीर्य अन्तरायेन ॥ ५ ॥

सुहवं च नाम कम्मं आयुकर्म निरजर अवगहनं ।
गोत्तं अगुरुलघुत्तं अव्वावाहं च वेद वेयणियं ॥ ६ ॥

ए आइरिय अष्ट गुण दहविहि धर्मं च होय दिढ़ अप्पा ।
वारा तप छै अवासी छत्तीस गुण होंति सूरेना ॥ ७ ॥

ग्यारह अंग जु सहियं चौदह पूर्वाय निरविशेषाणं ।
पणवीसा गुणजुक्तं णाणी णाणेण तस्य उवझाया ॥ ८ ॥

दह दरसण संभेदा भेदा होंति पंच ज्ञानेया ।
तेराविधि सो चरितं अठवीसा होंति साहूणं ॥ ९ ॥

इस प्रकार इन्द्र और चतुर्विध संघ वन्दना स्तुति करते भये। तत्पश्चात् भगवान आदिनाथ ने चौरासी गणधर और चतुर्विध संघ सहित देश-देशांतरों में विहार कर आयु के अन्त में ६ दिन का योग निरोध कर माघ वदी चतुर्दशी को कैलाशगिरि से निर्वाण पद प्राप्त किया।

॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥

जो उपदेश भगवान आदिनाथ ने दिया वही उपदेश भगवान महावीर स्वामी ने दिया।

आदि में श्री आदिनाथ देव जी भये, अन्त में श्री महावीर देव जी भये। बाईस तीर्थंकर मध्यानुगामी हुए। श्री चौबीसी जी को नाम लीजे तो पुण्य की प्राप्ति होय है।

गुण पाठ पूजा का अर्थ –

बारह पुंज अर्थात् ५ परमेष्ठी, ३ रत्नत्रय, ४ अनुयोग तथा सिद्ध के ८ गुण, सोलह कारण भावना, धर्म के १० लक्षण, सम्यग्दर्शन के ८ अंग, सम्यग्ज्ञान के ८ अंग, १३ प्रकार का चारित्र ॥ १ ॥

जो जीव इन पचहत्तर शुद्ध गुणों के द्वारा ज्ञान लक्ष्मी से शुद्ध, जानने वाले ज्ञायक स्वभाव का वेदन करते हैं, मुक्ति स्वभाव में दृढ़ होते हैं, वे जीव इन गुणों की आराधना कर सिद्धि की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

अरिहंत परमेष्ठी के ४६ गुण, सिद्ध के ८ गुण, आचार्य के ३६ गुण, उपाध्याय के २५ गुण और साधु के २८ मूलगुण होते हैं ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ ३४ अतिशय (जन्म के – १०, केवलज्ञान के –१०, देवकृत – १४) ८ महा प्रातिहार्य से संयुक्त, अनन्त चतुष्टय सहित, इस प्रकार केवलज्ञानी अरिहंत भगवान के ४६ गुण होते हैं ॥ ४ ॥

सिद्ध परमेष्ठी को मोहनीय कर्म के क्षय से सम्यक्त्व प्रगटता है, केवलज्ञान की प्रगटता से अज्ञान (ज्ञानावरण कर्म) का नाश होता है। केवलदर्शन – दर्शनावरण कर्म के अभाव से और अनन्त वीर्य अन्तराय कर्म के अभाव से प्रगटता है ॥ ५ ॥

सूक्ष्मत्व गुण नाम कर्म के अभाव से प्रगट होता है, आयु कर्म के अभाव से अवगाहनत्व, गोत्र कर्म के अभाव से अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व गुण वेदनीय कर्म के अभाव से प्रगट होता है ऐसा जानो। इस प्रकार सिद्ध परमेष्ठी के आठ गुण, आठ कर्मों के अभाव होने पर प्रगट होते हैं ॥ ६ ॥

अहो ! आचार्य परमेष्ठी संवेगादि आठ गुण, उत्तमक्षमा आदि दश लक्षण धर्म, अनशन आदि बारह तप, अस्तित्व आदि छह आवश्यक का पालन करते हुए अपने आत्म स्वरूप में दृढ़ होते हैं। इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी के ३६ गुण होते हैं ॥ ७ ॥

भेद को विशेष कहते हैं और ग्यारह अंग सहित जो चौदह पूर्व को निर्विशेष अर्थात् भेद रहित सांगोपांग पूर्ण रूपेण जानते हैं, इस प्रकार जो ज्ञानी साधु ज्ञान के पच्चीस गुणों से युक्त होते हैं, उनको उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। (उपाध्याय परमेष्ठी ११ अंग, १४ पूर्व के ज्ञाता होते हैं) ॥ ८ ॥

सम्यग्दर्शन के १० भेद, सम्यग्ज्ञान के ५ भेद और १३ प्रकार का चारित्र यह साधु के २८ मूलगुण होते हैं। (पं. भूधरदास जी ने भी चर्चा समाधान में साधु के इन्हीं २८ मूलगुणों की चर्चा की है।)

वर्तमान चौबीसी

श्री ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्मप्रभु छठे जिनेश्वर ।
सप्तम तीर्थंकर भये हैं सुपारस, चन्द्रप्रभ आठम हैं निवारस ।।
पुष्पदंत शीतल श्रेयांस, वासुपूज्य अरू विमल अनंत ।
धर्मनाथ वंदत अविनीश्वर, सोलह कारण शांति जिनेश्वर ।।
कुन्थु अरह मल्लि मुनिसुव्रत वीसा, नमूं अष्टांग नमि इकवीसा ।
नेमिनाथ साहसि गिरि नेमि, सहनसील बाईस परीषह ।।
पारसनाथ तीर्थंकर तेईस, वर्द्धमान जिनवर चौबीस ।
चार जिनेन्द्र चहुँ दिशि गये, बीस सम्मेदशिखर पर गये ।।
आदिनाथ कैलाशहिं गये, वासुपूज्य चम्पापुर गये ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, पावापुरी वीर जिनराज ।।
दो धवला दो श्यामला वीर, दो जिनवर आरक्त शरीर ।
हरे वरण दो ही कुलवन्त, हेमवरण सोला इकवंत ।।
चौबीस तीर्थंकर मोक्ष गये, दश कोड़ाकोड़ी काल विल भये ।
भये सिद्ध अरू होंय अनंत, जे वन्दौं चौबीस जिनेन्द्र ।।
वन्दौं तीर्थंकर चौबीस, वन्दौं सिद्ध बसें जग शीश ।
वन्दौं आचारज उवझाय, वन्दौं साधु गुरुन के पांय ।।

: दोहा :

देव धरम गुरू को नमो, नमो सिद्ध शिव क्षेत्र ।
विदेह क्षेत्र में जिन नमो, जिनके नाम विशेष ।।

चौबीस तीर्थंकर भगवान की – जय

विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर

सीमन्धर स्वामी जिन नमों, मन वच काय हिये में धरों ।
युगमन्धर स्वामी युग पाय, नाम लेत पातक क्षय जाय ।।
बाहु सुबाहु स्वामी धर धीर, श्री संजात स्वामी महावीर ।
स्वयं प्रभ स्वामी जी को ध्यान, ऋषभानन जी कहें बखान ।।
अनन्तवीर्य सूरिप्रभ सोय, विशालकीर्ति जग कीरत होय ।
वज्रधर स्वामी चन्द्रधर नेम, चन्द्रबाहु कहिये जिन बैन ।।
भुजंगम ईश्वर जग के ईश, नेमीश्वर जू की विनय करीश ।
वीर्यसेन वीरज बलवान, महाभद्र जी कहिये जान ।।
देवयश स्वामी श्री परमेश, अजित वीर्य सम्पूर्ण नरेश ।
विद्यमान बीसी पढ़ो चितलाय, बाढ़े धर्म पाप क्षय जाय ।।

विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर भगवान की – जय

वर्तमान चौबीसी का अर्थ –

श्री ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, छटवें तीर्थंकर पद्मप्रभ भगवान हैं। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ हैं, आठवें चन्द्रप्रभ संसार से पार लगाने वाले हैं।

पुष्पदंत, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य और विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ पृथ्वी पति हैं। सोलहवें शांतिनाथ जिनेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ।

कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, बीसवें मुनिसुव्रत नाथ हैं, इक्कीसवें नमिनाथ भगवान को साष्टांग नमस्कार है। नेमिनाथ भगवान ने ऐसा पुरुषार्थ किया कि गिरनार पर्वत के शिखर पर चले गये और बाईस परीषह के विजेता हुए।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और चौबीसवें जिनेन्द्र भगवान वर्द्धमान महावीर हैं। इन चौबीस तीर्थंकरों में से चार तीर्थंकर अलग–अलग चार दिशाओं से मोक्ष गये, शेष बीस तीर्थंकर श्री सम्मेद शिखरजी से मोक्ष पधारे।

आदिनाथ भगवान कैलाश पर्वत से, वासुपूज्य भगवान चंपापुर से, नेमिनाथ भगवान गिरनार से और महावीर जिनराज पावापुरी से मुक्ति को प्राप्त हुए।

इन तीर्थंकरों में दो तीर्थंकरों – चन्द्रप्रभ और पुष्पदंत के शरीर का वर्ण धवल (सफेद) था। दो तीर्थंकरों – सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के शरीर का वर्ण हरित (हरा) था। दो तीर्थंकरों – पद्मप्रभ और वासुपूज्य के शरीर का वर्ण रक्त (लाल) था। दो तीर्थंकरों – मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ के शरीर का नीलवर्ण (श्यामल) रंग का था। शेष सोलह तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण स्वर्ण की तरह पीले रंग का था।

अवसर्पिणी के दश कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण काल में चौबीस तीर्थंकर हुए हैं, जो निर्वाण को प्राप्त हो गए हैं। अनन्त सिद्ध हो चुके हैं। अनन्त सिद्ध आगे होवेंगे। मैं चौबीसों ही जिनेन्द्र परमात्माओं की वंदना करता हूँ।

चौबीस तीर्थंकर भगवंतों की वंदना करके उन सिद्ध भगवंतों को वंदन करता हूँ जो लोक के शिखर, अग्रभाग में वास कर रहे हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु जो सच्चे गुरू हैं उनके चरण कमलों की वंदना करता हूँ।

दोहा का अर्थ –

सच्चे देव, गुरू, धर्म को नमस्कार करके शिवक्षेत्र अर्थात् मोक्ष स्थान में विराजमान सिद्ध भगवंतों को नमन करता हूँ, विदेह क्षेत्र में सदा सर्वदा विराजमान बीस तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवंतों को नमस्कार है, जिनके नाम विशेष इस प्रकार हैं –

विदेह क्षेत्र बीस तीर्थंकर स्तवन का अर्थ–

मन, वचन, काय की एकता हृदय में धारण करके श्री जिनेन्द्र सीमंधर स्वामी को नमस्कार करता हूँ, युगमंधर स्वामी के चरण युगल की वन्दना करता हूँ, जिनके नाम स्मरण करने से पाप क्षय हो जाते हैं।

बाहु सुबाहु स्वामी स्वभाव में लीनता रूप परम धैर्य धारण करने वाले हैं। श्री संजात स्वामी निज स्वभाव में लीन होने से महावीर हैं। स्वयंप्रभ स्वामी जी का ध्यान महान है, ऋषभाननजी का गुणानुवाद महिमा पूर्वक कह रहे हैं।

अनन्त वीर्य, सूरिप्रभ और विशाल कीर्ति की जग में कीर्ति हो रही है। वज्रधर स्वामी, चन्द्रधर (चन्द्रानन)और चन्द्रबाहु का जिनवाणी में कथन किया गया है।

भुजंगम और ईश्वर जी जगत के ईश्वर हैं, नेमीश्वर प्रभु की मैं विनय करता हूँ। वीर्यसेन वीर्य बल से संपन्न हैं, महाभद्र जी को तीर्थंकर कहा गया ऐसा जानो।

श्री देवयश स्वामी परमेश्वर हैं, अजितवीर्य पूर्णत्व को प्राप्त मनुष्यों के ईश्वर हैं। विदेह क्षेत्र में बीस तीर्थंकर सदा सर्वदा विद्यमान रहते हैं, ऐसी विद्यमान बीसी को भाव सहित चित्त की एकाग्रता पूर्वक पढ़ो इससे धर्म की वृद्धि होगी और पाप क्षय हो जायेंगे।

बाढ़े धर्म पाप क्षय जाय, ऐसे चौबीस तीर्थंकर जिन्होंने आठ कर्म, आठ मद, अठारह दोषों को नष्ट कर निर्वाण पद प्राप्त किया ऐसे जिनेन्द्र देव तिनको बारम्बार नमस्कार हो, ऐसे बीस तीर्थंकर विदेह क्षेत्र में सदा सर्वदा विराजमान तिनको नमस्कार कीजे तो पुण्य की प्राप्ति होय। धर्म आराध आराध्य जीव निर्वाण पद को प्राप्त होय हैं। जिनके खोटे भाव – क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चार कषाय, अष्ट मद, शंकादि आठ दोष, छह अनायतन, तीन मूढ़ता, सप्त व्यसन इत्यादि प्रपंच रूप मिथ्यात्व भाव विलीयमान हुए उन्हीं को जिन संज्ञा प्राप्त होती भई।

'एकं जिनं स्वरूपं ' एक जिन को स्वरूप सोई चौबीस जिन को, सोई बहत्तर जिन को, सोई १४९ चौबीसी को होत भयो। जो स्वरूप श्री आदिनाथ देव जी को, सोई श्री महावीर देव जी को होत भयो। भेद विज्ञान प्रत्यक्ष – प्रत्यक्ष कर दर्शायो। केवल आयु, काय अरु समवशरण लघु दीरघ होंय। तप, तेज, गुण, लक्षण, बल, वीर्य सबके एक से ही होंय हैं।

''जिन श्रेणी मार्ग कलन वीर्य '' जिन श्रेणी सो मार्ग नाहीं, कलन कहिये ध्यान सो बल नाहीं , देव सी पदवी नाहीं, दाता सो स्वरूप नाहीं, जिनने कहा दान दियो–

ये ज्ञान दानं कुरुते मुनीनां,सदैव लोके सौख्यं प्रभोक्ता।
राज्यं च सक्यं बल ज्ञान भूतै, लब्ध्वा स्वयं मुक्ति पदं ब्रजन्ति ॥

पय बारह (पंच परमेष्ठी, तीन रत्नत्रय, चार अनुयोग) उपयोग बारह (आठ ज्ञान, चार दर्शन) या प्रकार ज्ञान को ग्रहण कर मारीचिकुमार का जीव शुभ समय पाय स्थान कुण्डलपुर नगरी में श्री सिद्धार्थ राजा तथा माता श्री त्रिशला देवी के यहाँ अवतरित होता भया। महावीर भगवान का अवतार जान इन्द्रादिक देव जन्म कल्याणक महोत्सव के निमित्त भक्ति भाव सहित भगवान को गोद में लेय, पांडुक शिला पर ले जायकर, प्रभु का जन्म कल्याणक किया। तत्पश्चात् इन्द्र भगवान को माता की गोद में सौंप, स्व स्थान को प्रस्थान करता भया। श्री वीरदेव जी की ७२ वर्ष की आयु रही, जिसमें १२ वर्ष बालक्रीड़ा में और १८ वर्ष राज्य शासन में व्यतीत कर अपने समस्त राजपाट का परित्याग कर जिन दीक्षा धारण करके १२ वर्ष महान तपश्चरण कर ४२ वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया।

॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥

॥ भगवान महावीर स्वामी की–जय ॥

तब अनेकानेक देव देवियों सहित इन्द्र आयकर समवशरण की रचना करते भये। भगवान की वाणी के प्रकाशनार्थ श्री गौतम स्रोतम आदि ग्यारह गणधर आते भये। तब भगवान की दिव्य ध्वनि प्रकट होती भई।

जय हो, जय हो.......

॥ भगवान महावीर स्वामी की–जय ॥

॥ भगवान के समवशरण की –जय ॥

आठ कर्म – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय।
आठ मद – ज्ञानमद, पूजामद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऋद्धिमद, तपमद, रूपमद।
शंकादि आठ दोष – शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना।
छह अनायतन – कुदेव, कुगुरू, कुधर्म, कुदेव को मानने वाले, कुगुरू को मानने वाले, कुधर्म को मानने वाले।
तीन मूढ़ता– देवमूढ़ता, पाखंडी (गुरु) मूढ़ता, लोक मूढ़ता।

एक सौ उनचास (१४९) चौबीसी –

१४९ चौबीसी होने के बाद हुण्डावसर्पिणी काल आता है। एक हुण्डावसर्पिणी से दूसरे हुण्डावसर्पिणी के मध्य १४९० कोड़ाकोड़ी सागर का समय होता है। इसमें १४९ चौबीसी होती हैं। एक अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी १० कोड़ा कोड़ी सागर की होती है, इसलिये १४९ में १० का गुणा करने पर १४९० होते हैं। १४९ में २४ का गुणा करने पर ३५७६ होते हैं अर्थात् इतने तीर्थंकर होते हैं और १४९ में षट्काल के अनुसार ६ का गुणा करने पर ८९४ काल होते हैं।

ये ज्ञानदानं........ श्लोकार्थ

जो मुनिजनों को ज्ञान का दान करते हैं वे सदैव लोक में सुख का उत्कृष्ट रूप से भोग करते हैं तथा राज्य, शक्ति, ज्ञान बल आदि को उपलब्ध करके स्वयं मुक्ति पद को प्राप्त कर लेते हैं।

पाँच परमेष्ठी –

अरिहंत परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी और साधु परमेष्ठी।

तीन रत्नत्रय – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।
चार अनुयोग – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ।
आठ ज्ञान – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान,मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान,
कुमति ज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान।
चार दर्शनोपयोग – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन।

त्रिकाल की चौबीसी का अद्भुत योग –

श्री बृहद् मंदिर विधि – धर्मोपदेश में त्रिकाल की चौबीसी का अद्भुत योग है इसके अंतर्गत अतीत की चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर श्री अनंतवीर्य स्वामी जी से धर्म संस्कार आदि का प्रसाद लेकर श्री आदिनाथ जी उत्पन्न हुए और वर्तमान चौबीसी के अन्तिम तीर्थंकर श्री भगवान महावीर स्वामी ने भविष्य काल की चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होने का प्रसाद महाराजाधिराज राजा श्रेणिक को दिया।

मंगल

(१) चौथे काल के अन्त सो वीर जिनंद भये ।
समवशरण के हेतु सो विपुलाचल गये ॥
उपवन आये देव सो मन आनन्द भये ।
षट् ऋतु फूले फूल सो अचरज मन भये ॥
उपवन लियो है विश्राम माली ने सुध लही ।
उकटे काठ फल फूल मालती खिल रही ॥
ऐसी मालती फल फूल रहियो, सरवर हंस मोती चुनें ।
गाय व्याघ्र जहां करत क्रीड़ा, और अचरज को गिनें ॥
सहर्ष फूल लै चलो है माली, नृपति जाय सुनाइयो ।
यह देख अचरज भूप मोहे, रानी चेलना तुरत बुलाइयो ॥
निज शत्रु जो घर माहिं आवै, मान बाको कीजिये ।
शुभ ऊँची आसन मधुर वाणी, बोल कै यश लीजिये ॥
भगवान सुगुण निधान मुनिवर, देखकर मन हर्षियो ।
पड़गाह लीजे दान दीजे, रत्न वर्षा बरसियो ॥
निज श्रेणि अन्तर हिय निरन्तर, जैन जुगति सुनाइयो ।
राज्य परिग्रह छांड़ चालो, प्रिय सिद्ध मंगल गाइयो ॥

इस प्रकार हजारों श्रावक नर, नारियों के बीच जन समूह के साथ राजा श्रेणिक मान सहित रथारूढ़ हुए समवशरण में जा रहे थे, इस समय तक श्रेणिक का श्रद्धान जैन धर्म के विपरीत था तथा उन्होंने विपरीत श्रद्धान से मुनिराज के गले में सर्प डालकर सातवें नरक की गति बाँध ली थी। जब आप समवशरण के पास पहुँचे तब मानस्तम्भ देखते ही आपके हृदय का मान दूर हो गया। तब वे राजा श्रेणिक –

(२) रथ से उतर पयादे भये, जय जय करत सभा में गये ।
जब जिनेन्द्र देखे चित लाय, जन्म जन्म के पाप नशाय ॥
जय जय स्वामी त्रिभुवन नाथ, कृपा करो मोहि जान अनाथ ।
हों अनाथ भटको संसार, भ्रमतन कबहूँ न पायो पार ॥
यासे शरण आयो मैं सेव, मुझ दु:ख दूर करो जिनदेव ।
कर्म निकंदन महिमा सार, अशरण शरण सुयश विस्तार ॥
नहिं सेऊँ प्रभु तुमरे पांय, तो मेरो जन्म अकारथ जाय ।
सुरगुरू वन्दौं दया निधान, जग तारण जगपति जग जान ॥
दु:ख सागर सों मोहि निकास, निर्भय थान देहु सुख वास ।
मैं तुव चरण कमल गुण गाय, बहु विधि भक्ति करूं मन लाय ॥
दोउ कर जोड़ प्रदक्षिणा दई, निर्मल मति राजा की भई ।
श्रेणिक वन्दे गौतम पांय, नर कोठा में बैठे जांय ॥

(१) मंगल का अर्थ–

चौथे काल के अन्त में तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान महावीर स्वामी हुए और वे प्रभु समवशरण के निमित्त विपुलाचल पर्वत (राजगृही) पधारे।

विपुलाचल पर्वत के उपवन में वीतरागी देव के चरण कमल पड़ने से मन आनंदित हो गया और भगवान के पधारते ही छहों ऋतुओं के फल फूल खिल उठे यह देखकर मन में आश्चर्य हुआ।

उपवन में परम शांति छाई है, माली ने सुध लही अर्थात् खबर ली उपवन की तरफ गया और देखा कि सारे ही वृक्ष हरे – भरे हो रहे हैं, फल फूल लग रहे हैं और मालती की छटा खिल रही है।

ऐसी सुंदर मालती फल फूल रही है, सरोवर में हंस मोती चुग रहे हैं, गाय और सिंह एक साथ विचरण कर रहे हैं और भी अनेकों आश्चर्य हो रहे हैं।

माली ने अत्यंत हर्ष पूर्वक फूल लिये और राजाधिराज महाराज श्रेणिक के पास जाकर सभी समाचार कह सुनाये। यह सब देखकर राजा श्रेणिक मोहित होते हुए आश्चर्य चकित हुए और उन्होंने उसी समय रानी चेलना को बुलाया। (रानी चेलना ने विनय पूर्वक राजा श्रेणिक से कहा कि)

अपना शत्रु भी यदि अपने घर आये तो उसका सम्मान कीजिये, बैठने के लिये शुभ उच्चासन प्रदान कर मधुर वाणी बोलकर यश को प्राप्त कीजिये। (यहाँ तो वीतरागी केवलज्ञानी भगवान ही पधारे हैं)

ऐसे अनंत गुणों के निधान भगवान और वीतरागी भावलिंगी मुनिवर को देखकर मन हर्ष से भर जाये, साधु को पड़गाह कर ऐसी भक्ति से दान दीजिये कि रत्नों की वर्षा हो जाये।

(इस प्रकार प्रेरणा देते हुए) रानी चेलना ने जैन धर्म के सिद्धांत युक्तिपूर्वक श्रेणिक महाराज को सुनाये। राजा श्रेणिक ने अपने अंतर हृदय में निरंतर चिंतन किया और रानी चेलना से कहा कि प्रिय ! राज्य परिग्रह सब छोड़कर चलो और सिद्ध प्रभु के मंगल गाओ।

(२) रथ से उतर......... चौपाइयों का अर्थ–

राजा श्रेणिक रथ से उतर कर पैदल चलने लगे और जय जयकार करते हुए समवशरण (धर्म सभा) में पहुंचे। जब प्रभु महावीर स्वामी के भाव पूर्वक दर्शन किये तब जन्म–जन्म के पाप नष्ट हो गये। राजा श्रेणिक भगवान की प्रार्थना स्तुति करते हुए कहते हैं – जय हो, जय हो, हे स्वामी ! आप तीन लोक के नाथ हैं, मुझे अनाथ जानकर मुझ पर कृपा करो। मैं अनाथ होकर संसार में भटक रहा हूँ और संसार में भ्रमण करते हुए मैंने कभी भी पार नहीं पाया।

इसलिए मैं आपकी चरण शरण में आया हूँ, हे जिनदेव ! मेरा दु:ख दूर करो। आपकी महिमा से मेरे कर्मों का क्षय हो जाये यही आपकी महिमा का सार है, अशरण को शरण देने में आपके सुयश का विस्तार है।

हे प्रभु ! आप जैसे वीतरागी परमात्मा के चरण कमलों में नहीं रहूँगा तो मेरा जन्म व्यर्थ ही चला जायेगा। आप इन्द्रों, देवताओं के भी गुरू हैं, संसार के तारण हार हैं, आपको तीन लोक का त्रिलोकी नाथ जानकर हे दया के निधान ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

दु:ख रूप संसार सागर से मुझे निकालकर हे प्रभु ! मुझे निर्भय सुखरूप स्थान में वास दीजिये। मैं आपके अनन्त चतुष्टय स्वरूप आत्म गुणों की स्तुति करता हूँ और आपके चरण कमलों में बहुत प्रकार से भाव पूर्वक भक्ति करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति प्रार्थना करते हुए राजा श्रेणिक ने दोनों हाथ जोड़कर भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा दी। राजा की मति भी निर्मल हुई और राजा श्रेणिक श्री गौतम स्वामी के चरण कमलों की वंदना करके मनुष्यों के कोठा में जाकर बैठ गये।

: दोहा :

गुरू गौतम के पद कमल, हृदय सरोवर आन ।
नमो चरण युग भाव सों, करिहुं बहु विधि ध्यान ॥

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक अनेकों प्रश्न पूछते भये और भगवान की दिव्यध्वनि खिरती भई, इनकी श्रद्धा सहित वन्दना भक्ति देख गणधरादि श्रुतकेवली सन्तुष्ट होय उपदेश करते भये।

(३) समवशरण चौसंघ सो अचरज मन भयो ।
जैन धर्म पहिचान महोत्सव उठ चल्यौ ॥
हरषत वीर जिनेन्द्र, श्रेणि सन्मुख भये ।
विश्वसेन दातार, शाह पद जिन दिये ॥
शाह पद त्रैलोक जानो, तीर्थंकर गोत्र सुनाइयो ।
वीर को प्रसाद प्रगटौ, तिलक जिन चौबीसियो ॥
सोई शाह सूरो ज्ञान पूरो, दया धर्म सुनाइयो ।
अगम गम प्रवेश पहुँचे, सिद्ध मंगल गाइयो ॥
मिथ्यात्व दलन सिद्धान्त साधक, मुकति मारग जानियो ।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुण्य पाप बखानियो ॥
संसार सागर तरण तारण, गुरू जहाज विशेषियो ।
जग माहिं गुरू सम कहें बनारसी, और काहू न लेखियो ॥

भावी तत्त्व प्रसाद कौन को दियो ? महाराजाधिराज राजा श्रेणिक को दियो। राजा उप श्रेणिक के १०० पुत्र, जिनमें ४९ से लहुरे, ५० से जेठे, मध्य नायक पूरा (पूर्व) क्षेत्री बारे को पुण्य प्रताप, राजा श्रेणिक ने प्रसाद पायो। जब ३९१९ आत्माओं सहित भगवान की वन्दना स्तुति करके जय जयकार किया।

: गाथा :

श्रेणीय कथ्य नायक संतुट्ठो वीर वड्ढमानस्य ।
आदं च महापद्मो, आद उववन्न तुरिय कालम्मि ॥

हे राजा श्रेणिक ! तुम कथा के नायक होओगे अर्थात् आगामी चौथे काल के आदि में पद्मपुंग राजा के यहाँ महापद्म तीर्थंकर होओगे। तब राजा श्रेणिक ने कहा – मुनीश्वरों के वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं।

॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥

चलंति तारा प्रचलंति मंदिरं, चलंति मेरू रविचंद्र मंडलम् ।
कदापि काले पृथ्वी चलंति, सत्पुरूषस्य वाक्यं न चलंति धर्मम् ॥

अपनो पद परसत राजा श्रेणिक आनन्द पूर्ण भये । भगवान महावीर स्वामी ने केवलज्ञान होने पीछे ३० वर्ष पर्यन्त, संघ सहित विहार कर जग के जीवों का कल्याण किया। तत्पश्चात्–

आहूट महीना हीनो वर्ष चउकाल तुरिय कालम्मि ।

अर्थात् – चौथे काल के अन्त में ३ वर्ष साढ़े आठ माह शेष रहने पर भगवान महावीर ने अपनी ७२ वर्ष की आयु पूर्ण कर कार्तिक वदी चतुर्दशी की रात्रि के पिछले पहर स्थान पावापुरी से निर्वाण पद प्राप्त किया।

॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥

आशा एक दयालु की,जो पूरे सब आश ।
संसार आस सब छांड़ि के,प्रभु भये मुक्ति के वास ॥

गुरू गौतम ..... दोहा का अर्थ -

गुरू गौतम गणधर के चरण कमलों की भक्ति, हृदय रूपी सरोवर में धारण करके भावपूर्वक चरण युगल की वंदना करते हुए बहुत प्रकार के ध्यान धारणा को धारण करता हूँ।

(३) मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका चार संघ सहित समवशरण की महिमा देखकर सभी भव्य आत्माओं के मन में अचरज पूर्ण आनन्द हुआ। जैन धर्म की महिमा बढ़ाने वाला, पहिचान कराने वाला महोत्सव प्रारम्भ हो गया। यहां 'उठ चल्यौ' के दो अभिप्राय हैं १-प्रारम्भ हो गया। २-बिहार करने लगा। राजा श्रेणिक अत्यंत हर्ष पूर्वक वीतरागी जिनेन्द्र महावीर भगवान के सन्मुख हुए। (राजा श्रेणिक ने जिज्ञासा पूर्वक भगवान महावीर स्वामी से ६०,००० प्रश्न पूछे) और सम्पूर्ण जगत को जानने वाले परम दातार भगवान महावीर स्वामी ने राजा श्रेणिक को परमात्म स्वरूप जिनेन्द्र पद प्रदान किया अर्थात् (आगामी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होने की घोषणा रूप) अकता प्रसाद दिया। शाह अर्थात् परमात्म पद त्रिलोकीनाथ स्वरूप जानो, भगवान महावीर स्वामी ने कहा कि तुम्हें उच्च गोत्र संबंधी तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति का बंध हो गया है। इस प्रकार महावीर भगवान के द्वारा दिया गया प्रसाद प्रगट हुआ और इसके साथ ही जिन चौबीसी का तिलक हो गया अर्थात् एक षट्काल चक्र के चौथे काल में होने वाले चौबीस तीर्थंकर पूर्ण हुए। वही परमात्मा जो अपने स्वरूप लीनता में महा पराक्रमी पुरुषार्थी केवलज्ञान से परिपूर्ण थे जिन्होंने दया धर्म का संदेश सुनाया अर्थात् पावन दिव्य देशना प्रदान की। उन भगवान ने अगम स्वभाव को गम अर्थात् स्वानुभव प्रमाण जान लिया और अपने शुद्धात्म स्वरूप में प्रवेश कर सिद्ध स्थान को प्राप्त किया है, ऐसे सिद्ध प्रभु के मंगल गाओ।

मिथ्यात्व का दलन करके सिद्धांत के साधक बनना यही मुक्ति का मार्ग जानो। करनी-अकरनी सुगति-दुर्गति का कारण है, यही पुण्य - पाप कहा गया है। संसार सागर से स्वयं तिरने और दूसरे जीवों को तारने में गुरू को जहाज के समान विशेष जानो, बनारसीदास कहते हैं कि संसार में गुरू समान और कोई भी नहीं है।

भावी तत्त्व प्रसाद ....

राजा श्रेणिक १०० भाई थे, उनमें ४९ भाई राजा श्रेणिक से छोटे थे और ५० भाई बड़े थे; इसलिये राजा श्रेणिक को मध्यनायक कहा गया है। उन्होंने पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रताप से आगामी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होने के संस्कार रूप प्रसाद प्राप्त किया।

विशेष - ''४९ से लहुरे, ५० से जेठे '' इस वाक्य में 'से' का अर्थ से के रूप में नहीं लेना चाहिये बल्कि यह भाव पूर्ण वचन प्रवाह है कि राजा श्रेणिक से ४९ छोटे और ५० बड़े थे और तभी राजा श्रेणिक मध्य में आते हैं।

श्रेणीय कथ्य नायक........ श्लोकार्थ -

आत्म स्वरूप में संतुष्ट अर्थात् अपने शुद्ध स्वभाव में लीन वर्द्धमान महावीर भगवान ने कहा कि हे राजा श्रेणिक ! तुम कथा के नायक होओगे। चौथे काल के आदि में तुम पहले महान जगत पूज्य महापद्म तीर्थंकर होओगे।

चलंति तारा....... श्लोकार्थ-

तारागण चलायमान हो जायें, महल मंदिर चलायमान हो जायें, सूर्य चन्द्रमा सौर मंडल और अचल मेरू पर्वत चलायमान हो जाये, कदापि काले अर्थात् किसी समय पृथ्वी भी चलायमान हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं किन्तु सत्पुरुष के वाक्य और धर्म कभी भी चलायमान नहीं होता।

अपने पद परसत ...... वाक्य का अर्थ -

भगवान महावीर स्वामी ने राजा श्रेणिक को आगामी चौबीसी के पहले तीर्थंकर होने का अकता (आगामी) प्रसाद दिया अर्थात् उनके तीर्थंकर होने की घोषणा की। राजा श्रेणिक अपने पद का स्पर्श अर्थात् अनुभव करके आनन्द पूर्ण हुए ।

आशा एक ...... दोहा का अर्थ-

एक मात्र दयालु परमात्म स्वरूप की आशा करो, जो समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है क्योंकि संसार की सम्पूर्ण आशाओं को छोड़कर परमात्मा भी स्वरूप की आस करके मुक्ति में वास कर रहे हैं।

धन्य हैं वे सत्पुरुष जिनने संसार के विषय भोगों की आशा त्यागी। कैसी है संसार की आशा ?

आशा नाम नदी मनोरथ जला तृष्णा तरंगा कुला ।
राग ग्राहवती वितर्क विहगा धैर्य द्रुमध्वंसिनी ।।
मोहावर्त सुदुस्तराऽतिगहना प्रोतुंग चिंतातटी ।
तस्या पारगता विशुद्ध मनसो धन्याऽस्तु योगीश्वरा: ।।

अर्थात् धन्य हैं वे योगीश्वर जिन्होंने ऐसी आशा रूपी नदी को पार किया । हे भव्य जीवो ! आशा कीजिये तो केवल एक धर्म की कीजे और हौंस कीजे तो चारित्र की, छन्द की, फूलना भजन की, दान की, तप की, शील संयम की, यह आस हौंस के किये यह जीव मुक्ति के सुख विलसै।

सर्वथा रंज, रमन, आनन्द वांछा पूर्ण होय, कहने प्रमाण जिनेश्वर देवजी के जिन कहें, जिनके अस्थाप रूप वाणी कहें, जिन ज्योति वाणी ज्ञान श्री, कंठ कमल मुखारविन्द वाणी श्री भैया रुइया रमन जी कहें। जिन गुरुन को कहनो सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है। **।। जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ।।**

इष्ट – इष्ट उत्पन्न गोष्ठी, चर्चा बैठक विलास, पढ़ैया पढ़े अपनी बुद्धि विशेष, सुनैया सुनत है अपनी बुद्धि विशेष, पढ़ता से और वक्ता से श्रोता को लक्षण दीर्घ है। कब दीर्घ है ? जब गुण – गुण को जाने, दोष – दोष को पहिचाने, गुण को ग्रहण करे, दोष को परित्याग करे तब श्रोता को लक्षण दीर्घ है।

इष्ट ही दर्शन, इष्ट ही ज्ञान,ऐसा जानकर, हे भाई ! आठ पहर की साठ घड़ी में एक घड़ी दो घड़ी स्थिर चित्त होय, देव गुरू धर्म को स्मरण करे तो इस आत्मा को धर्म लाभ होय, कर्मन की क्षय होय और धर्म आराध आराध्य जीव परम्परा से निर्वाण पद को प्राप्त होय है। **।। जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ।।**

।। वीतराग धर्म की – जय ।।

अब कहा दर्शावत हैं आचार्य–

शास्त्र सूत्र सिद्धान्त नाम अर्थ जी :

१. **शास्त्र नाम काहे सों कहिये** – जामें शाश्वते देव, गुरू, धर्म की महिमा सहित, आचार, विचार, क्रियाओं का प्रतिपादन होय, ज्ञान की उत्पत्ति, कर्मों की खिपति, जीव की मुक्ति, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, कलन, चरन, रमन, उवन दृढ़, ज्ञान दृढ़, मुक्ति दृढ़, ऐसी त्रिक स्वभाव रूप वार्ता चले या समुच्चय वर्णन जामें होय ताको नाम शास्त्र जी कहिये। नहीं तो हे भाई ! जामें मारण ताड़न वध बंधन विदारण हिंसा रूपी वार्ता को पोषण चले, जाके श्रवण करे जीव को आर्त रौद्र ध्यान उत्पन्न होय सो कुशास्त्र कहिये। सच्चे शास्त्र वही हैं जाके सुने बोध होय तथा सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाय और कुशास्त्र रूपी वार्ता की प्रवृत्ति छूट जाय, कहा भी है ''व्यवहारे परमेष्ठी जाप,निश्चय शरण आपको आप।''

साँचो देव सोई जामें दोष को न लेश कोई ।
साँचो गुरू वही जाके उर कछु की न चाह है ।।
सही धर्म वही जहाँ करुणा प्रधान कही ।
सही ग्रन्थ वही जहाँ आदि अंत एक सो निर्वाह है ।।
यही जग रतन चार ज्ञान ही में परख यार ।
साँचे लेहु झूठे डार नरभव को लाह है ।।
मनुष्य तो विवेक बिना पशु के समान गिना ।
यातैं यह बात ठीक पारणी सलाह है ।।

२. **सूत्र नाम काहे सों कहिये**– जामें संक्षेप में ही बहुत सारभूत कथन होय, जाके सुने से जीव के मन,

आशा नाम नदी..... श्लोकार्थ–

आशा नाम की नदी है जिसमें मनोरथ अर्थात् इच्छा रूपी जल भरा हुआ है, उसमें तृष्णा की तरंगों के समूह उठ रहे हैं। इस नदी में राग के मगर और वितर्क के पक्षी धैर्य रूप आत्म शक्ति को नष्ट करने वाले हैं। इसमें मोह के छोटे–बड़े गहरे भंवर उठ रहे हैं, चिन्ताओं के ऊंचे–ऊंचे तट हैं। ऐसी आशारूपी नदी को जिन योगीश्वरों ने विशुद्ध भाव पूर्वक पार कर लिया वे योगीश्वर धन्य हैं।

मंदिर विधि–धर्मोपदेश किसने लिखा ?

आर्यिका ज्ञान श्री, कंठ कमल मुखारविंद वाणी श्री भैया रुइया रमन जी कहें। पूज्य आर्यिका कमल श्री माता जी के मार्गदर्शन में आर्यिका ज्ञान श्री और श्री रुइया रमन जी ने सबसे पहले यह मंदिर विधि धर्मोपदेश लिखा। आगे चलकर पूर्वज विद्वानों के द्वारा आवश्यकतानुसार संशोधन किए गए तथा पूर्व समय में पं.बनारसीदास जी, पं.भूधरदास जी के कुछ छंद मंदिर विधि में जोड़े गए हैं, जो अभी भी चल रहे हैं।

आठ पहर की साठ घड़ी–

एक पहर में ३ घंटा और ८ पहर में २४ घंटा होते हैं। १ घंटे में ६० मिनिट होते हैं। २४ घंटे के मिनिट बनाने के लिये २४ में ६० को गुणित करें तो १४४० मिनिट लब्ध आते हैं। २४ मिनिट की एक घड़ी होती है, अत: १४४० में १ घड़ी अर्थात् २४ मिनिट का भाग देने पर ६० लब्ध आते हैं, इस प्रकार ८ पहर में ६० घड़ी होती हैं।

अब कहा दर्शावत...... का अर्थ–

अब क्या दर्शाते हैं आचार्य ? शास्त्र सूत्र सिद्धांत का नाम अर्थात् स्वरूप और अर्थ। शास्त्र का स्वरूप क्या है ? जिसमें त्रिक स्वभाव अर्थात् तीन का समूह, जैसे सच्चे देव,गुरू,धर्म की महिमा। आचार, विचार, क्रिया। कलन (ध्यान), चरन (चारित्र), रमन (स्वरूप में लीनता)। उवन दृढ़ (सम्यक्श्रद्धान में दृढ़ता), ज्ञान दृढ़ (सम्यग्ज्ञान में दृढ़ता), मुक्ति दृढ़ (सम्यक्चारित्र में दृढ़ता) जिसमें एक त्रिक या समुच्चय वर्णन हो उसे शास्त्र कहते हैं।

व्यवहारे परमेष्ठी ...... का अर्थ–

व्यवहार में पंच परमेष्ठी शरण भूत हैं, निश्चय से आप ही आपको अर्थात् निज शुद्धात्मा ही स्वयं को शरणभूत है।

सांचो देव सोई...... छंद का अर्थ–

सच्चे देव वही हैं, जिनमें जन्म जरा मरण आदि लेश मात्र भी कोई दोष नहीं हैं। सच्चे गुरू वे हैं जिनके हृदय में सांसारिक कोई भी चाहना नहीं है। सच्चा धर्म वह है जहां करुणा दया की प्रधानता कही गई है। सच्चे शास्त्र वे हैं जिनमें प्रारंभ से अंत तक निर्विरोध एक रूप सिद्धांत का कथन है। इस प्रकार संसार में यह चार ही रत्न हैं। हे मित्र ! अपने ज्ञान में इन्हें परखो और सच्चे देव, गुरू, शास्त्र, धर्म की श्रद्धा करो, मिथ्या देव, गुरू, शास्त्र, धर्म आदि को छोड़ दो इसी में मनुष्य जन्म का लाभ है और यदि सच्चे – झूठे का मनुष्य को विवेक नहीं है तो वह पशु के समान है; इसलिये सत्य को ग्रहण करना और असत् मिथ्या को छोड़ना यही उचित बात है और यही पारणी अर्थात् ग्रहण करने, आचरण में लाने योग्य सलाह है।

सूत्र नाम....... का अर्थ–

सूत्र नाम किसको कहते हैं अर्थात् सूत्र का स्वरूप क्या है ? विस्तार की बात को जिसके द्वारा संक्षेप में कह दिया जाय उसे सूत्र कहते हैं। जैसे – तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।

वचन, काय एक रूप हो जायें, नहीं तो मन कहूँ को चले, वचन कछू कहे, काया जाकी स्थिर न होय, ताको एक सूत्र न होय। धन्य हैं – धन्य हैं श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्यजी महाराज जिनके मन, वचन, काय, उत्पन्न, हित, शाह, नो, भाव, द्रव्य यह नौ सूत्र सुधरे तथा दसवें आत्म सूत्र अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति कर चौदह सिध्दान्त ग्रन्थों की रचना करी – **॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥**

॥ श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य महाराज की–जय ॥

: गाथा :

सूत्रं जं जिन उत्तं, तं सूत्रं सुद्ध भाव संकलियं ।
असूत्रं नहु पिच्छदि, सूत्रं ससरूव सुद्धमप्पाणं ॥

(श्री ज्ञानसमुच्चयसार गाथा – ५६४)

३. **सिद्धान्त नाम काहे सों कहिये** – जामें पूर्वापर विरोध रहित सिद्धान्त रूप चर्चा हो, सप्त तत्व,नव पदार्थ, छह द्रव्य,पंचास्तिकाय ऐसे सत्ताईस तत्वों का यथार्थ निर्णय किया होय तथा आत्मोपलब्धि की वार्ता चले, ताको नाम सिद्धान्त ग्रन्थ कहिये।

आगे प्रथमानुयोग जामें २४ तीर्थंकर,१२ चक्रवर्ती,९ नारायण,९ प्रतिनारायण,९ बलभद्र, ऐसे ६३ शलाका के महापुरुषों की कथा का वर्णन होय ताको नाम प्रथमानुयोग ग्रन्थ कहिये। न जीव को आदि है न जीव को अंत है। चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते अनंत काल हो गया परन्तु अपने आदि अन्त की खबर नहीं करी । आदि कब जानिये जब यह जीव नि:शंकितादि गुण सहित सम्यक्त्व को प्राप्त हो और अंत कब जानिये, जब मोहनीय कर्म को नाशकर तेरह प्रकार का चारित्र धारण करे, बाईस परीषह जीतकर, पंच चेल, चौबीस प्रकार परिग्रह त्याग, अट्ठाईस मूलगुण धार, चार घातिया कर्मों की निर्जरा कर, केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धस्थान को प्राप्त हो, आवागमन कर रहित हो, तब अंत जानिये। धन्य है उन आचार्यों को जिनने आदि अन्त की महिमा कही।

यथा नाम तथा गुण, गुण शोभित नाम, नाम शोभित गुण। धन्य हैं वे भगवान जिनके नाम भी वन्दनीक हैं और गुण भी वन्दनीक हैं, जिनके नाम लिये अर्थ अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति होय है।

दोहा : जयमाल

नाम लेत पातक कटें, विघन विनासे जांय ।
तीन लोक जिन नाम की, महिमा वरणी न जाय ॥ १ ॥
गुण अनंतमय परमपद, श्री जिनवर भगवान ।
ज्ञेय लक्ष है ज्ञान में, अचल महा शिवथान ॥ २ ॥
अगम हती गुरू गम बिना, गुरूगम दई लखाय ।
लक्ष कोस की गैल है,पल में पहुँचे जांय ॥ ३ ॥
विघन विनाशन भय हरन, भयभंजन गुरूतार ।
तिनके नाम जो लेत ही, संकट कटत अपार ॥ ४ ॥
कठिन काल विकराल में, मिथ्या मत रहो छाय ।
सम्यक्भाव उद्योत कर, शिवमग दियो बताय ॥ ५ ॥
परम्परा यह धर्म है, केवल भाषित सोय ।
ताकी नय वाणी कथित, मिथ्या मत को खोय ॥ ६ ॥

नौ सूत्र सुधरे–

श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज के नौ सूत्र सुधरे, वे इस प्रकार हैं–
१. मन – मन के विचार पवित्र हो गये। **२. वचन –** वाणी से कोमल हित मित प्रिय वचन का व्यवहार होने लगा, कठोर कठिन वचन बोलना छूट गया। **३. काय –** शरीर संयम, तप, साधनामय हो गया। **४. उत्पन्न –** प्रयोजनभूत शुद्धात्मानुभूति की प्रगटता को उत्पन्न अर्थ कहते हैं यही सम्यग्दर्शन कहलाता है, जो उत्पन्न हो गया। **५. हित –** हितकार अर्थ अर्थात् सम्यग्ज्ञान प्रगट हो गया। **६. शाह –** परमात्म स्वरूप में लीनता रूप सहकार अर्थ अर्थात् सम्यक्चारित्र उत्पन्न हो गया। **७. नो –** नो कर्म रूप पुद्गल वर्गणायें साधना के प्रभाव से विगसित पुलकित हो गईं। **८. भाव –** भाव कर्म की धारा विशुद्ध हो गई। **९. द्रव्य –** ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मों में विशेष उपशम, क्षयोपशम और योग्यतानुरूप क्षय की स्थितियां बनीं; इस प्रकार नौ सूत्र सुधरे।

सूत्रं जं जिन......श्लोकार्थ –

सूत्र वह है जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया है। उसको सुनकर शुद्ध भाव को ग्रहण करो, असूत्र को मत देखो। अपना स्व स्वभाव शुद्धात्म स्वरूप ही सच्चा सूत्र है।

सिद्धांत नाम..... का अर्थ–

सिद्धांत नाम किसे कहते हैं अर्थात् सिद्धांत का क्या स्वरूप है ? जिसमें ''पूर्वापर विरोध रहित'' पूर्व अर्थात् पहले और अपर अर्थात् बाद में निरूपित किया गया वस्तु स्वरूप का कथन विरोध रहित हो उसे सिद्धांत ग्रंथ कहते हैं। ग्रंथ में पहले के और बाद के कथन में कोई विरोध न हो वह सिद्धांत ग्रंथ कहलाता है।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग –

१. निःशंकित, २. निःकांक्षित, ३. निर्विचिकित्सा, ४. अमूढ़ दृष्टि, ५. उपगूहन, ६. स्थितिकरण ७. वात्सल्य, ८. प्रभावना।

यथा नाम तथा गुण .... का अर्थ–

भगवान का जैसा नाम हो, वैसे उनमें गुण भी हों क्योंकि गुणों से नाम की शोभा है और नाम से गुणों की शोभा है। गुणों से शोभित होता है नाम, और नाम से शोभित होते हैं गुण। इसलिये वे भगवान धन्य हैं जिनके नाम भी वंदनीक हैं और गुण भी वंदनीक हैं। तारण पंथ में यथा नाम तथा गुण के धारी भगवान की आराधना वंदना की जाती है।

नाम लेत पातक .... स्तवन का अर्थ–

जिनके नाम स्मरण करने से पाप कट जाते हैं, विघ्न बाधायें विनस जाती हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान के नाम की महिमा का तीन लोक में वर्णन नहीं किया जा सकता अर्थात् उनकी महिमा अवर्णनीय है॥ १॥

अनन्त गुणोंमय परम पद में स्थित श्री जिनवर भगवान – सिद्ध परमात्मा हैं, जिनके ज्ञान में आत्म स्वरूप ही ज्ञेय है, उसका ही निरंतर लक्ष्य है और जो महान मोक्ष स्थान में अचल रूप से विराजमान हैं॥ २॥

मोक्ष जाने की रास्ता गुरू के ज्ञान बोध के बिना अगम थी। सद्गुरू ने कृपा करके उस रास्ते का ज्ञान करा दिया, यह ज्ञान इतना महान है कि मोक्ष जाने की लाखों कोस की गैल (रास्ता) है किन्तु सद्गुरू द्वारा दिये गये ज्ञान से एक पल में ही मोक्ष पहुंच जाते हैं॥ ३॥ (ब्रजंति मोष्यं षिनमेक एत्वं–मालारोहण –१६)

श्री गुरू तारण तरण विघ्नों का विनाश करने वाले,भयों का हरण करने और भयों को नष्ट करने वाले हैं। जो भी जीव उनका नाम स्मरण करता है उसके कठिन से कठिन संकट भी दूर हो जाते हैं॥ ४॥

इस भयानक कठिन पंचम काल में मिथ्या मत छा रहे थे। ऐसे समय में श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने सम्यक् वस्तु स्वरूप को प्रकाशित कर सच्चा मोक्षमार्ग बताया है॥ ५॥

तीर्थंकर भगवन्तों की परम्परा से चला आ रहा यह धर्म है। केवलज्ञानी भगवान ने जो वस्तु का स्वरूप कहा है, उनकी स्याद्वाद अनेकान्तमय कही गई वाणी मिथ्या मान्यता को दूर करने वाली है॥ ६॥

धन्य धन्य जिनधर्म को, सब धर्मों में सार ।
ताको पंचमकाल में, दरसायो गुरू तार ॥ ७ ॥
धन्य धन्य गुरू तार जी, तारण तुमरो नाम ।
जो नर तुमको जपत हैं, सिद्ध होत सब काम ॥ ८ ॥
जो कदापि गुरू तार को, नहिं होतो अवतार ।
मिथ्या भव सागर विषैं, कैसे लहते पार ॥ ९ ॥

(यहां शास्त्र जी की विनय के लिये ''सावधान'' हो जाना चाहिये)

अब श्री शास्त्र जी को नाम कहा दर्शावत हैं – (अस्थाप किये हुए ग्रंथ का नाम उच्चारण करें) **श्री....... नाम ग्रंथ जी ।** श्री कहिये शोभनीक, मंगलीक, जय जयवन्त, कल्याणकारी, महासुखकारी भगवान महावीर स्वामी के मुखारविन्द कण्ठ कमल की वाणी इस पंचमकाल में श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य महाराज ने प्रगटी, कथी, कही नाम दर्शाई । तिनके मति, श्रुत ज्ञान परम शुद्ध हुए, अवधि को वरन्दाजो भयो अर्थात् देशावधि ज्ञान उत्पन्न हुओ । मति श्रुत ज्ञान की विशेष निर्मलता में आपने विचारमत में – श्री मालारोहण जी, श्री पंडितपूजा जी, श्री कमल बत्तीसी जी । आचारमत में – श्री श्रावकाचार जी । सारमत में – श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी, श्री उपदेशशुद्धसार जी, श्री त्रिभंगीसार जी । ममल मत में– श्री चौबीसठाणा जी और श्री ममलपाहुड़ जी । केवलमत में – श्री खातिका विशेष जी, श्री सिद्ध स्वभाव जी, श्री सुन्न स्वभाव जी, श्री छद्मस्थवाणी जी और श्री नाममाला जी ग्रंथ की रचना करी ।इस प्रकार पाँच मतों में चौदह ग्रन्थों की रचना करी । जहाँ जैसो शब्द होय सहाय श्री गुरू तारण तरण जी को ।

॥ इति धर्मोपदेश ॥

नोट – यह धर्मोपदेश पूर्ण होने के पश्चात् अस्थाप किये हुए श्री ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ के फूलना की अचरी तक की प्रथम दो गाथा और अंतिम गाथा अथवा अन्य ग्रन्थ का अस्थाप किया हो तो प्रथम और अंतिम गाथा का सस्वर वांचन कर अर्थ सहित व्याख्या करना चाहिये पश्चात् सावधान होकर आशीर्वाद पढ़ना चाहिये ।

: आशीर्वाद :

प्रथम आशीर्वाद –

ॐ उवन उववन्न उव सु रमनं, दिप्तं च दृष्टि मयं ।
हिययारं तं अर्क विन्द रमनं, शब्दं च प्रियो जुतं ॥
सहयारं सह नंत रमण ममलं, उववन्नं शाहं ध्रुवं ।
सुयं देव उववन्न जय जयं च जयनं उववन्नं मुक्ते जयं ॥

(जयन् जय बोलिये–जय नमोऽस्तु – ३ बार)

द्वितीय आशीर्वाद –

जुगयं खण्ड सुधार रयन अनुवं, निमिषं सु समयं जयं ।
घटयं तुंज मुहूर्त पहर पहरं, द्वि – तिय पहरं ॥
चत्रु पहरं दिप्त रयनी, वर्षं सुभावं जिनं ।
वर्ष षिपति सु आयु काल कलनो, जिन दिप्ते मुक्ते जयं ॥

(जयन् जय बोलिये–जय नमोऽस्तु – ३ बार)

धन्य है धन्य है जिन धर्म अर्थात् वीतराग धर्म, जो सब धर्मो में सारभूत है जिसको इस पंचम काल में श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने दर्शाया है ॥ ७ ॥ श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज धन्य हैं, धन्य हैं। हे गुरू देव ! तारण आपका नाम है अर्थात् स्वयं तिरना और जग के जीवों को तारना आपकी विशेषता है। जो भी मनुष्य आपका स्मरण करते हैं, उनके सभी काम सिद्ध होते हैं ॥ ८ ॥ यदि कदाचित् श्री गुरू तारण तरण स्वामी जी महाराज का इस पंचम काल में अवतरण नहीं होता तो इस मिथ्या संसार सागर से हम पार कैसे पाते ? श्री जिन तारण स्वामी ने हमें समस्त रूढ़ियों और आडम्बरों से मुक्त कर भव सागर से पार होने का सम्यक् मार्ग प्रशस्त किया है ॥ ९ ॥

अब श्री शास्त्र जी ...... का अर्थ–

श्री शास्त्र जी का नाम क्या दर्शाते हैं ? यहां हाथ जोड़कर अस्थाप किये हुए ग्रंथों का सस्वर भक्ति पूर्वक नामोल्लेख करना चाहिये। जैसे – 'श्री भय षिपनिक ममल पाहुड नाम ग्रंथ जी, इसी प्रकार जिन–जिन ग्रंथों का अस्थाप किया हो उन – उन ग्रंथों का नाम स्मरण करें।

श्री कहिये ...... का अर्थ–

यहाँ श्री का अर्थ – ग्रंथ में समाहित वाणी से है। श्री अर्थात् वाणी कैसी है ? सुशोभित करने वाली, मंगल करने वाली, उमंग उत्साह बढ़ाकर स्वरूपस्थ करने वाली, कल्याण करने वाली और सुख प्रदान करने वाली है। इन पाँच विशेषणों से युक्त वाणी के लिये आगे पढ़ते हैं –'भगवान महावीर स्वामी के मुखारविन्द कण्ठ कमल की वाणी इस पंचम काल में श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने प्रगटी कथी कही नाम दर्शाई ' इस प्रकार यहाँ श्री का अर्थ वाणी से है।

आशीर्वाद का अर्थ –

प्रथम आशीर्वाद :

ॐकार मयी शुद्धात्म स्वरूप की अनुभूति को उत्पन्न करो। ॐकार मयी स्वसमय शुद्धात्मा में रमण करो, जो ज्ञान और दर्शनमयी है। हितकारी सूर्य के समान दैदीप्यमान निर्विकल्प ज्ञान स्वभाव में रमण करो और प्रिय शब्द अर्थात् शुद्ध स्वभाव से संयुक्त रहो। अनंत ममल स्वभाव का सहकार कर उसी में रमण करो, उसी सहित रहो, देखो ध्रुव शाह पद अपना परमात्म स्वरूप प्रगट हो रहा है। इसी साधना से स्वयं का देव पद प्रगट हो जायेगा, स्वयं परमात्मा हो जाओगे। जय हो, जय हो अपने स्व–समय अर्थात् शुद्धात्मा को जीत लो, स्वानुभव से सम्पन्न होकर मुक्ति को प्राप्त करो।

द्वितीय आशीर्वाद :

आत्मा और शरीर के अनादिकालीन जुग अर्थात् जोड़े को भेदविज्ञान पूर्वक अलग–अलग जानो, इसी में सुधार है, कल्याण है। अपने अनुपम रत्न स्वसमय शुद्धात्मा को निमिष अर्थात् पलक झपकने प्रमाण समय के लिये जीतो, प्राप्त करो। घटयं अर्थात् घड़ी भर (२४ मिनिट), तुंज=तुम स्वभाव में रहो, अभ्यास में वृद्धि करो और मुहूर्त = ४८ मिनिट, पहर पहरं = ३–३ घंटे तक, द्वि–तिय पहरं = दो पहर ६ घंटा और तीन पहर = ९ घंटा, चत्रु पहरं = ४ पहर (१२ घंटा), दिप्त रयनी = दिन रात, वर्षं = वर्षभर (३६५ दिन) तुम स्वभाव को जीतो, स्वभाव की साधना करो। वर्षं षिपति = वर्ष भी क्षय हो जाते हैं (वर्ष भर), सु आयु काल = अपनी आयु का जितना समय है उतना पूरा समय, कलनो = आत्मा के ध्यान में लगाओ और जिन स्वभाव में प्रकाशित होकर अर्थात् वीतराग स्वरूप में रमण करके मुक्ति में जयवंत होओ अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करो।

तृतीय आशीर्वाद –

वे दो छण्ड विरक्त चित्त दिढ़ियो, कायोत्सर्गामिनो ।
केवलिनो नृत लोय लोय पेख पिखणं, दलयं च पंचेन्द्रिनो ॥
धर्मो मार्ग प्रकाशिनो जिन तारण तरो, मुक्तेवरं स्वामिनो ।
सुयं देव जुग आदि तारण तरो, उववन्नं 'श्री संघं' जयं ॥

(जयन् जय बोलिये–जय नमोऽस्तु – ३ बार)

: श्लोक :

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारकं ।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥

आशीर्वाद (अन्तिम)

उत्पन्न रंज प्रवेश गमनं, छद्मस्थ स्वभाव ।
सुक्खेन,सुक्खेन ये दु:खानि काल विलयंति ॥

॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥

अप्प समुच्चय जानिये, ऋषि यति मुनि अनगार ।
पद परस्सय कर्महिं खिपैं,सिद्ध होंय तिहिवार ॥

सिद्ध जाँय देवन के दाता, गुरू के उपदेशे, अपने धर्म के निश्चय, अपनी धारणा के परिचय केतेक जीव निश्चय – निश्चय ब्यासी हजार वर्ष पश्चात् दु:खम – दु:खम काल खिपाय चौथे काल के आदि में पद्मपुंग राजा के यहाँ महापद्म तीर्थंकर देव, अन्मोयं स्वयं स्वयं मुक्ति गामिनो, मुक्ति के विलास असंख्यं गुणं निर्भय बली समर्थ धर्म ।श्री जिनेन्द्र देव के वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं –

॥ जयन् जय बोलिये जय नमोऽस्तु ॥

॥ चौबीस तीर्थंकर भगवान की–जय ॥

॥ श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य महाराज की– जय ॥

: अबलबली :

जय गुरू अबलबली उवन कमल, वयन जिन ध्रुव तेरे ।
अन्मोय शुद्धं रंज रमण, चेत रे मण मेरे ॥
जय तार तरण समय तारण, न्यान ध्यान विवंदे ।
आयरण चरण शुद्धं, सर्वन्य देव गुरू पाये ॥
जय नन्द आनन्द चेयानन्द, सहज परमानंदे ।
परमाण ध्यान स्वयं, विमल तीर्थंकर नाम वन्दे ॥
जय कलन कमल उवन रमण, रंज रमण राये ।
जय देव दीपति स्वयं दीपति, मुकति रमण राये ॥
गुरू तोहि ध्यावत सुख अनंत स्वामी, तारण जिन देवा ।
उत्पन्न रंज रमण नन्द जय, मुक्ति दायक देवा ॥

॥ आचार्य दाता, सहाई दाता, प्यारो दाता ॥

तृतीय आशीर्वाद : उन दोनों अर्थात् राग-द्वेष को छोड़कर वैराग्य युक्त होकर चित्त में दृढ़ता धारण करके कायोत्सर्ग गामी बनो अर्थात् शरीर से ममत्व का त्याग करो। केवलज्ञानी भगवान अपने सत्य स्वरूप में लीन लोकालोक के ज्ञायक हैं, तुम भी सत्यार्थ उपदेश को अच्छी तरह से परीक्षण कर स्वानुभव से प्रमाण कर स्वीकार करो और पाँच इन्द्रियों के समूह को वश में करो । धर्म मार्ग का प्रकाशन करने वाले जिन तारण तरण मुक्ति का वरण करने वाले स्वामी हैं। युग अर्थात् चतुर्थ काल के प्रारंभ में हुए स्वयंभू आदिदेव ऋषभनाथ भगवान स्वयं तिरे और उन्होंने सबको तिरने का मार्ग बताया था, उनकी वीतराग परम्परा में 'श्री संघ' उत्पन्न हो गया – जयवंत हो।

सर्व मंगल ..... श्लोकार्थ – समस्त मंगलों में परम मंगल स्वरूप, सर्व प्रकार से कल्याण करने वाला, सब धर्मों में प्रधान यह जिन धर्म, वीतराग शासन सदा जयवंत हो।

अंतिम आशीर्वाद .... का अर्थ – उत्पन्न अर्थात् निज शुद्धात्मानुभूति रूप उत्पन्न अर्थ (सम्यग्दर्शन) को प्रगट करो। उसी में रंजायमान (हर्षित) रहो और सानन्द वीतराग निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करो, लीन रहो। अभी छद्मस्थ स्वभाव है। सुख स्वभाव के आश्रय से, सुख स्वभाव के बल से सभी दु:ख और दु:ख पूर्ण काल विला जायेगा।

अप्प समुच्चय ...... दोहा का अर्थ– वीतरागी भव्य आत्मा मुनिजनों के चार समूह जानो–ऋषि, यति, मुनि और अनगार। जो वीतरागी योगी अपने सिद्ध स्वरूप शुद्ध स्वभाव का स्पर्श अर्थात् अनुभव करते हैं, अपने पद की स्वानुभूति में ठहरते हैं, वे उसी समय शाश्वत सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं।

दु:खम दु:खम काल .... का अर्थ – यह हुण्डावसर्पिणी पंचम 'दु:खम' काल चल रहा है, छटवां काल 'दु:खम दु:खम' है। इसके पश्चात् आगामी उत्सर्पिणी का प्रारम्भ 'दु:खम दु:खम' काल से होगा, पश्चात् पुन: पंचम काल 'दु:खम' होगा। इस प्रकार इन चारों ही 'दु:खम दु:खम' काल को खिपाकर राजा श्रेणिक का जीव चौथे काल में पद्मपुंग राजा के यहां महापद्म तीर्थंकर पद को प्राप्त होगा अत: ''दु:खम दु:खम काल खिपाय'' ही पढ़ना चाहिये।

अबलबली ...... का अर्थ – (जय गुरु...) हे परम गुरू जिनेन्द्र भगवान ! आपके मुख कमल से उत्पन्न हुए अबल जीवात्मा को – रत्नत्रय की शक्ति से पोषण कर, बलवान बनाने वाले ध्रुव वचन अर्थात् अटल वचन जयवंत हों। हे मेरे मन ! चेत, जाग, अपने शुद्ध स्वभाव की अनुमोदना कर, उसी में रंजायमान होकर स्वभाव में ही रमण कर । (जय तार...) तारण तरण जिनेन्द्र भगवान की जय हो, जो पूर्ण ज्ञान ध्यान में लीन रहते हुए भव्यात्माओं के लिये तारणहार हैं, उनकी अत्यंत भक्ति पूर्वक वंदना करता हूँ। शुद्ध सम्यक्चारित्र में आचरण करके अर्थात् निर्विकल्प स्वभाव में रमण करके मैंने सर्वज्ञ देव परम गुरू अपने परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर लिया है। (जय नंद...) नन्द, आनन्द, चिदानन्द, सहजानन्द, परमानन्द मयी स्वभाव जयवन्त हो। ध्यान प्रमाण अर्थात् जितना वीतराग भाव शुद्धोपयोग प्रगट हो रहा है उसमें उतने प्रमाण में स्वयं का विमल तीर्थंकर परमात्म स्वरूप ज्ञान में झलक रहा है, मैं ऐसे सत्स्वरूप की वंदना करता हूँ। (जय कलन...) अपने ज्ञायक स्वरूप के ध्यान की प्रगटता, रमणता और रंजायमानपना अर्थात् लीनता जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसे निज स्वरूप में रमण करने वाले जिनराज की जय हो। परमात्म देव परम केवलज्ञान से परिपूर्ण दैदीप्यमान, स्वयं में प्रकाशमान मुक्ति रमणी के राजा हैं ऐसे जिनराज सदा जयवन्त हों। (गुरु तोहि...) हे परम गुरू स्वामी तारण तरण जिनेन्द्र भगवान (निश्चय से निज शुद्धात्म स्वरूप) ! आपके ध्यान करने से अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। साधक से सिद्ध पद की प्राप्ति तक क्रमश: उत्पन्न अर्थ आदि पाँच अर्थ, उत्पन्न रंज आदि पाँच रंज, भय खिपक रमण आदि पाँच रमण, नन्द आदि पाँच नन्द प्रगट होते हैं, यह साधना परमात्म पद और मुक्ति को देने वाली है।

आचार्य दाता...... का अर्थ – आचार्य ज्ञान अर्थात् शिक्षा और दीक्षा के देने वाले हैं, वे मोक्षमार्ग में सहायक दाता हैं और पूज्य प्रिय दाता हैं। यह कहने का प्रयोजन गुरू के प्रति श्रद्धा भक्ति का भाव व्यक्त करना है।

: प्रमाण गाथा :

काऊण णमुक्कारं, जिणवर वसहस्स वड्ढमाणस्स ।
दंसण मग्गं वोच्छामि, जहाकम्मं समासेण ॥
सव्वण्हु सव्वदंसी, णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी ।
वन्दित्तु तिजगवन्दा, अरहंता भव्य जीवेहिं ॥
सपरा जंगम देहा, दंसण णाणेण सुद्ध चरणाणं ।
णिग्गंथ वीयराया, जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥
मणुयभवे पंचिन्दिय, जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे ।
एदे गुण गण जुत्तो, गुणमारूढ़ो हवइ अरुहो ॥
णाणमयं अप्पाणं, उवलद्धं जेण झडियकम्मेण ।
चइऊण य परदव्वं, णमो णमो तस्स देवस्स ॥
जिणबिम्बं णाणमयं, संजमसुद्धं सु वीयरायं च ।
जं देइ दिक्खसिक्खा, कम्मक्खय कारणे सुद्धा ॥
संसग्ग कम्म खिवणं, सारं तिलोय न्यान विन्यानं ।
रुचियं ममल सहावं, संसारं तिरंति मुक्ति गमनं च ॥
गुण वय तव सम पडिमा, दाणं जलगालणं अणत्थमियं ।
दंसण णाण चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥

॥ श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य महाराज की–जय ॥

इसके पश्चात् सावधान होकर श्री जिनवाणी जी को भक्ति भाव और विनय पूर्वक वेदी जी पर विराजमान करके आरती करना चाहिये। आरती के बाद तिलक, प्रसाद – प्रभावना तत्पश्चात् तत्त्वमंगल और अंत में स्तुति करके विनय करना चाहिये।

तिलक – चंदन की विधि –

आरती करने के पश्चात् सभी श्रावकजन अपने स्थान पर विनयपूर्वक बैठ जावें।

चंदन की कटोरी पंडित जी अपने हाथ में लेकर यह श्लोक पढ़ें –

चंदनं शांति दातारं, सर्व सौख्य प्रदायकम् ।
प्रतीकं रत्नत्रयं विंदं, सिद्ध सिद्धं नमाम्यहम् ॥

यह मंत्र पढ़ने के बाद कोई सज्जन सिर पर टोपी लगाकर अनामिका अर्थात् छिंगुरी के पास वाली अंगुली से सबको माथे के भ्रूमध्य अर्थात् दोनों भौहों के बीच में चंदन लगावें। कोई बहिन माताओं बहिनों को चंदन लगावें।

चंदन लगाने की क्या विशेषता है ?

चंदन शांति स्वरूप है, माथे का चंदन सौभाग्य सूचक तथा हम किसके उपासक हैं इसका प्रतीक है। विंदी लगाना सिद्ध स्वरूप का प्रतीक है तथा खौर का चंदन लगाना अनन्त चतुष्टय, रत्नत्रय सहित सिद्ध स्वरूप का प्रतीक है।

प्रसाद – प्रभावना

आये हुए प्रसाद की थाली और व्रत भंडार की राशि पंडित जी अपने हाथ में लेकर खड़े होवें और धन्यवाद स्वरूप शुभकामना करें – श्री शुभ स्थान............ निवासी श्रीमान्.................... की ओर से ....के उपलक्ष्य में प्रभावना निमित्त प्रसाद आया तथा .... रुपया व्रत भण्डार में आये। आपके शुभ भावों में निरन्तर वृद्धि हो।

काऊण णमुक्कारं आदि........गाथाओं का अर्थ-

जिनवर वृषभ ऐसे जो प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव तथा अंतिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान हैं, उन्हें नमस्कार करके दर्शन अर्थात् मत का जो मार्ग है उसे यथानुक्रम से संक्षेप में कहूंगा।

अरिहंत परमेष्ठी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, निर्मोह, वीतरागी हैं, वे भगवान तीनों लोकों के भव्य जीवों के द्वारा वंदनीय हैं।

जिनका चारित्र दर्शन ज्ञान से शुद्ध निर्मल है, उनकी स्व - परा अर्थात् अपनी और पर की (गुरू और शिष्य की अपेक्षा) चलती हुई देह है वह जिन मार्ग में ''जंगम प्रतिमा'' है। अथवा स्व-परा अर्थात् आत्मा से भिन्न है देह, वह कैसी है ? निर्ग्रंथ वीतराग है, जिन मार्ग में ऐसी 'प्रतिमा' कही गई है।

मनुष्य भव में पंचेन्द्रिय नामक चौदहवें जीवस्थान अर्थात् जीवसमास, उसमें इतने गुणों के समूह से युक्त तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त अरिहंत होते हैं।

जिन्होंने पर द्रव्य को छोड़कर द्रव्य, भाव, नो कर्मों की निर्जरा कर ज्ञानमयी आत्मा को प्राप्त कर लिया है ऐसे देव को हमारा नमस्कार हो, नमस्कार हो।

जिनबिम्ब कैसा है ? ज्ञानमयी है, संयम से शुद्ध है, अतिशय वीतराग है, जो शिक्षा और दीक्षा देता है, कर्म के क्षय का कारण और शुद्ध है। जिनमें इतनी विशेषतायें हों ऐसे वीतरागी आचार्य परमेष्ठी ही सच्चे 'जिनबिम्ब' होते हैं।

ममल स्वभाव की रुचि पूर्वक स्वभाव का संसर्ग करने से कर्म क्षय हो जाते हैं। ज्ञान - विज्ञान ही तीन लोक में सार है इसी के बल से ज्ञानी संसार से तिरते और मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

अष्ट मूलगुण, बारह व्रत, बारह तप, समता भाव, ग्यारह प्रतिमायें, चार दान, पानी छानकर पीना, रात्रि भोजन नहीं करना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की साधना यह श्रावक की त्रेपन क्रियाएं कही गई हैं।

आरती क्यों की जाती है ?

जब मंदिर विधि करने से भावों में विशुद्धता आती है, शुद्धता की अनुभूति होती है तब हृदय भाव विभोर हो जाता है, इन्हीं शुभभावों सहित ज्ञान की प्रकाशक जिनवाणी की भक्ति पूर्वक ज्ञान ज्योति से आरती प्रज्ज्वलित कर आरती करते हैं जिससे परिणामों में और अधिक विशुद्धता आती है।

दूसरी बात यह है कि तारण समाज में एक चेल और पाँच चेल की आरती बनाई जाती है। आरती ज्योति रूप है इस ज्योति स्वरूप को 'दीप्ति' कहा गया है। दीप्ति का अर्थ होता है - ज्ञान। इस प्रकार एक चेल की आरती केवलज्ञान की प्रतीक है और पाँच चेल की आरती पाँच ज्ञान की प्रतीक है, जो सत्ता अपेक्षा प्रत्येक जीव के पास हैं। ऐसे सम्यग्ज्ञान की दीप्ति अर्थात् ज्योति मेरे अंतर में प्रकाशित हो इसी अभिप्राय से आरती की जाती है।

प्रसाद - प्रभावना-

प्रभावना हेतु आये हुए प्रसाद की जय बोलने के साथ ही यदि पात्रभावना हो, व्रत उद्यापन हो या अन्य संस्थाओं, तीर्थक्षेत्रों, पत्र पत्रिकाओं के लिये दान दिया गया हो या चैत्यालय आदि के लिये उपकरण, ग्रंथ आदि आये हों तो व्रत भंडार के साथ सबकी सूचना देवें और प्रभावना करें ।

(प्रसाद वितरण के समय माताओं बहनों को भक्ति भाव पूर्वक भजन पढ़ना चाहिये)

प्रसाद वितरण का क्या महत्त्व है ?

प्रसाद - दान की प्रभावना स्वरूप वितरण किया जाता है। किसी को चढ़ाया नहीं जाता या चढ़ाकर नहीं बांटा जाता। प्रसाद प्रभावना स्वरूप बांटने से भावों में निर्मलता आती है और पुण्य की वृद्धि होती है।

विशेष - प्रसाद प्रभावना के पश्चात् तत्त्वमंगल पढ़ना चाहिये तत्पश्चात् जिनवाणी स्तुति पढ़कर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े होकर नौ बार णमोकार मंत्र का स्मरण करके पंचांग अष्टांग नमस्कार पूर्वक विनय करना चाहिये।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) मंदिर विधि का प्रारंभ............से किया जाता है।

(ख) अपने गुणों में आचरण करना ही............है।

(ग) स्वसमय शुद्धात्मा............से प्रमाण है।

(घ) दशधर्मों का आचरण............के आश्रय से होता है।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनिये –

१. ॐकार सबके मूल में है। (सत्य/असत्य)

२. भवणालय चालीसा, व्यंतर देवाणि होंति छत्तीसा। (सत्य/असत्य)

३. अर्हंता छय्याला, सिद्धं पंचामि सूरि बत्तीसा। (सत्य/असत्य)

४. सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष को मिलाने पर जो योग आता है वह एक पूर्व की संख्या है। (सत्य/असत्य)

५. लोकांतिक देव बाल ब्रम्हचारी, एक भवावतारी, पाँचवे ब्रह्म स्वर्ग के निवासी होते है। (सत्य/असत्य)

प्रश्न ३ – लघुउत्तरीय प्रश्न।

(अ) समवशरण की रचना का वर्णन मंदिर विधि में किस तरह किया है ? बताइये।

उत्तर – तीर्थंकरों के केवल कल्याणक के निमित्त इन्द्र अड़तालीस कोस के गिरदाकार में समवशरण की रचना करते हैं। साढ़े बारह करोड़ वाद्य यंत्र बजते हैं। ऐसे महोत्सव पूर्व समवशरण में भगवान की दिव्य ध्वनि खिरती है, वे भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं। ऐसे दिव्य उपदेशों को समवशरण के मध्य बारह कोठों में बैठे हुए असंख्य देव, मनुष्य, पशु सुनते हैं। अपने कल्याण का मार्ग ग्रहण करते हैं। इन्द्र और चतुर्विध संघ इन्द्र ध्वज पूजा, देवांगली पूजा पढ़कर जय-जयकार करते हैं।

(ब) दशलक्षण धर्मों का सार सिद्धांत लिखिये।

उत्तर – १. उत्तम क्षमा – क्रोध कषाय का अभाव। २. उत्तम मार्दव – ज्ञानादि आठ मदों का अभाव। ३. उत्तम आर्जव – माया कषाय रूप कुटिलता का अभाव। ४. उत्तम सत्य – झूठ पाप का अभाव ५. उत्तम शौच – लोभ कषाय का अभाव शुचिता की प्रगटता। ६. उत्तम संयम-हिंसा पाप का अभाव, इन्द्रिय संयम, जीवरक्षा। ७. उत्तम तप-इच्छाओं का निरोध। १२ तप का पालन, रागादि भावों का परिहार। ८. उत्तम त्याग-चोरी पाप रागादि भाव का त्याग, चार दान देना। ९. उत्तम आकिंचन्य चौबीस परिग्रह का त्याग। १०. उत्तम ब्रह्मचर्य-कुशील पाप एवं २७ इन्द्रिय विषयों पर विजय, ब्रह्मस्वरूप में चर्या।

(स) विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों के नाम लिखिये। (उत्तर स्वयं लिखें।)

(द) त्रिक किसे कहते हैं और कौन – कौन से होते हैं ? नाम बताइये। (उत्तर स्वयं लिखें।)

(इ) मंदिर विधि के आधार पर शास्त्र किसे कहते हैं ? (उत्तर स्वयं लिखें।)

(फ) सूत्र किसे कहते हैं ?(उत्तर स्वयं लिखें।)

(क) मंदिर विधि में सच्चे देव, धर्म, गुरु, शास्त्र एवं मनुष्य के विषय में क्या कहा है –

उत्तर – सच्चे देव – जिनमें जन्म जरा आदि लेश मात्र भी कोई दोष नहीं होते। सच्चे गुरु – जिनके हृदय में सांसारिक कोई भी चाह (इच्छा) नहीं होती। सच्चा धर्म – जहाँ करुणा दया की प्रधानता होती है। सच्चे शास्त्र – जिनमें प्रारंभ से अंत तक निर्विरोध एक रूप सिद्धांत का कथन होता है। मनुष्य – विवेक पूर्वक सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने वाला मनुष्य है।

(ख) सिद्धांत ग्रन्थ किसे कहते हैं ? (उत्तर स्वयं लिखें।)

(ग) प्रथम आशीर्वाद का अर्थ बताइये। (उत्तर स्वयं लिखें।)

प्रश्न ४ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(अ) अबलबली का क्या अर्थ है ? (उत्तर स्वयं लिखें।)

(ब) प्रमाण गाथाओं का क्या अभिप्राय है ? (उत्तर स्वयं लिखें।)

(स) गुण पाठ पूजा में आये पंच परमेष्ठी के गुणों का चार्ट बनाईये।

तारण वाणी – अमृत सूत्र

पूजा पूज्य समाचरेत्

पूज्य के समान आचरण ही सच्ची पूजा है।

जिन वयनं सद्दहनं

जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर श्रद्धान करो।

संमिक्त सुद्धं हिदयं ममस्तं

शुद्ध सम्यक्त्व मेरे हृदय में स्थित है।

तत्वार्थ सार्धं बहु भक्ति जुक्तं

बहुत भक्ति सहित अपने प्रयोजनीय तत्त्व की साधना करो।

धर्मं प्रकासं मुक्ति प्रवेसं

जो भव्य जीव धर्म का प्रकाश करते हैं, वे मुक्ति में प्रवेश करते हैं।

पंडितो गुन पूजते

ज्ञानी पंडित गुणों की पूजा करते हैं।

गुण पाठ पूजा में वर्णित पंच परमेष्ठी के १४३ गुण

अरिहंत परमेष्ठी के ४६ गुण

जन्म के १० अतिशय	केवलज्ञान के १० अतिशय	देवकृत १४ अतिशय		प्रतिहार्य ८
१. अत्यंत सुंदरता	१. सौ योजन तक सुकाल	१. अर्धमागधी भाषा	११. हर्षमय सृष्टि	१. अशोक वृक्ष
२. सुगंध	२. चार अंगुल ऊपर	२. बैर रहितपना	१२. धर्म चक्र	२. सिंहासन
३. पसीना रहित	३. चतुर्दिश मुख	३. निर्मल दिशा	१३. अष्ट मंगल	३. तीन छत्र
४. मल मूत्र न होना	४. हिंसा का अभाव	४. षट् ऋतु फल फूल	१४. निर्मल आकाश	४. भामण्डल
५. हितमित प्रिय वचन	५. उपसर्ग रहित	५. दर्पण सम पृथ्वी		५. दिव्य ध्वनि
६. अतुल्य बल	६. कवलाहार न लेना	६. चरणो के नीचे कमल		६. पुष्प वर्षा
७. श्वेत रक्त	७. सर्व विद्याओं के ज्ञाता	७. नभ में जय जयकार		७. चौंसठ चँवर
८. १००८ लक्षण	८. नखकेश न बढ़ना	८. मंद सुगंध वायु		८. दुन्दुभि
९. समचतुरस्र संस्थान	९. अपलक दृष्टि	९. गन्धोदक वृष्टि		
१०. वज्र वृषभ नाराच संहनन	१०. परछाई न पड़ना	१०. कंटक रहित भूमि		

आत्माश्रित ४ गुण – अनंत चतुष्टय

गुण –	अनंत दर्शन	अनंत ज्ञान	अनंत सुख	अनंतवीर्य
अभाव –	दर्शनावरण कर्म	ज्ञानावरण कर्म	मोहनीय कर्म	अंतराय कर्म

सिद्ध परमेष्ठी के ८ मूलगुण

गुण –	सम्यक्त्व	अनंत ज्ञान	अनंत दर्शन	अनंतवीर्य	सक्ष्मत्व	अवगाहनत्व	अगुरुलघुत्व	अव्याबाधत्व
अभाव –	मोहनीय	ज्ञानावरणी	दर्शनावरणी	अंतराय	नामकर्म	आयु कर्म	गोत्र कर्म	वेदनीय

आचार्य परमेष्ठी के ३६ मूलगुण

दशलक्षण धर्म		बारह तप		पाँच आचार	षट् आवश्यक	तीन गुप्ति
१. उत्तम क्षमा	६. उत्तम संयम	१. अनशन	७. प्रायश्चित	१. दर्शनाचार	१. समता	१. मनोगुप्ति
२. उत्तम मार्दव	७. उत्तम तप	२. ऊनोदर	८. विनय	२. ज्ञानाचार	२. वंदना	२. वचन गुप्ति
३. उत्तम आर्जव	८. उत्तम त्याग	३. वृत्तिपरिसंख्यान	९. वैयावृत्ति	३. वीर्याचार	३. स्तुति	३. काय गुप्ति
४. उत्तम सत्य	९. उत्तम आकिंचन	४. रस परित्याग	१०. स्वाध्याय	४. तपाचार	४. प्रतिक्रमण	
५. उत्तम शौच	१०. उत्तम ब्रह्मचर्य	५. विविक्तशय्यासन	११. व्युत्सर्ग	५.चारित्राचार	५. स्वाध्याय	
		६. काय क्लेश	१२. ध्यान		६. कायोत्सर्ग	

उपाध्याय परमेष्ठी के २५ मूलगुण

ग्यारह अंग		चौदह पूर्व		
१. आचारांग	७. उपासकाध्ययनांग	१. उत्पाद पूर्व	७. सत् प्रवाद	१३. क्रियाविशाल
२. सूत्रकृतांग	८. अंतः कृत दशांग	२. अग्रायणी पूर्व	८. आत्म प्रवाद	१४. लोक बिंदु सार
३. स्थानांग	९. अनुत्तरोत्पादक दशांग	३. वीर्यानुवाद	९. प्रत्याख्यान	
४. समवायांग	१०. प्रश्न व्याकरणांग	४. अस्ति नास्ति	१०. विद्यानुवाद	
५. व्याख्या प्रज्ञप्ति	११. विपाक सूत्रांग	५. ज्ञान प्रवाद	११. कल्याणवाद	
६. ज्ञातृकथांग	१२. दृष्टि वादांग	६. कर्म प्रवाद	१२. प्राणानुवाद	

साधु परमेष्ठी के २८ मूलगुण

पाँच महाव्रत – अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत, परिग्रह त्याग महाव्रत।

पाँच समिति – ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापना समिति।

पाँच इन्द्रिय निरोध – स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन्द्रिय के विषय में राग – द्वेष नहीं करना।

षट् आवश्यक – समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग।

सात अन्य गुण – भूमिशयन, केशलुंचन, एकासन, खड़े – खड़े आहार, स्नान त्याग, वस्त्र त्याग, दातून त्याग।

पाठ – १

आचारमत, सारमत और ममलमत

आचार मत –

आचार मत का अर्थ है विवेक पूर्व आचरण करना । श्री श्रावकाचार जी आचार मत का ग्रन्थ है। इसमें ४६२ गाथायें हैं। श्रावक और मुनि धर्म की चर्या इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय है। श्रावकाचार अविरत सम्यक्दृष्टि के लिए कहा गया है। प्रथम १४ गाथाओं में मंगलाचरण किया है। जिसमें सच्चे देव, गुरू, शास्त्र का स्वरूप और गुणों सहित वन्दना है। संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य, जीव के अनादिकालीन संसार में परिभ्रमण का कारण, सम्यग्दर्शन का विशद् वर्णन, तीन पात्रों का स्वरूप, त्रेपन क्रिया का विवेचन, ग्यारह प्रतिमाओं का कथन, पाँच पदवी, षट् आवश्यक एवं मुनि धर्म का वर्णन किया गया है।

चारित्र मानव जीवन की कसौटी है। सदाचारी मनुष्य उच्च और श्रेष्ठ होता है। चारित्र शून्य मनुष्य चलते फिरते मुर्दे के समान है। पाप, विषय और कषायों को करने से जीव को दुःख भोगना पड़ता है तथा यह भव और परभव दोनों बिगड़ जाते हैं।

आत्मश्रद्धान पूर्वक पापों का त्याग कर अणुव्रत महाव्रत धारण कर धर्म साधना करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। इस प्रकार सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण चारित्र का पालन करना आचार मत का अभिप्राय है।

सारमत –

सारमत का अर्थ – भेदज्ञान, तत्त्व निर्णय पूर्वक अपनी सम्हाल करना।

सारमत का अभिप्राय – आत्मार्थी साधक अपने स्वरूप का आराधक होता है। वह भेदज्ञान, तत्त्वनिर्णय पूर्वक अपने स्वभाव का स्मरण रखता है, सार वस्तु को ग्रहण करता है यही सारमत का अभिप्राय है।

सारमत में तीन ग्रन्थ हैं – ज्ञानसमुच्चयसार, उपदेशशुद्धसार और त्रिभंगीसार, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

१. श्री ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ में ९०८ गाथायें हैं। इस ग्रन्थ में द्वादशांग वाणी, पंच पदवी, आध्यात्मिक वर्णमाला, सत्ताईस तत्त्व, चौदह गुणस्थान, रत्नत्रय, चार ध्यान, पाँच आचार एवं अन्य अनेक विषयों का विशद् वर्णन किया गया है।

भेदज्ञान पूर्वक अपने स्वरूप का श्रद्धान ज्ञान करना ज्ञानसमुच्चयसार है। ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। आत्मा ज्ञानमयी तत्त्व है। जो जीव भेदज्ञान पूर्वक अपने ज्ञान स्वभाव को जान लेते हैं, वे सम्यक्दृष्टि ज्ञानी कहलाते हैं। जो जीव स्व–पर को नहीं जानते, शरीर को ही आत्मा मानते हैं वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

जो जीव जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर श्रद्धान कर निज को निज और पर को पर जानते हैं वे संसार सागर से पार हो जाते हैं। यही ज्ञान समुच्चय सार जी ग्रन्थराज का महान सन्देश है।

२. श्री उपदेश शुद्ध सार ग्रन्थ में ५८९ गाथायें हैं। साधक को साधना के मार्ग में आने वाली बाधाओं से बचने का उपाय इस ग्रन्थ में बताया गया है। संसार के परिभ्रमण से मुक्त होकर आनन्द परमानन्दमयी

परम पद को प्राप्त करना जिनेन्द्र भगवान के उपदेश का शुद्ध सार है।

जिनेन्द्र भगवान के उपदेश का सार रूप वर्णन होने से इस ग्रन्थ को उपदेश शुद्ध सार कहते हैं। ज्ञान स्वभाव की साधना करना, जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारव से छूटने की विधि तथा अनेक विषयों का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है।

३. श्री त्रिभंगीसार ग्रन्थ में ७१ गाथायें हैं। यह ग्रन्थ दो अध्यायों में विभाजित हैं। प्रथम अध्याय में १०८ प्रकार से होने वाले कर्म आस्रव का विवेचन है तथा द्वितीय अध्याय में १०८ प्रकार से कर्म आस्रव को रोकने वाले संवर रूप परिणामों का कथन है। तीन-तीन भावों को एक साथ कहने से इस ग्रन्थ को त्रिभंगीसार कहते हैं। जैसे - मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि।

त्रिभंगीसार ग्रन्थ करणानुयोग का ग्रन्थ है। अपने परिणामों की हमेशा संभाल करना चाहिए, क्योंकि परिणाम ही बंध और परिणाम ही मुक्ति के कारण होते हैं। अशुद्ध भावों से बंध और शुद्ध भाव से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ममलमत परिचय

आचार्य श्रीजिन तारण स्वामी जी ने पाँच मतों में चौदह ग्रन्थों की रचना की है। पाँच मतों में ममलमत चतुर्थ स्थान पर है। ममल मत का अर्थ है 'अपने उपयोग को ममल स्वभाव में स्थिर करने का पुरुषार्थ करना।' आत्मार्थी सम्यग्ज्ञानी साधक सम्यक्चारित्र धारण करता है। उपयोग की अपने स्वभाव में एकाग्रता होना सम्यक्चारित्र की सिद्धि का उपाय है। प्रबल वैराग्य भावनायें चारित्र में दृढ़ करती हैं। ममल मत के दो ग्रन्थों में इसी पुरुषार्थ की प्रमुखता है। चौबीसठाणा और ममलपाहुड ममलमत के ग्रन्थ हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

श्री चौबीसठाणा जी - इस ग्रन्थ में सत्ताईस गाथायें तथा शेष पाँच अध्याय गद्यमय हैं। चौबीसठाणा का अर्थ है चौबीस स्थान - गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार, गुणस्थान, जीव समास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग, ध्यान, आस्रव, जाति और कुल कोटि यह चौबीस स्थान कहलाते हैं।

इन चौबीस स्थानों में अनन्त जीव राशि पाई जाती है। अज्ञान के कारण जीव संसार में रुल रहा है तथा अपने कर्म के अनुसार संसारी स्थानों को प्राप्त करता है।

श्री ममलपाहुड जी - इस ग्रंथ का नाम श्री भयषिपनिक ममलपाहुड है।

भय षिपनिक का अर्थ है-भयों को क्षय करने वाला। आचार्य श्रीमद् जिन तारण स्वामी को 'मिथ्याविली वर्ष ग्यारह ' श्री छद्मस्थवाणी ग्रंथ के इस सूत्रानुसार ग्यारह वर्ष की अवस्था में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई। सम्यग्दर्शन होने पर इह लोक परलोक आदि सात भयों का अभाव हुआ। पुनश्च यह ग्रंथ भयों को क्षय करने वाला है - इसका आशय है कि सम्यक्दृष्टि ज्ञानी के अंतर में चारित्र मोहनीय कर्मोदय के निमित्त से होने वाले चारित्र गुण के विकार रूप भयों का क्षय हो इस उद्देश्य से आचार्य तारण स्वामी ने इस ग्रंथ की रचना की है।

ममल का अर्थ है त्रिकाली शुद्ध ध्रुव स्वभाव, जिसमें अतीत में कर्म मल नहीं थे, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में कर्म मल नहीं होंगे, ऐसे परम शुद्ध स्वभाव को ममल कहते हैं। ग्रंथ में इसी अभिप्राय को व्यक्त करने के लिए ममलह ममल स्वभाव भी कहा गया है।

इस ग्रंथ में ३२०० गाथायें हैं, जो १६४ फूलनाओं में निबद्ध हैं। जिसे पढ़कर या सुनकर जीव आल्हादरूप परिणामों सहित आनंद विभोर हो जाए उसे फूलना कहते हैं।

जिस प्रकार वर्तमान समय में हम भजन पढ़ते हैं, उसी प्रकार ममलपाहुड ग्रंथ में लिखी गई फूलना विभिन्न राग-रागनियों में पढ़ी जाने वाली प्राचीन रचनायें हैं।

जैसे भजनों में हर अंतरा के बाद टेक दोहराई जाती है, उसी प्रकार फूलनाओं में अचरी या आचरी होती है, जो हर गाथा के बाद दोहराई जाती है।

इस ग्रंथ की १६४ फूलनाओं में ११५ फूलना-फूलना रूप हैं, १४ फूलना-छंद गाथा रूप हैं और ३५ फूलना-गाथा रूप हैं इस प्रकार १६४ फूलना तीन प्रकार की रचनाओं में विभाजित हैं।

श्री भयषिपनिक ममलपाहुड ग्रंथ आत्म साधना की अनुभूतियों का अगाध सिंधु है। १६४ फूलनाओं में उपयोग को ममल स्वभाव में लीन करने की साधना के रहस्य निहित हैं। सम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक, सम्यक्दृष्टि ज्ञानी सम्यक्चारित्र के मार्ग में अग्रसर होता है, स्वभाव में लीन होने का पुरुषार्थ करता है, ज्ञानी साधक की चारित्र परक अंतरंग साधना इस ग्रंथ का मुख्य विषय है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ - रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) ....अविरत सम्यक्दृष्टि के लिए कहा गया है। (ख)सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण चारित्र का पालन करना मत का अभिप्राय है। (ग) सारमत का अर्थ - भेदज्ञान............. पूर्वक अपनी सम्हाल करना है। (घ) उपदेश शुद्ध सार ग्रन्थ में.............गाथाएँ हैं। (ङ) त्रिभंगीसार के प्रथम अध्याय में १०८ प्रकार से होने वाले.............का विवेचन है।

प्रश्न २ - सत्य/असत्य कथन चुनिये -

(क) त्रिभंगीसार, करणानुयोग का ग्रन्थ है। (सत्य/असत्य) (ख) चौबीसठाणा में ७१ गाथाएँ हैं। (सत्य/असत्य) (ग) '' मिथ्याविली वर्ष ग्यारह'' श्री छद्मस्थवाणी ग्रन्थ का सूत्र है। (सत्य/असत्य) (घ) ममल का अर्थ है दुकाली शुद्ध ध्रुव स्वभाव। (सत्य/असत्य) (ङ) ममल पाहुड़ की फूलनाओं में अचरी या आचरी हर गाथा के बाद दोहराई जाती है। (सत्य/असत्य)।

प्रश्न ३ - लघु उत्तरीय प्रश्न -

(क) चौबीसठाणा ग्रन्थ का विषय क्या है ? (उत्तर स्वयं लिखें।) (ख) उपदेश शुद्ध सार ग्रन्थ की विषय वस्तु का परिचय दीजिए। (उत्तर स्वयं लिखें।) (ग) अचार मत क्या है ? (उत्तर स्वयं लिखें।)

प्रश्न ४ - दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(क) आचार, सार ममलमत का परिचय देकर तीनों में अंतर बताइये। (उत्तर स्वयं लिखें।)

(ख) सारमत अथवा ममलमत पर टिप्पणी लिखिए। (उत्तर स्वयं लिखें।)

पाठ – २
पंचार्थ और पाँच पदवी

प्रश्न – **अर्थ किसे कहते हैं ?**

उत्तर – सारभूत प्रयोजनीय वस्तु को अर्थ कहते हैं।

प्रश्न – **अर्थ के कितने भेद हैं और वे कौन–कौन से हैं ?**

उत्तर – अर्थ के पाँच भेद हैं – उत्पन्न अर्थ, हितकार अर्थ, सहकार अर्थ, जान अर्थ और पय अर्थ।

प्रश्न – **ॐ ह्रीं श्रीं क्या हैं ?**

उत्तर – ॐ ह्रीं श्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का बोध कराने वाले बीज मंत्र हैं।

प्रश्न – **ॐ ह्रीं श्रीं किसके वाचक मंत्र हैं ?**

उत्तर – ॐ – व्यवहार से पंच परमेष्ठी का और निश्चय से शुद्धात्म स्वरूप का वाचक मंत्र है।

ह्रीं – व्यवहार से चौबीस तीर्थंकरों का और निश्चय से केवलज्ञान स्वरूप आत्मा का वाचक मंत्र है।

श्रीं – मोक्ष लक्ष्मी का वाचक मंत्र है।

प्रश्न – **उत्पन्न अर्थ किसे कहते हैं, इसकी उत्पत्ति का बीजाक्षर मंत्र कौन सा है ?**

उत्तर – प्रयोजन भूत शुद्धात्म स्वरूप की अनुभूति को उत्पन्न अर्थ कहते हैं। उत्पन्न अर्थ की उत्पत्ति का बीजाक्षर मंत्र 'ॐ' है।

अभिप्राय – ॐकार मयी शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय से निज स्वभाव की अनुभूति होती है यही उत्पन्न अर्थ है। आगम में इसको सम्यग्दर्शन कहा गया है।

प्रश्न – **हितकार अर्थ किसे कहते हैं, इसकी उत्पत्ति का विधान और बीजाक्षर मंत्र कौन सा है ?**

उत्तर – स्वानुभूति पूर्वक स्व–पर के यथार्थ बोध रूप प्रयोजनीय ज्ञान का होना हितकार अर्थ कहलाता है। हितकार अर्थ की उत्पत्ति का बीजाक्षर मंत्र 'ह्रीं' है।

अभिप्राय – केवलज्ञान मयी आत्मा की अनुभूति पूर्वक स्व – पर का यथार्थ ज्ञान होता है। इस हितकारी प्रयोजन भूत ज्ञान का प्रकट होना हितकार अर्थ है। आगम में इसको सम्यग्ज्ञान कहा है।

प्रश्न – **सहकार अर्थ किसे कहते हैं, इसकी उत्पत्ति का विधान और बीजाक्षर मंत्र कौन सा है ?**

उत्तर – प्रयोजन भूत स्वभाव के साथ रहने अर्थात् आत्म स्वभाव में लीनता को सहकार अर्थ कहते हैं। सहकार अर्थ की उत्पत्ति का बीजाक्षर मंत्र 'श्रीं' है जो मोक्ष लक्ष्मी का वाचक है।

अभिप्राय – मोक्ष लक्ष्मी स्वरूप अपने शुद्ध स्वभाव में स्थिर होने को सहकार अर्थ कहते हैं। इसको आगम में सम्यक्चारित्र कहा गया है।

प्रश्न – **जान अर्थ किसे कहते हैं और इसका अभिप्राय क्या है ?**

उत्तर – केवलज्ञान की प्रकटता को जान या ज्ञान अर्थ कहते हैं।

अभिप्राय – ज्ञान स्वभाव प्रयोजनीय है, इस प्रकार के लक्ष्य सहित स्वभाव में स्थित होकर

पूर्ण ज्ञान का प्रकट होना जान या ज्ञान अर्थ का अभिप्राय है।

प्रश्न – पय अर्थ किसे कहते हैं और इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – सिद्ध परमात्मा के समान शुद्धात्मा की अनुभूति में लीनता को पय अर्थ कहते हैं।

अभिप्राय – शुद्धात्म स्वरूप प्रयोजन भूत है, ऐसे शुद्ध स्वभाव में लीन होकर अविनाशी सिद्ध पद को प्रकट करना पय अर्थ का अभिप्राय है।

प्रश्न – शब्दार्थ आदि पाँच अर्थ और उत्पन्न अर्थ आदि पंचार्थ में क्या अंतर है ?

उत्तर – शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ यह शास्त्रों के अर्थ करने की पद्धति है। इस पद्धति के द्वारा वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है।

उत्पन्न अर्थ आदि पंचार्थ मोक्षमार्गी साधक की साधना में उत्तरोत्तर वृद्धि का बोध कराते हैं। उत्पन्न अर्थ आदि पंचार्थ के द्वारा रत्नत्रय की साधना–आराधना पूर्वक आत्मा से परमात्मा होने का मार्ग प्रशस्त होता है। शब्दार्थ आदि पाँच अर्थ और उत्पन्न आदि पंचार्थ में यही अंतर है।

पाँच पदवी

प्रश्न – पदवी किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो मोक्षमार्ग में आत्मानुभूति की उत्तरोत्तर वृद्धिंगत अवस्थाओं का ज्ञान कराती है उसे पदवी कहते हैं।

प्रश्न – पदवी के कितने भेद हैं ?

उत्तर – पदवी के पाँच भेद हैं –

१. उपाध्याय पदवी २. आचार्य पदवी ३. साधु पदवी ४. अरिहन्त पदवी ५. सिद्ध पदवी।

प्रश्न – उपाध्याय पदवी किसे कहते हैं ?

उत्तर – स्व – पर भेदज्ञान पूर्वक आत्मानुभव सहित साधक की सम्यक् श्रद्धान ज्ञानमय दशा को उपाध्याय पदवी कहते हैं।

प्रश्न – आचार्य पदवी किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी की संयम युक्त साधक अवस्था को आचार्य पदवी कहते हैं। सम्यक्दृष्टि के अंतरंग में निर्मल भावों की वृद्धि होने से वह संयम तप का पालन करता है, ऐसे संयमी साधक को आचार्य पदवी वाला कहा गया है।

प्रश्न – साधु पदवी किसे कहते हैं ?

उत्तर – पापों के सर्वदेश त्याग रूप, निर्ग्रन्थ वीतरागी दशा को साधु पदवी कहते हैं। ऐसे साधु जो समस्त रागादि प्रपंचों से विरक्त परम वीतरागी अपने शुद्ध स्वभाव की साधना में लीन रहते हैं, वे साधु पदवी वाले कहे गये हैं।

प्रश्न – अरिहन्त पदवी किसे कहते हैं ?

उत्तर – केवलज्ञान मयी परमात्म दशा को अरिहंत पदवी कहते हैं। अरिहंत पदवी वाला पूर्ण ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। यहाँ चार घातिया कर्म एवं अठारह दोषों का अभाव हो जाता है।

प्रश्न – सिद्ध पदवी किसे कहते हैं?

उत्तर – आठ कर्मों से रहित आत्मा की पूर्ण शुद्ध दशा को सिद्ध पदवी कहते हैं। सिद्ध स्वरूप की प्रकटता होने के कारण मुक्त जीव को सिद्ध पदवी वाला कहा गया है।

प्रश्न – पंच पदवी और पंच परमेष्ठी में क्या अंतर है ?

उत्तर – आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी द्वारा विरचित श्री श्रावकाचार, ज्ञानसमुच्चयसार एवं ममलपाहुड ग्रंथ के अनुसार पंच पदवी का कथन आत्मार्थी साधक के लिए आत्म साधना का पथ प्रशस्त करता है। श्री तारण तरण श्रावकाचार जी ग्रन्थ की गाथा ३२६ से ३३२ में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु यह पंच परमेष्ठी, देव के पाँच गुणों के रूप में बतलाए गए हैं। यह पाँच परमेष्ठी पद पूज्यपने की अपेक्षा से कहे गये हैं। पंच पदवी का कथन आत्म साधना की अपेक्षा से किया गया है।

प्रश्न – आचार्य तारण स्वामी जी ने पंचार्थ, पंच पदवी और पंच परमेष्ठी का कथन किन ग्रन्थों में किया है ?

उत्तर – आचार्य श्री तारण स्वामी ने पंचार्थ का वर्णन श्री कमल बत्तीसी जी एवं भय षिपनिक ममलपाहुड जी ग्रन्थ के नन्द आनन्द फूलना क्रमांक ५१ तथा अन्य फूलनाओं में किया है।

पंच पदवी का वर्णन श्री भय षिपनिक ममलपाहुड जी ग्रन्थ के पदवी फूलना क्रमांक ६७ में तथा श्रावकाचार जी, ज्ञानसमुच्चयसार जी ग्रन्थ में विस्तार से किया है।

पंच परमेष्ठी का वर्णन श्री श्रावकाचार जी, श्री कमलबत्तीसी जी तथा श्री ममलपाहुड जी ग्रन्थ में किया गया है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – सही जोड़ी बनाइये –

(क) उत्पन्न अर्थ – शुद्ध स्वभाव में स्थिरता (ङ)। (ख) हितकार अर्थ – सिद्ध पद की प्रकटता (घ)। (ग) सहकार अर्थ – केवलज्ञान की प्रकटता (क)। (घ) जान अर्थ – स्वपर के यथार्थ बोधपूर्वक प्रयोजनीय ज्ञान (ग)। (ङ) पय अर्थ – प्रयोजनभूत शुद्धात्म स्वरूप की अनुभूति (ख)।

प्रश्न २ – सही विकल्प चुनकर लिखिये। (क) मोक्षमार्ग में आत्मानुभूति की उत्तरोत्तर वृद्धिंगत अवस्थाओं का ज्ञान करती है – (अ) पदवी (ब) परमेष्ठी (स) गुणस्थान (द) सिद्ध

(ख) आठ कर्मों से रहित आत्मा की पूर्ण शुद्ध दशा है – (अ) अरिहंत (ब) साधु (स) उपाध्याय (द) सिद्ध

(ग) हितकार अर्थ का बीजाक्षर मंत्र है – (अ) ॐ (ब) ह्रीं (स) श्रीं (द) अर्हं

प्रश्न ३ – लघु उत्तरीय प्रश्न – (क) ॐ श्रीं ह्रीं किसके वाचक मंत्र है ? (उत्तर स्वयं लिखें।) (ख) पंचार्थ को एक – एक वाक्य में स्पष्ट कीजिए। (उत्तर स्वयं लिखें।)

प्रश्न ४ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न – (क) पंचार्थ का स्वरूप चित्र, रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट कीजिये। उत्तर – संलग्न चित्र में। (ख) पदवी का स्वरूप ममलपाहुड़ जी ग्रन्थ की ६७ वीं फूलना तथा श्रावकाचार, ज्ञान समुच्चयसार जी के अनुसार लिखिये। (उत्तर स्वयं लिखें।)

श्री तारण तरण अध्यात्म पूजा (शुद्ध षट् कर्म)

अध्यात्म आराधना

मंगलाचरण

(दोहा)

शुद्धातम की वन्दना, करहुँ त्रियोग सम्हारि ।
षट् आवश्यक शुद्ध जो, पालूँ श्रद्धा धारि ॥ १ ॥

प्रणमूं आतम देव को, जो है सिद्ध समान ।
यही इष्ट मेरा प्रभो, शुद्धातम भगवान ॥ २ ॥

भव दु:ख से भयभीत हूँ, चाहूँ निज कल्याण ।
निज आतम दर्शन करूँ, पाऊँ पद निर्वाण ॥ ३ ॥

शुद्ध सिद्ध अर्हन्त अरू, आचारज उवझाय ।
साधु गण को मैं सदा, प्रणमूं शीश नवाय ॥ ४ ॥

वीतराग तारण गुरू, आराधक ध्रुव धाम ।
दर्शाते निज धर्म को, उनको करूं प्रणाम ॥ ५ ॥

जिनवाणी जिय को भली,करे सुबुद्धि प्रकाश ।
यातैं सरसुती को नमूं, करूं तत्त्व अभ्यास ॥ ६ ॥

देव शास्त्र गुरू को नमन, करके बारम्बार ।
करूं भाव पूजा प्रभो, यही मुक्ति का द्वार ॥ ७ ॥

छन्द

है देव निज शुद्धात्मा, जो बस रहा इस देह में ।
मन्दिर मठों में वह कभी, मिलता नहीं पर गेह में ॥
जिनवर प्रभु कहते स्वयं, निज आत्मा ही देव है ।
जो है अनन्त चतुष्टयी, आनन्द घन स्वयमेव है ॥ १ ॥

जैसे प्रभु अरिहन्त अरू सब, सिद्ध नित ही शुद्ध हैं ।
वैसे स्वयं शुद्धात्मा, चैतन्य मय सु विशुद्ध है ॥
दिव्य ध्वनि में पुष्प बिखरे, देव निज शुद्धात्मा ।
यह शुद्ध ज्ञान विज्ञान धारी, आत्मा परमात्मा ॥ २ ॥

सतदेव परमेष्ठी मयी, जिसका कि ज्ञान महान है ।
जिसमें झलकता है स्वयं, यह आत्मा भगवान है ॥
ऐसा परम परमात्मा, निश्चय निजातम रूप है ।
जो देह देवालय बसा, शुद्धात्मा चिद्रूप है ॥ ३ ॥

जो शुद्ध समकित से हुए, वे करें पूजा देव की ।
पर से हटाकर दृष्टि, अनुभूति करें स्वयमेव की ॥
निज आत्मा का अनुभवन, परमार्थ पूजा है यही ।
जिनराज शासन में इसे, कल्याणकारी है कही ॥ ४ ॥

मैं शुद्ध पूजा देव की, करता हूँ माँ हे ! सरस्वती ।
यह भाव पूजा नित्य करते, विज्ञजन ज्ञानी व्रती ॥
निश्चय सु पूजा में नहीं, आडम्बरों का काम है ।
पर में भटकने से कभी, मिलता न आतम राम है ॥ ५ ॥

किरिया करें पूजा कहें, कैसी जगत की रीति है ।
पूजा कभी होगी न उनकी, जिन्हें पर से प्रीति है ॥
जब आत्मदर्शन हो नहीं,फिर प्रपंचों से लाभ क्या ।
जब आत्मदर्शन हो सही,फिर प्रपंचों से काम क्या ॥ ६ ॥

पूजा की विधि

मैं एक दर्शन ज्ञान मय, शाश्वत सदा सुख धाम हूँ ।
चैतन्यता से मैं अलंकृत, अमर आतम राम हूँ ॥
संसार में बस इष्ट मेरा, यही शुद्ध स्वभाव है ।
जो स्वयं में परिपूर्ण है, जिसमें न कोई विभाव है ॥ ७ ॥

चिन्तामणी सम स्वयं का, चैतन्य तत्व महान है ।
निज का करूं मैं चिन्तवन, निज का करूं श्रद्धान है ॥
शुद्धात्मा ही देव है जो, गुण अनन्त निधान है ।
मैं स्वानुभव में देख लूं, आतम स्वयं भगवान है ॥ ८ ॥

जो हैं विचक्षण योगिजन, कर योग की निस्पंदना ।
ओंकार मयी ध्रुव धाम की, करते सदा वे वन्दना ॥
पर से हटा उपयोग को, करते निजातम अनुभवन ।
इस तरह होता है प्रभु, अरिहन्त सिद्धों को नमन ॥ ९ ॥

अध्यात्म भक्ति करके ज्ञानी, आत्मा को जानते ।
जो देव निज शुद्धात्मा, निश्चय उसे पहिचानते ॥

अपने ही शुद्ध स्वभाव में, ज्ञानी रमण करते सदा ।
चिद्रूप में तल्लीन हो, पाते परम शिव शर्मदा ॥ १० ॥
शर्मदा = सुख देने वाला

ज्ञानी परम ध्यानी स्वयं में, लीन कर उपयोग को ।
निज का ही करते अनुभवन,तजकर सकल संयोग को ॥
जिनवर कहें ज्ञानी वही, जो जानते इस मर्म को ।
वे प्राप्त करते हैं महा, महिमा मयी जिन धर्म को ॥ ११ ॥

अरिहन्त सिद्धों सम स्वयं, शुद्धात्मा प्रत्यक्ष है ।
यह स्वानुभूति गम्य है, निज में रमूं, दृढ़ लक्ष्य है ॥
सत देव पूजा करूं मैं, पा जाऊँ सिद्धि की निधि ।
उपयोग को निज में लगाना, देव पूजा की विधि ॥ १२ ॥

निश्चय सु पूजा है यही, मंगलमयी सुखवर्द्धिनी ।
इससे प्रगटता सिद्ध पद, आनन्द वृद्धि षट् गुणी ॥
व्यवहार से पद देव प्राप्ति, हेतु जो साधन कहे ।
मैं करूं वैसी साधना, उस भावना में मन रहे ॥ १३ ॥

व्यवहार पूजा का स्वरूप

अरिहन्त सिद्धाचार्य अरु, उवझाय मुनि महाराज हैं ।
यह पंच परमेष्ठी परम गुण, आत्मा के काज हैं ॥
निज आत्मा में ही प्रगटते, देव के यह गुण सभी ।
पर में करो अन्वेषणा, निज गुण मिलेंगे न कभी ॥ १४ ॥

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान चारित, मयी है निज आत्मा ।
पहिचानते ज्ञानी इसे, नहिं जानते बहिरात्मा ॥
निज आत्मा को छोड़, पर में रत्नत्रय मिलते नहीं ।
जड़ में कभी चैतन्य के, सुन्दर कमल खिलते नहीं ॥ १५ ॥

चतुरानुयोगों और जिनवाणी, मयी निज आत्मा ।
है स्वयं केवलज्ञान मय, सर्वज्ञ निज परमात्मा ॥
सम्यक्त्व आदि अष्ट गुण मय, सिद्ध सम है आत्मा ।
सोलह जु कारण भाव से, प्रगटे सुपद परमात्मा ॥ १६ ॥

होता इन्हीं भावों से, तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध है ।
इस अर्थ में शुभ रूप है, पर आत्मा निर्बन्ध है ॥
उत्तम क्षमा आदि कहे, व्यवहार से दश धर्म हैं ।
इनका धनी निज आत्मा, यह जिन वचन का मर्म है ॥ १७ ॥

अष्टांग सम्यग्दृष्टि के, नि:शंकितादि जो कहे ।
अष्टांग सम्यग्ज्ञान मय, ज्ञानी सदा निज में रहे ॥

पाँचों महाव्रत समिति पाँचों, गुप्तियाँ त्रय आचरूं ।
इन पचहत्तर गुण पुंज से, देवत्व पद प्राप्ति करूं ॥ १८ ॥

जब तक करूं अरिहन्त, सिद्धों का गुणों से चिन्तवन ।
निज आत्मा की साधना, मैं करूं आराधन मनन ॥
तब तक इसे व्यवहार पूजा, कही श्री जिन वचन में ।
यह वह कुशल व्यवहार है, जो हेतु निज अनुभवन में ॥ १९ ॥

अरिहन्त को जो, द्रव्य गुण पर्याय, से पहिचानता ।
निश्चय वही निज देव रूपी, स्व समय को जानता ॥
सुज्ञान का जब दीप जलता है, स्वयं के हृदय में ।
मोहान्ध टिक पाता नहीं, आत्मानुभव के उदय में ॥ २० ॥

मैं मोह रागादिक विकारों से, रहित अविकार हूँ ।
ऐसी निजातम स्वानुभूति मय, समय का सार हूँ ॥
यह निर्विकल्प स्वरूप मयता, वास्तविक पूजा यही ।
जो करे अनुभव गुण पचहत्तर, से भविकजन है वही ॥ २१ ॥

पूजा का महत्व और सम्यक्त्व के आठ अंग

इस भाव पूजा विधि से, होता उदय सम्यक्त्व का ।
अष्टांग अरू गुण अष्ट सह, पुरुषार्थ जगता मुक्ति का ॥
मुझको नहीं शंका रहे, जिन वचन के श्रद्धान में ।
मैं सकल वांछा को तजूं, ज्ञायक रहूं निज ज्ञान में ॥ २२ ॥

जो वस्तु जैसी है सदा, वैसी रहे त्रय काल में ।
किससे करूं ग्लानि घृणा, क्यों पडूं इस जंजाल में ॥
नित रहे मेरी तत्व दृष्टि, मूढ़ता को मैं तजूं ।
तत्वार्थ के निर्णय सहित, स्व समय को मैं नित भजूं ॥ २३ ॥

निज गुणों को, पर औगुणों को, मैं सदा ढकता रहूँ ।
गर हो किसी से भूल तो भी, मैं किसी से न कहूँ ॥
कामादि वश गर कोई साधर्मी, धरम पथ से डिगे ।
तो मैं करूं वह कार्य जिससे, फिर सुपथ में वह लगे ॥ २४ ॥

मैं करूं स्थित स्वयं को भी, मोक्ष के पथ में प्रभो ।
साधर्मियों से नित मुझे, गौ वत्स सम वात्सल्य हो ॥
व्यवहार में जिन धर्म की, मैं करूं नित्य प्रभावना ।
बहती रहे मम हृदय में, सु विशुद्ध आतम भावना ॥ २५ ॥

निरतिचार सम्यक्त्व पालन की भावना

शंका नहीं कांक्षा नहीं अरू, न ही विचिकित्सा धरूं ।
मैं अन्य दृष्टि की प्रशंसा, और न स्तुति करूं ॥
अतिचार भी न लगे कोई, मुझे समकित में कभी ।
समकित रवि के तेज में, यह दोष क्षय होवें सभी ॥ २६ ॥

सम्यक्त्व के आठ गुण मय भाव पूजा

संवेग

हे प्रभो ! अब मैं न पडूं, संसार के जंजाल में ।
मुझको भटकना न पड़े, जग महावन विकराल में ॥
आवागमन से छूट जाऊँ, बस यही है भावना ।
संवेग गुण मय करूं पूजा, धारि चतु आराधना ॥ २७ ॥

निर्वेद

संसार तन अरू भोग दु:ख मय, रोग हैं भव ताप हैं ।
उनके निवारण हेतु यह, निर्वेद गुण की जाप है ॥
नि:शल्य हो निर्द्वन्द हो, निर्लोभ अरू नि:क्लेश हो ।
निर्वेद गुण धारण करूं, यह आत्मा परमेश हो ॥ २८ ॥

निन्दा

यह शल्य के मिथ्यात्व के, कुज्ञान मय जो भाव हैं ।
जितने अशुभ परिणाम अरू, सब राग द्वेष विभाव हैं ॥
अक्षय सु पद प्राप्ति के हेतु, नित करूं आलोचना ।
निन्दा करूं मैं दुर्गुणों की, भव भ्रमण दु:ख मोचना ॥ २९ ॥

गर्हा

निज दोष गुरू के सामने, निष्कपट होकर के कहूं ।
जो जो हुई हैं गल्तियाँ, उनका सुप्रायश्चित चहूं ॥
निर्दोष होने के लिये, निन्दा गर्हा उर में धरूं ।
अन्तर विकारों को जलाकर, मुक्ति की प्राप्ति करूं ॥ ३० ॥

उपशम

भीतर भरा निज ज्ञान सिंधु, जलधि सम लहरा रहा ।
ऐसी परम सित शांति को,सम्यक्त्व गुण उपशम कहा ॥ सित = शीतल,समता युक्त
भव रोग हरने हेतु मैं, नित ज्ञान में ही आचरूं ।
उपशम सुगुण से करूं पूजा, शान्त समता में रहूं ॥ ३१ ॥

भक्ति

भक्ति करूं सत देव की, गुरू शास्त्र की व्यवहार से ।
निश्चय अपेक्षा गाढ़ प्रीति, हो समय के सार से ॥
सु ज्ञान का दीपक जला, मोहान्ध की कर दूं विदा ।
इस हेतु से भक्ति करूं , पा जाऊं शिव पद शर्मदा ॥ ३२ ॥

वात्सल्य

साधर्मियों से हे प्रभो, मुझको सदा वात्सल्य हो ।
ईर्ष्यादि दोष विहीन मेरा, मन सदा निःशल्य हो ॥
चैतन्य मूर्ति आत्मा से, प्रीति हो अनुराग हो ।
निज में रमूं निज में जमूं, आठों करम का त्याग हो ॥ ३३ ॥

निष्कर्म पद की प्राप्ति हेतु, वत्सलत्व ग्रहण करूं।
होगी सफल पूजा तभी, जब मैं भवोदधि से तरूं ॥

अनुकम्पा

संसार के षट्काय जीवों पर, दया परिणाम हो ।
मुझसे कभी कोई दुःखी न हो, सुबह या शाम हो ॥ ३४ ॥

मेरी रहे मुझ पर दया, आतम दुःखी न हो कभी ।
निज आत्मा से दूर ठहरें, मोह रागादिक सभी ॥
मैं मुक्ति फल की प्राप्ति हेतु, शुद्ध अनुकम्पा धरूं ।
शुद्धात्मा में लीन होकर, मुक्ति की प्राप्ति करूं ॥ ३५ ॥

अष्टांग अरू गुण सहित, संयम आचरण पथ पर चलूं ।
होकर विरागी वीतरागी, कर्म के दल को दलूं ॥
सम्पूर्ण पापों से रहित, व्रत महाव्रत को आचरूं ।
निज रूप में तल्लीन हो, अरिहन्त पद प्राप्ति करूं ॥ ३६ ॥

सब कर्म विघटें ज्ञान प्रगटे, पूर्ण शुद्ध दशा प्रभो ।
आठों सुगुण प्रगटें सुसम्यक्, ज्ञान दर्शन शुद्ध जो ॥
अगुरूलघु अवगाहना, सूक्ष्मत्व वीरज के धनी ।
बाधा रहित निर्लेप हैं प्रभु सिद्ध, लोक शिखा मणी ॥ ३७ ॥

निश्चय तथा व्यवहार से, मुक्ति का शाश्वत पंथ है ।
भीतर हुआ है स्वानुभव, तब आचरण निर्ग्रन्थ है ॥
हो पूज्य के सम आचरण, पूजा वही सच्ची कही ।
गर आचरण में भेद है, तो फिर हुई पूजा नहीं ॥ ३८ ॥

अरिहन्त आदि देव पद, निज आत्मा में शोभते ।
अज्ञान मय जो जीव हैं, वे अदेवों में खोजते ॥
जल के विलोने से कभी, मक्खन निकलता है नहीं ।
ज्यों रेत पेलो कोल्हुआ में, तेल मिलता है नहीं ॥ ३९ ॥

त्यों ही करे जो अदेवों में, देव की अन्वेषणा ।
पर देव न मिलता कभी, यह जिन प्रभु की देशना ॥
देवत्व का रहता सदा, चैतन्य में ही वास है ।
कैसे मिले वह अचेतन में, जो स्वयं के पास है ॥ ४० ॥

चैतन्य मय सतदेव की, जो वन्दना पूजा करें ।
वे परम ज्ञानी ध्यान रत हो, मोक्ष लक्ष्मी को वरें ॥
इस तरह पूजा देव की कर, गुरू का सुमरण करूं।
उनके गुणों को प्रगट कर, संसार सागर से तरूं॥ ४१ ॥

शुद्ध गुरू उपासना

जो वीतरागी धर्म ध्यानी, भाव लिंगी संत हैं ।
रमते सदा निज आत्मा में, शांति प्रिय निर्ग्रन्थ हैं ॥
करते मुनि ज्ञानी हमेशा, स्वानुभव रस पान हैं ।
वे ही तरण तारण गुरू, जग में जहाज समान हैं ॥ ४२ ॥

जिनको नहीं संसार तन, भोगों की कोई चाह है ।
वे जगत जीवों को बताते, आत्म हित की राह है ॥
जो रत्नत्रय की साधना, आराधना में लीन हैं ।
व्यवहार से मेरे गुरू, जो राग-द्वेष विहीन हैं ॥ ४३ ॥

ऐसे सुगुरू के सद्‌गुणों का, स्मरण चिन्तन मनन ।
करना थुति अरू वन्दना, बस है यही सद्‌गुरू शरण ॥
निज अन्तरात्मा निज गुरू, यह नियत नय से जानना ।
ज्ञाता सदा रहना सुगुरू की, है यही आराधना ॥ ४४ ॥

संसार में जो अज्ञजन, कुगुरू अगुरू को मानते ।
वे डूबते मझधार में, संसार की रज छानते ॥
इससे सदा बचते रहो, झूठे कुगुरू के जाल से ।
बस बनो शुद्ध गुरू उपासक, बचो जग जंजाल से ॥ ४५ ॥

शुद्ध स्वाध्याय

जिस ग्रन्थ में हो वीतरागी, जिन प्रभु की देशना ।
जो प्रेरणा दे जीव को, तुम करो स्व संवेदना ॥

जिसमें न होवे दोष कोई, पूर्व अपर विरोध का ।
उस शास्त्र का स्वाध्याय करना, लक्ष्य रख निज बोध का ॥ ४६ ॥

सत्शास्त्र का अध्ययन मनन, व्यवहार से स्वाध्याय है ।
ध्रुव धाम का चिंतन मनन, नय नियत का अभिप्राय है ॥
मन वचन तन की एकता कर, लीन हो निज ज्ञान में ।
स्वाध्याय निश्चय है यही, स्वाधीन हो निज ध्यान में ॥ ४७ ॥

शुद्ध संयम

संयम कहा है द्विविध, पहला इन्द्रियाँ मन वश करो ।
षट् काय जीवों पर दया, रक्षा अपर संयम धरो ॥
पंचेन्द्रियों के अश्व चंचल हैं, इन्हें वश में रखूं ।
संयम सहित धर कर धरम, अमृत रसायन को चखूं ॥ ४८ ॥

व्यवहार से संयम कहा, निश्चय सुरत निज की रहे ।
'मैं शुद्ध हूँ' उपयोग सम्यक् ज्ञान धारा में बहे ॥
त्रय रत्न का निर्मल सलिल, जो ज्ञान मय नित बह रहा ।
अवगाह इसमें नित करो, निश्चय यही संयम कहा ॥ ४९ ॥

शुद्ध तप

इच्छा रहित निःक्लेश हो, तप साधना उर धारना ।
द्वादस विधि तप आचरण कर, कर्म रिपु निरवारना ॥
रागादि सब विकृत विभावों, पर न दृष्टि डालना ।
निज रूप में लवलीन होकर, शुद्ध तप को पालना ॥ ५० ॥

निश्चय तथा व्यवहार से, शाश्वत रहे तप की कथा ।
निर्द्वन्द होकर धारि लो, मिट जायेगी जग की व्यथा ॥
पुरुषार्थ के इस मार्ग पर, आलस कभी करना नहीं ।
यह शुद्ध तप पहुँचायेगा, जहां ज्ञान झड़ियां लग रहीं ॥ ५१ ॥

शुद्ध दान

जो वीतरागी साधु उत्तम, और मध्यम अणुव्रती ।
तत्वार्थ श्रद्धानी जघन है, पात्र अविरत समकिती ॥
श्रावक सदा देता सु पात्रों को, चतुर्विधि दान है ।
आहार औषधि अभय अरु, चौथा कहा वह ज्ञान है ॥ ५२ ॥

शुभ भावना से विधि सहित, यह दान है व्यवहार से ।
होगा सु निश्चय दान जब, मुंह मोड़ लो संसार से ॥

है पात्र शुद्ध स्वभाव अरु, दाता कहा उपयोग को ।
सम्पन्न होता दान जब, सम्यक्त्व का शुभ योग हो ॥ ५३ ॥

उपयोग का निज रूप में ही, लीन होना दान है ।
है यह अनोखा दान जो, देता परम निर्वाण है ॥
शुभ दान से हो देवगति, अरु शुद्ध से मुक्ति मिले ।
चैतन्य उपवन में रहो, तब पुष्प आनन्द के खिलें ॥ ५४ ॥

सत्श्रावकों को शुद्ध आवश्यक, कहे षट् कर्म हैं ।
जो भव्य इनको पालते, मिलता उन्हें शिव शर्म है ॥
रचते सदा जो प्रपंचों को, वे भ्रमे संसार में ।
मेरी लगे भव पार नैया, फँसे नहीं मझधार में ॥ ५५ ॥

(१) मैत्री भावना

जग के सकल षट् काय प्राणी, ज्ञान मय रहते सभी ।
मुझको रहे सत्वेषु मैत्री, हो सफल जीवन तभी ॥
व्यवहार में सब प्राणियों के, प्रति हो सद्भावना ।
निश्चय स्वयं से प्रीति हो, बस यही मैत्री भावना ॥ ५६ ॥

(२) प्रमोद भावना

जो मोक्ष पथ के पथिक हैं, निज आत्म ज्ञानी संत हैं ।
वे देशव्रत के धनी हैं अथवा, मुनि गुणवन्त हैं ॥
उन ज्ञानियों को देखकर, भर जाए हियरा प्रेम से ।
बस हो प्रमोद सु भावना, श्रद्धान मय व्रत नेम से ॥ ५७ ॥

(३) कारुण्य भावना

संसार में जो जीव दु:ख से, त्रस्त साता हीन हैं ।
वे अशुभ कर्मोदय निमित से, दरिद्री अरू दीन हैं ॥
ऐसे सकल जन दीन दुखियों, पर मुझे करूणा रहे ।
दु:ख मय कभी न हो निजातम, सत धरम शरणा गहे ॥ ५८ ॥

(४) माध्यस्थ भावना

जो जीव सत्पथ से विमुख हैं, धर्म नहिं पहिचानते ।
अज्ञान वश पूर्वाग्रही, एकान्त हठ को ठानते ॥
ऐसे कुमार्गी हठी जीवों, पर मुझे माध्यस्थ हो ।
मैं रखूं समता भाव सब पर, स्वयं में आत्मस्थ हो ॥ ५९ ॥

अध्यात्म ही संसार के, क्लेशोदधि का तीर है ।
चलता रहूं इस मार्ग पर, मिट जायेगी भव पीर है ॥
ज्ञानी बनूं ध्यानी बनूं अरु , शुद्ध संयम तप धरूं ।
व्यवहार निश्चय से समन्वित, मुक्ति पथ पर आचरूं ॥ ६० ॥

दोहा

मुझको दो माँ आत्मबल, करूँ परम पुरुषार्थ ।
निज स्वभाव में लीन हो, पा जाऊं परमार्थ ॥ १ ॥

शुद्ध षटावश्यक विधि, पूजा भाव प्रधान ।
कीनी है शुभ भाव से, चाहूँ निज कल्याण ॥ २ ॥

आवश्यक षट् कर्म जो, शुद्ध कहे गुरू तार ।
इनका मैं पालन करूं, हो जाऊं भव पार ॥ ३ ॥

ब्रह्मानन्द स्वरूप मय, वीतराग निज धर्म ।
धारण कर निज में रमूं, विनसें आठों कर्म ॥ ४ ॥

देव गुरू आगम धरम, ज्ञायक आतम राम ।
तीनों योग सम्हारि के, शत-शत करूं प्रणाम ॥ ५ ॥

जय तारण तरण

देव (परमात्मा)	-	तारण तरण
गुरू	-	तारण तरण
धर्म (स्वभाव)	-	तारण तरण
शुद्धात्मा	-	तारण तरण
बोलो तारण तरण	-	जय तारण तरण

अध्यात्म

अध्यात्म का अर्थ है - अपने आत्म स्वरूप को जानना। अध्यात्म एक विज्ञान है, एक कला है, एक दर्शन है। अध्यात्म मानव के जीवन में जीने की कला के मूल रहस्य को उद्घाटित कर देता है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति करो ।

(क) जो देह देवालय बसा............चिद्रूप है ।

(ख) जब आत्मदर्शन हो सही, फिर............से काम क्या ।

(ग) .... सम स्वयं का, चैतन्य तत्व महान है ।

(घ) अध्यात्म भक्ति करके ज्ञानी............को जानते हैं ।

(ङ) ....प्रत्यक्ष अनुभूति गम्य है ।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनिये ।

(क) सोलह कारण भावनाओं के भाने से स्वर्ग मिलता है । (सत्य/असत्य)

(ख) सम्यक्दृष्टि के आठ अंग होते हैं । (सत्य/असत्य)

(ग) चार महाव्रत, पंच समिति, चार गुप्ति होती है । (सत्य/असत्य)

(घ) मैं मोह रागादिक विकारों से रहित अविकार हूँ । (सत्य/असत्य)

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये ।

संवेग – विभाव, दुर्गुणों की आलोचना

गर्हा – संसार से छूटने की भावना

अनुकम्पा – स्वयं का दोष कहकर प्रायश्चित लेना

निन्दा – दया परिणाम

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनिये ।

(१) ध्रुव धाम का चिंतन मनन कहलाता है ।

(अ) संयम (ब) निश्चय स्वाध्याय (स) व्यवहार स्वाध्याय (द) शुद्ध तप

(२) उपासना तो––––की होती है ।

(अ) गुरुओं की (ब) वीतरागी निर्ग्रन्थ गुरुओं की (स) सद्गुरु के गुणों की (द) गुरु चरणों की

प्रश्न ५ – लघु उत्तरीय प्रश्न । निम्नलिखित परिभाषायें लिखिये ।

(क) निःशंक्ति, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, वात्सल्य

(ख) निर्वेद, उपशम, भक्ति, शुद्ध संयम, शुद्ध तप

(ग) मैत्री भावना, प्रमोद भावना, मध्यस्थ भावना

प्रश्न ६ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न ।

(क) सम्यक्त्व के आठ अंग और आठ गुणों का संक्षिप्त परिचय दीजिये ।

(ख) अध्यात्म आराधना के आधार पर पूजा विधि का परिचय दीजिये ।

श्री पंडितपूजा जी

संक्षिप्त परिचय

सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्ज्ञान की ही संज्ञा ज्ञान है। ज्ञान का सामान्य लक्षण बताते हुए आचार्यों ने कहा है – '' जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञाप्ति मात्रं वा ज्ञानम्'' जो जानता है वह ज्ञान है अथवा जिसके द्वारा जाना जाये वह ज्ञान है। जानना मात्र ज्ञान है। ज्ञान क्रिया में परिणत आत्मा ही ज्ञान है क्योंकि वह ज्ञान स्वभावी है। ज्ञान जीव का विशेष गुण है जो स्व और पर दोनों को जानने में समर्थ है। वह पाँच प्रकार का है – मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान। अनादि काल से मोह का आवरण होने के कारण जीव स्व व पर में भेद नहीं देख पाता। शरीर आदि पर पदार्थों को ही निज स्वरूप मानता है इसी से मिथ्याज्ञान या अज्ञान नाम पाता है। सम्यक्त्व के प्रभाव से पर पदार्थों से भिन्न निज स्वरूप को जानने लगता है यही भेदज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

सम्यग्ज्ञान ही जीव को परम इष्ट है। जीव स्वयं को स्वयं से जाने यह निश्चय सम्यग्ज्ञान है। उसको प्रगट करने में निमित्तभूत आगम ज्ञान व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहलाता है। निश्चय सम्यग्ज्ञान ही वास्तव में मोक्ष का कारण है,व्यवहार सम्यग्ज्ञान नहीं।

आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने श्री पंडित पूजा जी ग्रंथ में चित्प्रकाश के स्वानुभव प्रमाण सम्यग्ज्ञान का प्रतिपादन किया है।

सम्यक्दृष्टि ज्ञानी सिद्ध परमात्मा के समान अपने चिद्रूप स्वभाव का वेदन करता है। शुद्ध स्वभाव में उपयोग स्थिर करता है, इस प्रकार निश्चय देव पूजा करता है। अपने अंतरात्मा को जाग्रत कर स्वयं के रत्नत्रय गुणों का वेदन करता है यही गुरू उपासना है। मति श्रुत ज्ञान के बल से पंचम केवलज्ञान मयी ज्ञान मात्र स्वभाव की अनुभूति सहित आराधना करता है यही ज्ञान मयी शास्त्र की पूजा है। ज्ञानी गुणों की पूजा करता है। सम्यग्ज्ञान के जल में स्नान कर, मिथ्यात्व, शल्य, कषाय, मन की चपलता आदि विकारों का प्रक्षालन करता है। धर्म रूप स्वभाव के वस्त्र, रत्नत्रय के आभरण, समता मयी मुद्रा की मुद्रिका और ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट धारण कर सम्यक्ज्ञानी दृष्टि की निर्मलता पूर्वक वीतराग भाव सहित निज शुद्धात्म देव का दर्शन करता है। ज्ञान मार्ग में यही ज्ञान पूर्वक देवाराधना की विधि है।

सम्यक्ज्ञानी द्रव्य स्वभाव की स्तुति करता है। स्वभाव का बहुमान जाग्रत हो ऐसी यथार्थ भक्ति करता है। निश्चय से उपयोग को स्वभाव के प्रति समर्पित कर निश्चय दान का सुख भोग करता है। भूमिकानुसार व्यवहार में पात्रों को दान भी देता है। सम्यक्ज्ञानी जानता है कि चार संघ के जीवों को स्व समय शुद्धात्मा ही प्रयोजनीय है। यही सर्व तत्त्वों का सार है। सम्यग्ज्ञान अंतरशोधन का मार्ग प्रशस्त करता है। विकारों एवं विपरीत मान्यताओं का परिमार्जन कर स्वभाव में स्थित करता है। चारित्र को प्रगट करता है। इस प्रकार पूज्य के समान आचरण को सच्ची पूजा कहते हैं।

श्री पंडित पूजा जी ग्रंथ में ऐसे असाधारण ज्ञान गुण की महिमा, सम्यक्ज्ञानी के द्वारा परमात्म पद की प्राप्ति हेतु की जाने वाली आध्यात्मिक पूजा विधि,आत्म साधना और अंतरशोधन के मार्ग का निश्चय-व्यवहार के समन्वय पूर्वक अद्भुत विवेचन किया गया है।

गाथा – १

सिद्ध प्रभु के समान निज शुद्धात्मा

उवंकारस्य ऊर्धस्य, ऊर्ध सद्भाव सास्वतं ।
विन्द स्थानेन तिस्टंते, न्यानं मयं सास्वतं ध्रुवं ॥

अन्वयार्थ – (उवंकारस्य) ॐकार के **(ऊर्धस्य)** ऊर्ध्ववर्ती बिन्दुवत् **(ऊर्ध)** ऊर्ध्वगमन **(सद्भाव)** स्वभाव द्वारा **(सास्वतं)** शाश्वत **(विन्द स्थानेन)** विन्द स्थान में **(तिस्टंते)** रहने वाला **(न्यानं मयं)** ज्ञानमयी **(सास्वतं)** अविनाशी **(ध्रुवं)** ध्रुव स्वभाव जयवंत हो ।

अर्थ – ॐकार के ऊर्ध्ववर्ती बिन्दु के समान ऊर्ध्वगमन स्वभाव द्वारा शाश्वत विन्द स्थान में रहने वाला ज्ञानमयी अविनाशी ध्रुव स्वभाव अपने में सदा प्रकाशमान हो रहा है, ऐसा महिमामय सिद्ध स्वभाव सदा जयवंत हो।

प्रश्न १ – **उवंकारस्य ऊर्धस्य इस प्रथम गाथा का अभिप्राय क्या है ?**

उत्तर – आत्मा ॐकारमयी पंच परमेष्ठी पद का धारी शुद्ध–बुद्ध ज्ञान स्वरूप है। जो जीव अपने शुद्ध स्वभाव में लीन होकर ऊर्ध्व गमन करता है, वह त्रिकाली चैतन्य स्वभाव में लीन होकर निर्विकल्प मोक्ष सुख में सदा विराजता है, वही सिद्ध परमात्मा कहलाता है। उन्हीं सिद्ध परमात्मा के समान महिमामय मेरा भी शुद्ध सत्स्वरूप है।

प्रश्न २ – **आत्मा ऊर्ध्वगमन कैसे करता है ?**

उत्तर – आत्मा स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करता है। जिस प्रकार –

१. मिट्टी के लेप से युक्त तुम्बी मिट्टी के लेप छूटने पर पानी में ऊपर की ओर गमन करती है।

२. कुम्हार के चाक पर रखी हुई मिट्टी हाथ लगाते ही ऊपर की ओर जाती है।

३. एरण्ड का बीज फली फूटते ही ऊपर की ओर जाता है।

४. अग्नि की शिखा जैसे स्वाभाविक रूप से ऊपर की ओर गमन करती है, इसी प्रकार आत्मा भी स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करता है।

प्रश्न ३ – **आत्मा विंद स्थान में रहने वाला है इसका क्या तात्पर्य है ?**

उत्तर – जिस प्रकार ॐ मंत्र में विन्दु सबसे ऊपर रहती है, इसी प्रकार आत्मा स्वभाव से निर्विकल्प विन्द स्थान में रहने वाला सिद्ध के समान है।

गाथा – २

ध्रुव स्वभाव की वन्दना

निरु निश्चै नय जानन्ते, सुद्ध तत्व विधीयते ।
ममात्मा गुनं सुद्धं, नमस्कारं सास्वतं ध्रुवं ॥

अन्वयार्थ–(निरु निश्चै नय) परम शुद्ध निश्चय नय से [ज्ञानी] **(जानन्ते)** जानते हैं कि **(ममात्मा)** मेरी आत्मा के **(गुनं)** गुण [सिद्ध के समान] **(सुद्धं)** शुद्ध हैं **(सुद्ध तत्व)** शुद्ध तत्त्व को [प्राप्त करने की]

(विधीयते) यही विधि है **(सास्वतं)** ऐसे शाश्वत **(ध्रुवं)** ध्रुव स्वभाव को **(नमस्कारं)** नमस्कार है।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी परम शुद्ध निश्चय नय से जानते हैं कि मेरी आत्मा के गुण सिद्ध परमात्मा के समान शुद्ध हैं, ऐसा जानते हुए स्वभाव की साधना आराधना करते हैं, शुद्ध तत्त्व को प्राप्त करने की यही विधि है।

प्रश्न १ – ज्ञानीजन अपनी आत्मा को कैसा जानते हैं ?

उत्तर – ज्ञानीजन अपनी आत्मा को सिद्ध के समान शुद्ध कर्म रहित ज्ञानमयी चित्प्रकाशमान अनंत गुण स्वरूपी जानते हैं।

प्रश्न २ – ज्ञानी किस प्रकार शुद्धात्म स्वरूप को नमस्कार करते हैं ?

उत्तर – ध्रुव तत्त्व शुद्धात्मा ही वंदनीय है। इसी की साधना से सिद्धत्व प्रगट होता है। ज्ञानीजन अरिहंत सिद्ध परमात्मा के समान स्व स्वरूप में सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक लीन होते हैं। इस प्रकार यथार्थ विधि से शुद्धात्म स्वरूप को नमस्कार करते हैं।

प्रश्न ३ – आत्मा महिमा मय तत्त्व है, फिर भी उपयोग अपने में क्यों नहीं लगता है ?

उत्तर – सिद्ध के समान निज ध्रुव तत्त्व शुद्धात्मा स्व – पर प्रकाशक चैतन्य स्वरूप अनंत गुणों का भंडार है। ऐसा जानते हुए भी आत्महित की रुचि न होने से उपयोग अपने में नहीं लगता है।

प्रश्न ४ – आत्मा का बोध कब जागता है और मुक्ति मार्ग कैसे बनता है ?

उत्तर – स्वभाव की रुचि होने पर पाप विषय कषायों से अरुचि हो जाती है। इससे आत्म स्वरूप का बोध होता है। इस तरह उपयोग के आत्मोन्मुखी होने से मुक्ति का मार्ग बनता है।

गाथा – ३

सच्चे देव की पूजा विधि

उवं नमः विंदते जोगी, सिद्धं भवति सास्वतं ।
पंडितो सोपि जानन्ते, देव पूजा विधीयते ॥

अन्वयार्थ – (जोगी) योगीजन **(उवं नमः)** ओम् नमः का **(विंदते)** अनुभव करते हैं और **(सास्वतं)** शाश्वत **(सिद्धं)** सिद्ध **(भवति)** हो जाते हैं **(पंडितो)** सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(सोपि)** वह भी [इस रहस्य को] **(जानन्ते)** जानते हैं **(देव पूजा)** देव पूजा की **(विधीयते)** यही विधि है।

अर्थ – आत्म रसिक वीतरागी योगीजन ओम् नमः अर्थात् निज शुद्धात्मा का निरंतर अनुभव करते हैं और स्वानुभूति में रत रहते हुए शाश्वत सिद्ध हो जाते हैं, सम्यक्दृष्टि ज्ञानी भी इस रहस्य को जानते हैं, वे अपने उपयोग को स्वभाव में लगाते हैं, देव पूजा की यही विधि है।

प्रश्न १ – उवं नम: का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – स्वानुभूति में ओंकारमयी सिद्ध स्वरूप के प्रति समर्पण ही उवं नम: का अभिप्राय है।

प्रश्न २ – योगी किसको कहते हैं ?

उत्तर – ऐसे साधु जो संसार शरीरादि संयोग से पूर्ण विरक्त होते हैं, जिनको व्यवहार में मन वचन काय की एकता और स्थिरता होती है। निश्चय में जिनका उपयोग शुद्ध स्वभाव में लीन रहता है उन्हें योगी कहते हैं।

प्रश्न ३ – पंडित किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो जीव सत्संग और भेदज्ञान द्वारा अपने सत्स्वरूप को जान लेता है। जिसे निज शुद्धात्मानुभूति पूर्वक तत्त्व निर्णय हो जाता है, जो स्वाभाविक जीवन जीता है वह पंड्ति ज्ञानी कहलाता है।

प्रश्न ४ – इस गाथा में कारण कार्य का कथन किस प्रकार घटित होता है ?

उत्तर – ''उवं नम: विंदते जोगी, सिद्धं भवति सास्वतं '' गाथा के प्रथम दो चरण में कारण कार्य की सिद्दि हुई है। प्रथम चरण में कहा है कि योगी उवं नम: अर्थात् ॐकार मयी सिद्ध स्वरूप का अनुभव करते हैं। यहां सिद्ध स्वरूप कारण है। दूसरे चरण में कहा है कि शाश्वत सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार द्वितीय चरण में सिद्ध स्वरूप की प्रगटता कार्य है। इस प्रकार इस गाथा में कारण कार्य का कथन घटित होता है।

प्रश्न ५ – पंडित कौन है, इस संदर्भ में आचार्य तारण स्वामी एवं अन्य जैनाचार्य क्या कहते हैं ?

उत्तर – पंडित की परिभाषा के संबंध में आचार्य तारण स्वामी जी एवं अन्य आचार्यों का कथन इस प्रकार है –

देवं च न्यान रूपेन, परमिस्टी च संजुतं ।
सो अहं देह मध्येषु, यो जानाति स पंडिता ॥

देव जो ज्ञान स्वरूपी है और परमेष्ठी पद से संयुक्त है। वैसा ही मैं इस देह में विराजमान हूँ, जो ऐसा जानता है वह पंडित है।

कर्म अस्ट विनिर्मुक्तं,मुक्ति स्थानेषु तिस्टिते ।
सो अहं देह मध्येषु, यो जानाति स पंडिता॥

जो आठों कर्मों से पूर्ण मुक्त शुद्ध सिद्ध परमात्मा लोक के अग्रभाग में तिष्ठते हैं, वैसा ही मैं इस देह में विराजमान हूँ जो ऐसा जानता है वह पंडित है।

(आचार्य तारण स्वामी, श्रावकाचार गाथा–४२,४३)

पण्डिय विवेय सुद्धं, विन्यानं न्यान सुद्ध उवएसं ।
संसार सरनि तिक्तं, कम्मक्खय विमल मुक्ति गमनं च ॥

जो विवेक से शुद्ध हैं, शुद्ध ज्ञान विज्ञान का उपदेश देते हैं, संसार के परिभ्रमण को त्याग कर कर्मों को क्षय कर विमल मुक्ति को प्राप्त करते हैं वह पंडित अर्थात् सम्यक्ज्ञानी हैं।

(आचार्य तारण स्वामी, उपदेश शुद्ध सार गाथा–३२)

देह विभिण्णउ णाणमउ, जो परमप्पु णिएइ ।
परम समाहि परिट्ठियउ, पंडिउ सो जि हवेइ ॥

जो परमात्मा को शरीर से भिन्न और केवलज्ञान से पूर्ण जानता है, वह परम समाधि में तिष्ठता हुआ अंतरात्मा अर्थात् विवेकी है, पंडित है। (श्री योगीन्दुदेव, परमात्म प्रकाश– १/१४)

जो परियाणइ अप्पु परु जो पर भाव चएइ ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु सो संसारु मुएइ ॥

जो परमात्मा को समझता है और परभाव का त्याग करता है उसे पंडित अंतरात्मा समझो। वह जीव संसार को त्याग देता है।

गाथा – ४

स्वानुभव महिमा, गुरू उपासना का फल

ह्रियंकारं न्यान उत्पन्नं,उवंकारं च विन्दते ।
अरहं सर्वन्य उक्तं च, अचष्य दरसन दिस्टते ॥

अन्वयार्थ – (अरहं) वीतरागी अरिहंत **(सर्वन्य)** सर्वज्ञ परमात्मा **(उक्तं)** कहते हैं [जो जीव] **(उवंकारं च)** ॐकार स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व का **(विन्दते)** अनुभव करते हैं **(च)** और **(अचष्य दरसन)** चिंतन मनन अनुभवन रूप अचक्षु दर्शन अर्थात् आत्मोन्मुखी द्रव्य दृष्टि से **(दिस्टते)** देखते हैं [**उन्हें**] **(ह्रियंकारं)** अपने परमात्म स्वरूप का **(न्यान)** ज्ञान **(उत्पन्नं)** उत्पन्न हो जाता है।

अर्थ – वीतरागी अरिहंत सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं – जो जीव ॐकार स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं और चिंतन– मनन अनुभवन रूप अचक्षु दर्शन अर्थात् आत्मोन्मुखी द्रव्य दृष्टि से देखते हैं उन्हें अपने परमात्म स्वरूप का महिमामयी ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न १ – ' हियंकारं न्यान उत्पन्नं ' इस गाथा के अनुसार वीतरागी सर्वज्ञ परमात्मा ने क्या कहा है ?

उत्तर – वीतरागी अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा है कि निज आत्मा शुद्ध चिदानन्दमयी निर्विकार है। जो जीव ज्ञानमयी अन्तर चक्षु से देखते हैं, शुद्धात्म तत्त्व का अनुभवन करते हैं, उनको अपने परमात्म स्वरूप का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न २ – परमात्म स्वरूप का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है इसमें गुरू उपासना कैसे हुई ?

उत्तर – गुरु के प्रति सर्वस्व समर्पण की भावना को गुरु भक्ति कहते हैं। गुरु के अनुकूल प्रवर्तन करने को गुरु उपासना कहते हैं। अरिहंत परमात्मा की भक्ति, उनके गुणों की आराधना और स्वानुभव अंतर दृष्टि से अपने परमात्म स्वरूप का बोध होना ही सच्ची गुरू उपासना है।

प्रश्न ३ – ज्ञानी को अचक्षुदर्शन से आत्मदर्शन कैसे होता है ?

उत्तर – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन यह दर्शन के चार भेद हैं। इन चारों में मन से जो देखना है वह अचक्षुदर्शन है। आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है और वह आत्मदर्शन मिथ्यात्व आदि सातों प्रकृतियों के उपशम, क्षय और क्षयोपशम पूर्वक होता है। इस तरह ज्ञानीजनों को अचक्षुदर्शन से आत्मदर्शन होता है।

गाथा – ५

ज्ञान मयी शास्त्र जिनवाणी की पूजा विधि

मति श्रुतस्य संपूरनं, न्यानं पंच मयं ध्रुवं ।
पंड्तिो सोपि जानन्ति, न्यानं सास्त्र स पूजते ॥

अन्वयार्थ – (पंडितो) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(संपूरनं)** सम्पूर्ण [क्षयोपशम प्रमाण] **(मति श्रुतस्य)** मति श्रुत ज्ञान के बल से **(न्यानं पंचमयं)** पंचम ज्ञानमयी **(ध्रुवं)** ध्रुव स्वभाव को **(जानन्ति)** जानते हैं, अनुभव करते हैं **(सोपि)** वह ज्ञानी **(न्यानं सास्त्र)** ज्ञानमयी शास्त्र की **(स पूजते)** सम्यक् पूजा करते हैं।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी क्षयोपशम प्रमाण सम्पूर्ण मति श्रुत ज्ञान के बल से पंचम केवलज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव को जानते हैं, अनुभव करते हैं, केवलज्ञानमयी स्वभाव की आराधना में रत रहते हैं, इस प्रकार वह ज्ञानी ज्ञानमयी शास्त्र की सम्यक् पूजा करते हैं।

प्रश्न १ – ज्ञानी ज्ञानमयी शास्त्र की पूजा किस प्रकार करते हैं ?

उत्तर – सम्यक्त्व सहित मति श्रुतज्ञान के बल से सम्यक्दृष्टि पंचम केवलज्ञानमयी अविनाशी शुद्ध स्वरूप का अनुभव करते हैं। ज्ञानमयी शुद्धात्मा को जानते हैं। इस प्रकार निज स्वरूप का श्रद्धान, ज्ञान और अनुभव करने से वे ज्ञानमयी शास्त्र (जिनवाणी) की सच्ची पूजा करते हैं।

प्रश्न २ – जिनवाणी की क्या महिमा है ?

उत्तर – जिनवाणी ज्ञान का बोध कराने वाली है। जिनवाणी न हो तो यथार्थ वस्तु स्वरूप को समझा नहीं जा सकता। महावीर भगवान को केवलज्ञान होने के पश्चात् छ्यासठ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरने से धर्म की प्रभावना नहीं हुई, जीव सत्य वस्तु स्वरूप को नहीं समझ सके। जब दिव्य ध्वनि प्रगट हुई, वाणी खिरी तब जीवों ने धर्म का स्वरूप समझा और तद्रूप आचरण कर मुक्ति मार्ग पर चले, यह सब जिनवाणी का महात्म्य है।

प्रश्न ३ – व्यवहार और निश्चय से जिनवाणी की आराधना पूजा कैसे की जाती है ?

उत्तर – द्वादशांग रूप जिनवाणी बाह्य निमित्त है। जिनवाणी की विनय और बहुमान करना तथा रुचि पूर्वक स्वाध्याय मनन करना व्यवहार से जिनवाणी की आराधना है। अन्तर में अपने ज्ञान स्वभाव का बोध, सुबुद्धि का जागरण, सम्यक् मति – श्रुतज्ञान का होना निश्चय जिनवाणी है। ज्ञानी पंडित को निश्चय – व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होता है। निश्चय नय से अपने पंचम ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना आराधना करना ज्ञानमयी जिनवाणी की सच्ची पूजा है।

गाथा – ६

सच्चा देव गुरू शास्त्र धर्म निज शुद्धात्मा

उवं ह्रियं श्रियंकारं,दरसनं च न्यानं धुवं ।
देवं गुरं सुतं चरनं, धर्म सद्भाव सास्वतं ॥

अन्वयार्थ – (उवं) ॐकार मयी [शुद्ध स्वरूपी] **(ह्रियं)** ह्रियंकार [पूर्ण ज्ञान स्वरूप] **(श्रियंकारं)** श्रियंकार – शुद्ध भाव से अलंकृत [मोक्षलक्ष्मी स्वरूप] **(दरसनं)** सम्यग्दर्शन **(न्यानं)** सम्यग्ज्ञान **(चरनं)** सम्यक्चारित्र मयी [आत्मा का] **(सास्वतं)** शाश्वत **(धुवं)** ध्रुव **(सद्भाव)** स्वभाव ही **(देवं)** सच्चा देव **(गुरं)** सच्चा गुरू **(सुतं)** सच्चा शास्त्र **(च)** और **(धर्म)** सच्चा धर्म है।

अर्थ – ॐकारमयी शुद्ध स्वरूपी, ह्रियंकार अर्थात् पूर्ण ज्ञान स्वरूप, श्रियंकारमयी शुद्ध भाव से अलंकृत, मोक्षलक्ष्मी स्वरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मयी आत्मा का शाश्वत ध्रुव स्वभाव ही सच्चा देव, गुरू, शास्त्र और धर्म है।

प्रश्न १ – ' उवं ह्रियं श्रियंकारं ' इस गाथा में देव गुरु धर्म शास्त्र किसको कहा है ?

उत्तर – ॐकार, ह्रियंकार, श्रियंकार स्वरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमयी निज शुद्धात्मा को देव गुरु धर्म शास्त्र कहा है।

प्रश्न २ – उवं ह्रियं श्रियंकारं छटवीं गाथा में निज शुद्धात्मा को सच्चा देव गुरू शास्त्र धर्म किस कारण से कहा है ?

उत्तर – इस गाथा में साधना की अपेक्षा निश्चय नय की प्रधानता से कथन किया है। अध्यात्मवादी, ज्ञान मार्ग के पथिक निश्चय से निज शुद्धात्मा को ही सच्चा देव मानते हैं। निज अन्तरात्मा को सच्चा गुरू मानते हैं। सुबुद्धि के जागरण (सुमति सुश्रुत ज्ञान) को जिनवाणी (शास्त्र) मानते हैं और अपना शुद्ध चैतन्य स्वभाव ही धर्म है।

प्रश्न ३ – क्या सम्यक्दृष्टि को सच्चे देव गुरू शास्त्र की भक्ति का भाव नहीं आता ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि को वीतरागी देव, गुरू, शास्त्र के प्रति भक्ति का प्रशस्त राग आता है। वह उनके गुणों का स्मरण करता है। उसका चित्त भक्ति भाव से ओतप्रोत रहता है। अन्तरंग में वीतराग स्वरूप निज शुद्धात्मा का लक्ष्य होता है। मुझमें ऐसे गुण कब प्रगट होवें, मैं भी कब ऐसे निर्विकल्प स्वानुभव का रसपान करूं, इस भावना से सच्चे देव गुरू शास्त्र के प्रति भक्ति का भाव आता है तथापि वह यह जानता है कि यह प्रशस्त राग है, धर्म नहीं है।

गाथा – ७

सम्यक्दृष्टि ज्ञानी गुणों का पूजक

वीर्जं अंकुरनं सुद्धं, त्रिलोकं लोकितं ध्रुवं ।
रत्नत्रयं मयं सुद्धं, पंडितो गुन पूजते ॥

अन्वयार्थ – (पंडितो) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(सुद्धं)** शुद्ध **(वीर्जं)** पुरुषार्थ का **(अंकुरनं)** अंकुरण करके अर्थात् जाग्रत करके **(त्रिलोकं)** तीनों लोकों को **(लोकितं)** आलोकित करने वाले **(ध्रुवं)** ध्रुव स्वभाव को देखता है [और] **(रत्नत्रयं मयं)** रत्नत्रय मयी **(सुद्धं)** शुद्ध आत्म **(गुन)** गुणों को **(पूजते)** पूजता है।

अर्थ – आत्मज्ञानी साधक शुद्ध पुरुषार्थ का अंकुरण करके अर्थात् शुद्ध पुरुषार्थ को जाग्रत करके ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक को आलोकित करने वाले ध्रुव स्वभाव को देखता है तथा स्वभाव के आश्रय पूर्वक रत्नत्रयमयी आत्मगुणों की पूजा करता है।

प्रश्न १ – जीव का पुरुषार्थ कब जाग्रत होता है और उस पुरुषार्थ का फल क्या है ?

उत्तर – जब जीव भेदज्ञान पूर्वक सम्यग्दर्शन प्रगट करता है, तब जीव का पुरुषार्थ जाग्रत होता है। इस पुरुषार्थ का फल सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति है।

प्रश्न २ – ज्ञानी गुणों की पूजा क्यों करता है ?

उत्तर – आत्मा अनन्त गुणों का भण्डार है। उन गुणों को प्रगट करना ही ज्ञानी का लक्ष्य रहता है इसलिये वह अनन्त गुणों मयी निज शुद्धात्मा की आराधना करता है। जिन्होंने अपने गुणों को प्रगट कर लिया है ऐसे सच्चे देव अरिहंत सिद्ध भगवान के अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त बल, सिद्ध के आठ गुण और वीतरागी सद्गुरू के रत्नत्रय गुणों की महिमा गाता है। ज्ञानी रत्नत्रयमयी गुणों को अपने में प्रगट करना चाहता है इसलिये वह गुणों की पूजा करता है।

गाथा – ८

सम्यक्दृष्टि ज्ञानी का तिअर्थ जल स्नान

देवं गुरुं स्रुतं वन्दे, धर्म सुद्धं च विन्दते ।
तिअर्थ अर्थ लोकं च, अस्नानं च सुद्धं जलं ॥

अन्वयार्थ – (देवं) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी सच्चे देव **(गुरुं)** सच्चे गुरू **(स्रुतं)** सच्चे शास्त्र की **(वन्दे)** वन्दना करता है **(च)** और **(धर्म सुद्धं च)** शुद्ध धर्म का **(विन्दते)** अनुभव करता है **(च)** और **(लोकं)** इस लोक में **(अर्थ)** प्रयोजनीय **(तिअर्थ)** रत्नत्रय के **(सुद्धं जलं)** शुद्ध जल में **(अस्नानं)** स्नान करता है।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी सच्चे देव, गुरू, शास्त्र की वन्दना करता है और शुद्ध धर्म का अनुभव करता है, इस विधि से वह ज्ञानी लोक में प्रयोजनीय रत्नत्रय के शुद्ध जल में स्नान करता है अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप की आराधना में निरंतर संलग्न रहता है।

प्रश्न १ – '' देवं गुरुं स्रुतं वन्दे '' इस गाथा का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – शुद्धात्म स्वरूप ही सच्चा देव गुरू शास्त्र है, ज्ञानी पंडित उसकी वंदना करता हुआ अपने शुद्ध स्वभाव रूप धर्म की अनुभूति करता है।

प्रश्न २ – तिअर्थ के शुद्ध जल में स्नान करने से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – लौकिक व्यवहार में अशुद्धता को दूर करने के लिये जल से स्नान किया जाता है। स्नान करने से शुद्धता और शान्ति का अनुभव होता है। यहाँ अन्तर शोधन के लक्ष्य पूर्वक शुद्ध स्वभाव की उपलब्धि के लिये ज्ञानी रत्नत्रयमयी शुद्ध जल में स्नान करता है। वह अपने पूर्णानन्द स्वरूप की अनुभूति में डुबकी लगाता है।

प्रश्न ३ – तिअर्थ के शुद्ध जल में ज्ञानी किस प्रकार स्नान करता है ?

उत्तर – भेदज्ञान तत्त्व निर्णय पूर्वक सम्यक्दृष्टि ज्ञानी अपने स्वरूप का निर्णय और अनुभव करता है। वह अपने शुद्ध स्वरूप के आश्रय से रागादि भावों से परे होता है। नय पक्ष के भेद मिटाता है। वह रत्नत्रयमयी अभेद स्वभाव की अनुभूति में डुबकी लगाता है। इस प्रकार ज्ञानी तिअर्थ के शुद्ध जल में स्नान करता है। (**नोट –** तिअर्थ का अभिप्राय जानने के लिए अध्याय ३ में श्री कमल बत्तीसी जी ग्रन्थ की गाथा – १० एवं अध्याय – २ में पाठ २ पंचार्थ देखें।)

गाथा – ९

ज्ञानी का ध्यान में शुद्ध ज्ञान जल से स्नान

चेतना लष्यनो धर्मो, चेतयन्ति सदा बुधै ।
ध्यानस्य जलं सुद्धं, न्यानं अस्नान पंडिता ॥

अन्वयार्थ – (बुधै) ज्ञानीजन [आत्मा के] **(चेतना लष्यनो)** चैतन्य लक्षण **(धर्मो)** धर्म का **(सदा)** सदा, हमेशा **(चेतयन्ति)** अनुभव करते हैं [और] **(ध्यानस्य)** ध्यान में स्थित होकर **(न्यानं)** ज्ञान के **(जलं सुद्धं)** शुद्ध जल में **(अस्नान)** स्नान करते हैं [वही] **(पंडिता)** पण्डित हैं अर्थात् सम्यक्दृष्टि ज्ञानी हैं।

अर्थ – आत्म स्वरूप का जिन्हें बोध हुआ है, ऐसे ज्ञानी सत्पुरुष, आत्मा के शुद्ध चैतन्य लक्षणमयी आत्म धर्म का सदा अनुभव करते हैं, और ध्यान में स्थित होकर ज्ञान के शुद्ध जल में स्नान करते हैं अर्थात् भेदज्ञान तत्त्वनिर्णय पूर्वक स्वभाव की आराधना करते हुए निजानन्द में आनन्दित रहते हैं।

प्रश्न १ – चेतना लष्यनो धर्मो इस गाथा का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – निज चैतन्य लक्षणमयी त्रिकाली ध्रुव स्वभाव ही धर्म है। जिन्हें अपने चैतन्य स्वभाव की यथार्थ पहिचान है, वे ज्ञानी हमेशा अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करते हैं। इसी निज स्वभाव में उपयोग एकाग्र कर चैतन्य का अवलोकन करते हैं। शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान में स्थिर होकर शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करते हैं।

प्रश्न २ – ध्यान में स्थिर होकर ज्ञानी शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करता है इससे क्या उपलब्धि होती है ?

उत्तर – शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान में स्थिर होकर ज्ञानी शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करता है। जिससे उसकी अनेक गुण की पर्यायें निर्मल हो जाती हैं। जिस प्रकार बसन्त ऋतु आने पर वृक्षों में विविध प्रकार के पत्र – पुष्प फलादि खिल जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी को चैतन्य की बहार आने पर आनन्द सरोवर में डुबकी लगाने से अनेक गुणों की शुद्ध पर्यायें प्रगट हो जाती हैं।

गाथा – १०

ज्ञानी का शुद्ध ज्ञान मयी जल स्नान

सुद्ध तत्वं च वेदन्ते, त्रिभुवनं न्यानं सुरं ।
न्यानं मयं जलं सुद्धं, अस्नानं न्यान पंडिता ॥

अन्वयार्थ – (त्रिभुवनं) तीनों लोक में [जो] **(न्यानं सुरं)** सूर्य के समान केवलज्ञान मयी है **(पंडिता)** सम्यक्दृष्टि ज्ञानी [ऐसे] **(सुद्ध तत्वं)** शुद्ध तत्त्व का **(वेदन्ते)** वेदन, अनुभव करते हैं **(च)** और **(न्यानं मयं)** ज्ञान मयी **(जलं सुद्धं)** शुद्ध जल में **(अस्नानं न्यान)** ज्ञान स्नान करते हैं।

अर्थ – तीनों लोक में जो दैदीप्यमान सूर्य के समान केवलज्ञानमयी है, आत्मज्ञानी सम्यक्दृष्टि साधक ऐसे शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं और ज्ञानमयी शुद्ध जल में ज्ञान स्नान करते हैं अर्थात् अपने सत्स्वरूप का निरंतर स्मरण आराधन करते हैं।

प्रश्न १ – ज्ञानी अपने को कैसा जानते हुए अनुभव करते हैं ?

उत्तर – ज्ञानी जानते हैं कि मैं शुद्धात्मा अनन्त गुणों मयी परमात्म स्वरूप हूँ। त्रिकाल शाश्वत रहने वाला ज्ञान का पिण्ड ईश्वर, परम ज्ञान रवि जो तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाला, जानने वाला है वह मैं हूँ। इस प्रकार ज्ञानी अपने को परमात्म स्वरूप जानते हुए अनुभव करते हैं।

प्रश्न २ – ज्ञान, सम्यग्ज्ञान कब कहलाता है और उसकी विषयभूत वस्तु क्या है ?

उत्तर – ज्ञान का स्वभाव, सामान्य–विशेष को जानना है। जब ज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य को और विकार को ज्यों का त्यों जानकर यह निर्णय करता है कि जो परिपूर्ण स्वभाव है वह मैं हूँ और जो विकार है वह मैं नहीं हूँ, तब वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। सम्यग्दर्शन रूप विकसित पर्याय सम्यग्दर्शन की विषयभूत परिपूर्ण वस्तु और अवस्था की कमी इन तीनों को सम्यग्ज्ञान यथार्थ जानता है।

प्रश्न ३ – विकल्पों का अभाव किस प्रकार होता है ?

उत्तर – जैसे नदी में गोता लगाने पर बाहर का, पर का भान नहीं रहता है, उसी प्रकार स्वभाव की ओर उपयोग के अंतर्मुख होने पर समस्त विकल्प टूट जाते हैं।

गाथा – ११

ज्ञान सरोवर में गणधरों का स्नान और जलपान

संमिक्तस्य जलं सुद्धं, संपूरनं सर पूरितं ।
अस्नानं पिवते गनधरनं, न्यानं सर नंतं धुवं ॥

अन्वयार्थ – (न्यानं सर) ज्ञान सरोवर **(नंतं)** अनन्त है **(धुवं)** ध्रुव है **(संमिक्तस्य)** सम्यक्त्व के **(जलं सुद्धं)** शुद्ध जल से **(सर)** यह सरोवर **(सपूरनं)** पूरी तरह से **(पूरितं)** भरा हुआ है **(गनधरनं)** सम्यग्ज्ञानी गणधर [इसी सरोवर में] **(अस्नानं)** स्नान करते हैं **(पिवते)** इसी का जलपान करते हैं।

अर्थ – ज्ञान रूपी सरोवर अनंत है, ध्रुव है, सम्यक्त्व के शुद्ध जल से यह सरोवर पूरी तरह से भरा हुआ है। आत्म स्वभाव संकल्प – विकल्प रहित है, निर्विकल्पता रूपी अनंत जल से परिपूर्ण है। सम्यग्ज्ञानी गणधर इसी में स्नान करते हैं और इसी का जलपान करते हैं।

प्रश्न १ – ज्ञानी गणधर कौन से सरोवर में स्नान करते हैं ?

उत्तर – सम्यक्त्व के निर्विकल्प शुद्ध जल से परिपूर्ण भरा हुआ अपना ध्रुव स्वभाव शुद्ध ज्ञानमयी सरोवर है जो अनन्त ज्ञानादि गुणों का निधान है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय इन चार ज्ञान के धारी गणधर देव जो केवलज्ञानी अरिहन्त भगवान की दिव्यध्वनि का विस्तार करते हैं, वह इस ज्ञान सरोवर के जल में अवगाहन, स्नान करते हैं, इसी का जल पान करते हैं।

प्रश्न २ – ज्ञानी साधक संसार में कैसे रहते हैं ?

उत्तर – जिस समय ज्ञानी की परिणति बाहर दिखाई देती है, उसी समय उन्हें ज्ञायक स्वभाव भिन्न दिखाई देता है।

जैसे – किसी की पड़ोसी के साथ घनिष्ट मित्रता हो, उसके घर आता जाता हो परन्तु वह पड़ोसी को अपना नहीं मानता। उसी प्रकार ज्ञानी विभाव में कभी एकत्व रूप परिणमन नहीं करते, ज्ञानी संसार में सदा कमल की भांति निर्लिप्त रहते हैं।

प्रश्न ३ – गणधर देव कहाँ निवास करते हैं उन्हें केवलज्ञान कैसे प्रगट होता है ?

उत्तर – गणधर देव अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप ज्ञान सरोवर में निवास करते हैं। ज्ञान स्वरूप में एकाग्र होते – होते वह पूर्ण वीतराग केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान होने से उन्हें ज्ञान की अगाध शक्ति प्रगट हो जाती है।

गाथा – १२

शुद्ध भाव में स्थिर होकर ज्ञान स्नान

सुद्धात्मा चेतना नित्वं, सुद्ध दिस्टि समं धुवं ।
सुद्ध भाव अस्थरी भूतं, न्यानं अस्नान पंडिता ॥

अन्वयार्थ – (पंडिता) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(सुद्धात्मा)** शुद्धात्म स्वरूप **(चेतना)** चैतन्य मयी स्वभाव को **(सुद्ध दिस्टि)** शुद्ध दृष्टि से **(धुवं)** ध्रुव स्वभाव **(समं)** मय होकर **(नित्वं)** नित्य अनुभवते हुए **(सुद्ध भाव)** शुद्ध भाव में **(अस्थरी भूतं)** स्थिर होकर **(न्यानं अस्नान)** ज्ञान स्नान करते हैं।

अर्थ – आत्मज्ञ पुरुष ज्ञानी पंडित चैतन्यमयी शुद्धात्म स्वरूप को शुद्ध दृष्टि से ध्रुव स्वभावमय नित्य अनुभव करते हुए शुद्ध भाव में स्थिर होकर ज्ञान स्नान करते हैं। निर्मल श्रद्धान और सम्यग्ज्ञान के बल से शुद्ध भाव में रहना ही सच्चा पुरुषार्थ है।

प्रश्न १ – शुद्ध भाव में स्थिर होकर ज्ञान स्नान का क्या अर्थ है ?

उत्तर – स्वरूप में लीन होने पर बुद्धिपूर्वक राग का अभाव होना शुद्धोपयोग है। ज्ञानानन्द स्वभाव के आश्रय से ज्ञान में एकाग्रता होने पर सहज शुद्धोपयोग हो जाता है। शुद्ध भाव में स्थिर होना यही ज्ञानी का ज्ञान स्नान है।

प्रश्न २ – ज्ञानी शुद्ध भाव में स्थिर होने की साधना किस प्रकार करते हैं ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी जानते हैं कि मैं निर्मल ज्ञानमयी चैतन्य स्वरूप शुद्धात्मा हूँ। इसी अनुभूति के बल पर वे अपने शुद्ध स्वभाव में ठहरने का पुरुषार्थ करते हैं। ज्ञानी की यही शुद्ध भाव में स्थिर होने की साधना है।

प्रश्न ३ – ज्ञान की क्या महिमा है ?

उत्तर – ज्ञान ज्ञायक से उत्पन्न होता है। जब ज्ञान ज्ञायक की विराधना करता है तब घटता है। जब ज्ञान ज्ञायक की आराधना करता है तब बढ़ता है। जब ज्ञान ज्ञायक का आश्रय लेता है तब सम्यग्ज्ञान होता है। जब ज्ञान, ज्ञान में समा जाता है तब केवलज्ञान होता है।

गाथा – १३

ज्ञानी करते हैं मिथ्यात्व आदि का प्रक्षालन

प्रषालितं त्रिति मिथ्यातं, सल्यं त्रियं निकंदनं ।
कुन्यानं राग दोषं च, प्रषालितं असुह भावना ॥

अन्वयार्थ – (त्रिति) तीन प्रकार के **(मिथ्यातं)** मिथ्यात्व को **(प्रषालितं)** प्रक्षालित कर देता है **(त्रियं)** तीन प्रकार की **(सल्यं)** शल्यों को **(निकंदनं)** दूर कर देता है, निर्मूल कर देता है **(च)** और **(कुन्यानं)** कुज्ञान **(राग दोषं)** राग द्वेष आदि **(असुह)** अशुभ **(भावना)** भावनाओं को [भी] **(प्रषालितं)** प्रक्षालित कर देता है।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी ज्ञान स्नान करके, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व इन तीन प्रकार के मिथ्यात्व को प्रक्षालित कर देता है। मिथ्या, माया, निदान इन तीन प्रकार की शल्यों को दूर कर देता है। कुज्ञान, राग – द्वेष आदि अशुभ भावनाओं को भी प्रक्षालित कर देता है।

प्रश्न १ – ज्ञानी किन – किन दोषों का प्रक्षालन करते हैं ?

उत्तर – शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करके ज्ञानी तीन मिथ्यात्व (मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व) का प्रक्षालन करते हैं। दु:ख की कारणभूत मिथ्या, माया, निदान तीन शल्यों को दूर कर देते हैं। संसार में परिभ्रमण का कारण कुज्ञान और राग–द्वेषादि दोषों को तथा पाप बंध कराने वाली अशुभ भावना का भी प्रक्षालन कर पवित्रता को ग्रहण करते हैं।

प्रश्न २ – पर्याय में दोष किस कारण से उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर – अनादि काल से जीव अज्ञान मिथ्यात्व और शरीरादि संयोग सहित है। इनमें एकत्व और अपनत्व होने से पर्याय में दोष उत्पन्न होते हैं। अज्ञानी को अज्ञान के कारण और ज्ञानी को पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण यह दोष पाये जाते हैं।

प्रश्न ३ – पर्यायी दोषों को दूर करने का क्या उपाय है ?

उत्तर – पर्यायी दोषों को दूर करने में कोई दूसरा समर्थ नहीं है। स्वयं को ही स्वयं का शोधन करना पड़ता है और इसमें एक मात्र ज्ञान ही सहकारी है। अपना ज्ञान जितना सूक्ष्म होता जायेगा, जितना ज्ञानोपयोग होगा, चिन्तन–मनन चलेगा उतना ही अन्तर शोधन होता है। ज्ञानी पंडित शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान कर पर से स्वयं को भिन्न अनुभव करके अन्तर के दोषों का प्रक्षालन करते हैं।

गाथा – १४

अनंतानुबंधी कषाय और कर्म का प्रक्षालन

कषायं चत्रु अनंतानं, पुन्य पाप प्रषालितं ।
प्रषालितं कर्म दुस्टं च, न्यानं अस्नान पंडिता ॥

अन्वयार्थ – (पंडिता) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(न्यानं)** ज्ञान **(अस्नान)** स्नान करके **(चत्रु)** चार **(अनंतानं)** अनन्तानुबंधी **(कषायं)** कषायों को **(च)** और **(पुन्य पाप)** पुण्य पाप को **(प्रषालितं)** प्रक्षालित कर देता है [तथा संसार में परिभ्रमण कराने वाले] **(कर्म दुस्टं)** दुष्ट कर्मों को [भी] **(प्रषालितं)** प्रक्षालित कर देता है।

अर्थ – आत्मार्थी ज्ञानी ज्ञान स्नान करके अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार अनंतानुबंधी कषायों को, पुण्य – पाप को तथा संसार में परिभ्रमण कराने में निमित्तभूत कर्मों को भी प्रक्षालित कर देता है।

प्रश्न १ – '' कषायं चत्रु अनंतानं '' इस गाथा के अनुसार ज्ञानी किन विकारों का प्रक्षालन कर देते हैं ?

उत्तर – शुद्ध ज्ञान के जल से ज्ञानी अनन्तानुबंधी चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) को धोकर साफ कर देते हैं। शुभ रूप परिणमन पुण्य और अशुभ रूप परिणमन पाप कहलाता है। ज्ञानी को इन दोनों से भी प्रीति नहीं होती, अत: पुण्य–पाप का प्रक्षालन कर देते हैं। चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कराने में निमित्तभूत सभी दुष्ट अर्थात् पापादि रूप अशुभ भावों का भी प्रक्षालन कर देते हैं।

प्रश्न २ – ज्ञान स्नान और प्रक्षालन से क्या उपलब्धि होती है ?

उत्तर – ज्ञान स्वरूप आत्मा के आश्रय पूर्वक बार–बार ज्ञान में स्नान और प्रक्षालन करने से –

(१) निज पद की प्राप्ति होती है। (२) भ्रान्ति का नाश होता है।

(३) कर्मों का क्षय होता है। (४) राग–द्वेष उत्पन्न नहीं होते।

(५) कर्मों का बंध नहीं होता। (६) शुभ–अशुभ भाव, मिथ्यात्व, शल्य और कषाय दूर हो जाती हैं।

प्रश्न ३ – वस्तुत: प्रक्षालन का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर – जीव जड़ कर्म और शरीर आदि पर द्रव्यों से त्रिकाल भिन्न है। वर्तमान में जीव का शरीर से एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध है, फिर भी जीव और शरीर एक नहीं होते।

सम्यग्ज्ञान होने पर अज्ञान जनित एकत्व अपनत्व आदि की मान्यता दूर हो जाती है, इसी का नाम यथार्थ प्रक्षालन है।

गाथा – १५

मन की चपलता और त्रिविध कर्म का प्रक्षालन

प्रषालितं मनं चवलं, त्रिविधि कर्म प्रषालितं ।
पंडितो वस्त्र संजुक्तं, आभरनं भूषन क्रीयते ॥

अन्वयार्थ – (पंडितो) सम्यक्‌ज्ञानी **(मनं चवलं)** मन की चंचलता को **(प्रषालितं)** प्रक्षालित कर देता है **(त्रिविधि)** तीन प्रकार के **(कर्म)** कर्मों को **(प्रषालितं)** प्रक्षालित करके **(वस्त्र संजुक्तं)** वस्त्र पहिनता है **(आभरनं)** आभरण **(भूषन)** आभूषणों को **(क्रीयते)** धारण करता है।

अर्थ – सम्यक्‌दृष्टि साधक मन की चंचलता को प्रक्षालित कर देता है। द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म तीनों प्रकार के कर्मों को प्रक्षालित करके शुद्ध स्वभाव धर्म के वस्त्र पहिनता है तथा रत्नत्रय के आभरण और आभूषणों को धारण करता है।

प्रश्न १ – पुरुषार्थी साधक को कर्म की प्रबलता क्यों नहीं होती और ज्ञानी किस प्रकार प्रक्षालन करते हैं ?

उत्तर – शुद्ध ज्ञान के जल से ज्ञानी मन की चंचलता और तीनों कर्मों का प्रक्षालन करते हैं अर्थात् धोकर साफ कर देते हैं। द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नो कर्म से भिन्न आत्म स्वभाव को पहिचानते हैं, इसलिये पुरुषार्थी साधक को कर्म की प्रबलता नहीं होती। इस प्रकार ज्ञानी शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान कर समस्त दोषों को धोकर साफ कर देते हैं।

प्रश्न २ – ज्ञान मार्ग की साधना की क्या विशेषता है ?

उत्तर – ज्ञानी जन, ज्ञानमार्ग की साधना अर्थात् अन्तरशोधन करते हुए निज स्वरूप की आराधना करते हैं, जिससे समस्त रागादि विकार धुल जाते हैं और अपना शुद्ध चैतन्यमयी टंकोत्कीर्ण आत्मा प्रकाशमान होने लगता है।

प्रश्न ३ – ज्ञानी ज्ञानोपयोग रूप ज्ञान में स्नान क्यों करता है ?

उत्तर – सम्यक्‌ज्ञानी यह दृढ़ता पूर्वक जानता है कि दृष्टि का विषय ध्रुव तत्त्व शुद्धात्मा है। यह

शुद्धात्मा अशुद्धि से निर्लिप्त है। मिथ्यात्व शल्य आदि अशुद्धि तो पर्याय में है। अतः ज्ञानीजन पर्याय की इसी अशुद्धि के प्रक्षालन हेतु ज्ञान स्नान, ध्यान करते हैं।

गाथा – १६

ज्ञानी धारण करता है आध्यात्मिक वस्त्राभूषण

वस्त्रं च धर्म सद्भावं, आभरनं रत्नत्रयं ।
मुद्रिका सम मुद्रस्य, मुकुटं न्यान मयं ध्रुवं ॥

अन्वयार्थ – [सम्यग्दृष्टि ज्ञानी] **(सद्भावं)** [शुद्ध] स्वभाव मयी **(धर्म)** धर्म के **(वस्त्रं)** वस्त्र **(रत्नत्रयं)** रत्नत्रय के **(आभरनं)** आभरण **(सम)** समता मयी **(मुद्रस्य)** मुद्रा की **(मुद्रिका)** अंगूठी **(च)** और **(न्यान मयं)** ज्ञान मयी **(ध्रुवं)** ध्रुव स्वभाव का **(मुकुटं)** मुकुट धारण करता है।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी शुद्ध स्वभावमयी धर्म के वस्त्र पहिनता है, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रय के आभरण, समतामयी मुद्रा की मुद्रिका और ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट धारण करता है, इस प्रकार आध्यात्मिक वस्त्राभूषणों को धारण करके शुद्धात्म देव का दर्शन करने के लिये तैयार होता है।

प्रश्न १ – ज्ञानी आध्यात्मिक वस्त्राभूषणों से किस प्रकार सुसज्जित होता है ?

उत्तर – ज्ञानी शुद्ध स्वभाव मयी धर्म के वस्त्रों को धारण करता है। रत्नत्रय के अनुपम आभरण से संयुक्त होकर अवर्णनीय शोभा को प्राप्त होता है तथा अतीन्द्रिय आनन्द में डूबता हुआ, ध्रुव स्वभाव में रमण करने को सदा उत्साहित रहता है।

साधु पद पर प्रतिष्ठित होकर ज्ञानी वीतराग दशा रूप समता मयी मुद्रा की मुद्रिका अर्थात् अंगूठी धारण करता है। उसे कुछ भी अच्छा–बुरा नहीं लगता, समभाव में रहता है। समस्त आभरण और आभूषणों सहित ज्ञानी ज्ञान मयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट धारण करता है।

प्रश्न २ – अंतरशोधन द्वारा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का क्या उपाय है ?

उत्तर – अंतरशोधन द्वारा जब पर्याय में शुद्धि प्रगट होती है, तब आत्म स्वरूप में लीनता रूप पुरुषार्थ होता है वहाँ बाह्य दशा सहज होती है।

जैसे – जैसे आत्मलीनता प्रगाढ़ होती है वैसे – वैसे स्वरूप स्थिरता भी बढ़ती जाती है। अतः आत्मलीनता और एकाग्रता ही प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का उपाय है।

प्रश्न ३ – वस्त्र, आभरण और आभूषण क्या होते हैं ?

उत्तर – सामान्यतया जो कपड़े धोती, कुर्ता आदि पहने जाते हैं उन्हें वस्त्र कहते हैं। वस्त्रों के ऊपर, जैकेट, जरसी, कोट आदि पहने जाते हैं उन्हें आभरण कहते हैं। अंगूठी, हार, चैन, मुकुट आदि को आभूषण कहते हैं।

प्रश्न ४ – ज्ञानी ने परमात्मा के दर्शन के लिये क्या तैयारी की है ?

उत्तर – ज्ञानी ने शुद्ध स्वभाव रूप धर्म के वस्त्र और रत्नत्रय के आभरण धारण किये हैं। समता भाव मयी जिन मुद्रा रूप मुद्रिका तथा ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट धारण कर मुक्ति श्री से मिलने, परमात्मा का दर्शन करने के लिये तैयार हुआ है।

अभ्यास के प्रश्न – गाथा १ से १६ तक

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूति कीजिये ।

(क) ''विन्द स्थानेन तिस्टन्ते '' में विन्द स्थान में रहने वाला............जयवंत हो । (गाथा १)

(ख) सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी ज्ञानमयी............की सम्यक् पूजा करते हैं। (गाथा ५)

(ग) ज्ञान मार्ग के पथिक निश्चय से............को ही सच्चा देव मानते हैं। (गाथा ६)

(घ) सम्यक्‌दृष्टि को वीतरागी देव, गुरु, शास्त्र के प्रति भक्ति का............राग आता है। (गाथा ६)

(ङ) भेदज्ञान तत्व निर्णय पूर्वक सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी अपने ....का............करता है। (गाथा ८)

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनिये ।

(क) ज्ञानीजन अपने चैतन्य लक्षण धर्म का कभी – कभी अनुभव करते हैं। (गाथा ९)

(ख) तीनों लोक में जो सूर्य के समान केवलज्ञानमयी शुद्ध तत्व है, ऐसे शुद्ध ज्ञान जल में पंडित स्नान करते हैं। (गाथा १०) (ग) ज्ञानी विभाव में कभी एकत्व रूप परिगणमन नहीं करते। (गाथा ११)

(घ) स्वरूप में लीन होने पर बुद्धि पूर्वक राग का अभाव होना शुद्धोपयोग है। (गाथा १२)

(ङ) ज्ञान जल में स्नान करके ज्ञानी तीन मिथ्यात्व, तीन शल्य का प्रक्षालन कर देते हैं। (गाथा १३)

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये। (गाथा १२ से १६) १. प्रक्षालन – शुद्ध तत्व का वेदन, आत्मानुभूति। २. स्नान –रत्नत्रय, समता, ध्रुवता। ३. आभूषण – चैतन्य लक्षण धर्म। ४. वस्त्र – अज्ञान जनित मिथ्या मान्यता दूर होना।

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनिये ।

१. शुद्ध भाव में स्थिर होना ही ..... है। (अ) ज्ञान विज्ञान (ब) ज्ञान स्नान (स) प्रक्षालितं (द) आभरणं। २. गणधर देव कहाँ निवास करते हैं। (अ) समवशरण में (ब) शरीर में (स) ज्ञान स्वरूप सरोवर में (द) मंदिर में। ३. ज्ञान सरोवर....से भरा हुआ है। (अ) जल (ब) मल (स) सम्यक्त्व (द) मिथ्यात्व। ४. पंडित वह है जो – (अ) ज्ञानी हो (ब) सम्यक्‌ज्ञानी हो (स) क्रियाकांडी हो (द) वीतरागी सम्यक्‌ज्ञानी हो।

प्रश्न ५ – अति लघुउत्तरीय प्रश्न ३० शब्दों में (कोई पाँच)

१. उवंकारस्य ऊर्धस्य, गाथा में किसको नमस्कार किया गया है ?

उत्तर – इस गाथा में श्री तारण स्वामी जी ने ॐकारमयी पंचपरमेष्ठी, ऊर्ध्व स्वभाव में शाश्वत विराजमान सिद्ध भगवान एवं ज्ञानमयी शाश्वत ध्रुव शुद्धात्मा को नमस्कार किया है।

२. उवं नमः का क्या अभिप्राय है ? (उत्तर स्वयं लिखें)। ३. पंडित की क्या परिभाषा है ? (उत्तर स्वयं लिखें) ४. उवं हियं श्रियंकारं ''गाथा में देव गुरु धर्म शास्त्र किसे कहा है ? (उत्तर स्वयं लिखें)।

५. ज्ञान स्नान और प्रक्षालन से क्या उपलब्धि होती है ? (उत्तर स्वयं लिखें)

६. शुद्ध भाव में स्थिर होकर ज्ञान स्नान का क्या अर्थ है ? (उत्तर स्वयं लिखें)

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न ५० शब्दों में लिखें।

१. पुरुषार्थी साधक को कर्म की प्रबलता क्यों नहीं होती ? (उत्तर स्वयं लिखें)

२. अंतरशोधन द्वारा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का क्या उपाय है ?(उत्तर स्वयं लिखें)

३. टिप्पणी लिखिए – १. ज्ञानी का ज्ञान स्नान २. ज्ञानी का प्रक्षालन ३. ज्ञानी के वस्त्र।

प्रश्न ७ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न १. पंडित पूजा ग्रन्थ की गाथा १ से १६ का अपने शब्दों में सारांश लिखिये।

गाथा – १७

शुद्धात्म देव का दर्शन करने के लिये दृष्टि की शुद्धि

दिस्टतं सुद्ध दिस्टी च, मिथ्यादिस्टी च तिक्तयं ।
असत्यं अनृतं न दिस्टंते, अचेत दिस्टि न दीयते ॥

अन्वयार्थ – [ज्ञानी] **(सुद्ध दिस्टी)** शुद्ध दृष्टि से **(दिस्टतं)** देखता है **(मिथ्यादिस्टी)** मिथ्यादृष्टि का **(तिक्तयं)** त्याग कर दिया है **(असत्यं)** पर्यायी भाव **(च)** और **(अनृतं)** क्षणभंगुर पर पदार्थों [की ओर] **(न दिस्टंते)** नहीं देखता **(च)** और **(अचेत)** अचैतन्य संयोगों पर भी **(दिस्टि)** दृष्टि **(न दीयते)** नहीं देता।

अर्थ – आत्मश्रद्धानी साधक मिथ्यात्वमय दृष्टि का पूर्णतः त्याग कर देता है, वह शुद्ध दृष्टि से देखता है, निर्मल श्रद्धानी होता है। असत्य, अनृत अर्थात् नाशवान क्षणभंगुर पर्यायी भाव और पर पदार्थों की ओर नहीं देखता, अचैतन्य संयोगों पर भी दृष्टि नहीं देता। संसारी किसी भी पदार्थ में उसे एकत्व और अपनत्व की मान्यता नहीं रहती।

प्रश्न १ – परमात्म स्वरूप के दर्शन किसको होते हैं ?

उत्तर – जिन्हें आत्मानुभूति सहित सम्यग्ज्ञान हुआ है तथा मिथ्यात्व की दृष्टि छूट गई है अर्थात् पर की तरफ देखने का भाव नहीं है। वे हमेशा ज्ञान स्वरूप के चिंतन में निमग्न रहते हैं। विनाशीक पर वस्तुओं और अन्तरंग में चलने वाले शुभाशुभ विकारी भावों को नहीं देखते तथा शरीर आदि अचैतन्य पर पदार्थों में भी दृष्टि नहीं लगाते ऐसे शुद्ध दृष्टि ज्ञानी को परमात्म स्वरूप के दर्शन होते हैं।

प्रश्न २ – ज्ञानी की दृष्टि में चैतन्य कैसा भासता है ?

उत्तर – ज्ञानी की दृष्टि में चैतन्य सत् स्वरूप आत्मा, मिथ्यात्व, असत्य, अनृत, अचेतन से भिन्न भासता है।

गाथा – १८

ज्ञानी की दृष्टि में अपना ममल स्वभाव

दिस्टतं सुद्ध समयं च, संमिक्तं सुद्धं धुवं ।
न्यानं मयं च संपूरनं, ममल दिस्टी सदा बुधै ॥

अन्वयार्थ – (बुधै) ज्ञानी **(सुद्ध समयं च)** शुद्ध स्व समय, शुद्धात्म स्वरूप को **(दिस्टतं)** देखते हैं [जो] **(संमिक्तं सुद्धं)** सम्यक्त्व से शुद्ध **(संपूरनं)** परिपूर्ण **(न्यानं मयं)** ज्ञान मयी **(धुवं)** ध्रुव स्वभाव है **(च)** और **(ममल)** इसी ममल स्वभाव में **(सदा)** सदैव **(दिस्टी)** उपयोग लगाते हैं।

अर्थ – आत्म स्वभाव के आराधक ज्ञानी पुरुष अपने शुद्धात्म स्वरूप को देखते हैं, जो सम्यक्त्व से शुद्ध परिपूर्ण ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव है। इसी ममल स्वभाव में सदैव उपयोग लगाते हैं और शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव करते हैं। स्वभाव की दृष्टि ही स्वानुभव का मूल आधार है।

प्रश्न १ – सम्यग्दर्शन के लिये सर्वाधिक आवश्यक क्या है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये आत्म स्वभाव की रुचि सर्वाधिक आवश्यक है। जिसको यथार्थ की रुचि होती है, उसका ज्ञान अल्प हो, तो भी रुचि के बल पर सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न २ – अंतर शोधन का मार्ग क्या है ?

उत्तर – ज्ञानी को द्रव्य दृष्टि प्रगट हो जाती है। वह ध्रुव तत्त्व के आश्रय पूर्वक स्वरूप स्थिरता में वृद्धि करता है, जिससे पर्याय में शुद्धि प्रगट होती जाती है। यथार्थ दृष्टि होने के पश्चात् भी ज्ञानी, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की निर्मल पर्याय जितने-जितने अंश में प्रगट होती है, उसको ही धर्म मानता है। इससे समस्त दोषों का क्रमश: अभाव होता है यही अंतर शोधन का मार्ग है।

गाथा – १९

निर्दोष सम्यक्त्व का धारी सम्यक्दृष्टि ज्ञानी

लोकमूढं न दिस्टन्ते, देव पाषंड न दिस्टते ।
अनायतन मद अस्टं च, संका अस्ट न दिस्टते ॥

अन्वयार्थ – [सम्यक्दृष्टि ज्ञानी] **(लोकमूढं)** लोक मूढ़ता को **(न)** नहीं **(दिस्टन्ते)** देखते हैं **(देव पाषंड)** देव मूढ़ता, पाखंड मूढ़ता को भी **(न)** नहीं **(दिस्टते)** देखते **(अनायतन)** छह अनायतन **(मद अस्टं)** आठ मद **(च)** और **(संका अस्ट)** शंकादि आठ दोषों [को भी] **(न दिस्टते)** नहीं देखते।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी लोक मूढ़ता को नहीं देखते, देव मूढ़ता और पाखंड मूढ़ता को भी नहीं देखते अर्थात् किसी भी प्रकार की मिथ्या मान्यता को ग्रहण नहीं करते। छह अनायतन,आठ मद और शंकादि आठ दोषों को भी नहीं देखते अर्थात् ज्ञानीजन सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोषों से रहित होते हैं और निर्मल श्रद्धान सहित सत्य धर्म का आराधन करते हैं।

प्रश्न १ – ज्ञानी सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोषों के त्यागी कैसे होते हैं ?

उत्तर – जब आत्मा का ज्ञान, ज्ञान को ही ग्रहण करता है अर्थात् शुद्ध आत्मा का ही वेदन होता है, तब वहाँ तीनों प्रकार की मूढ़ता-देव मूढ़ता लोकमूढ़ता पाखण्ड मूढ़ता नहीं रहती। छह अनायतन, आठ मद और शंका आदि ८ दोष नहीं रहते, इस प्रकार ज्ञानी इन २५ दोषों के त्यागी होते हैं।

प्रश्न २ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी की परिणति कैसी होती है ?

उत्तर – जब आत्मलीनता प्रगाढ़ होती है तो सम्यक्दृष्टि को एकमात्र ज्ञायक चैतन्य स्वरूप, शरीर से भिन्न भासित होता है। भेदज्ञान की यह निर्मल परिणति निरंतर वृद्धिंगत होती जाती है।

गाथा – २०

ज्ञानी शुद्ध पद का साधक होता है

दिस्टतं सुद्ध पदं सार्धं, दरसनं मल विमुक्तयं ।
न्यानं मयं सुद्ध संमिक्तं,पंडितो दिस्टि सदा बुधै ॥

अन्वयार्थ – **(बुधै)** सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(दरसनं मल)** सम्यग्दर्शन के दोषों से **(विमुक्तयं)** रहित होता है **(सुद्ध संमिक्तं)** सम्यक्त्व से शुद्ध होता है **(सुद्ध)** शुद्ध **(पदं)** पद को **(दिस्टतं)** देखता है

(सार्धं) उसी की साधना करता है [और] **(न्यानं मयं)** ज्ञानमयी स्वभाव पर **(पंडितो)** ज्ञानी **(सदा)** हमेशा **(दिस्टि)** दृष्टि रखता है।

अर्थ – आत्मार्थी ज्ञानी पुरुष सम्यग्दर्शन के दोषों से रहित होता है, सम्यक्त्व से शुद्ध होता है। वह हमेशा शुद्ध पद को देखता है, स्वभाव का श्रद्धानी होता है, स्वभाव की ही साधना – आराधना करता है और अपने ज्ञानमयी चिदानंद स्वभाव पर हमेशा दृष्टि रखता है।

प्रश्न १ – ज्ञानी का दर्शनोपयोग किस प्रकार निर्मल होता है ?

उत्तर – ज्ञानी सम्यक्त्व के पच्चीस दोषों से रहित निर्दोष दृष्टि के धारी अपने में हमेशा जाग्रत रहते हैं। त्रिकाल शुद्ध चैतन्य मयी निज पद को देखते हैं। ज्ञानी अपने शुद्ध चिद्रूप स्वभाव की साधना करते हैं, जिससे दर्शनोपयोग समस्त मलों से रहित शुद्ध हो जाता है।

प्रश्न २ – ज्ञानी साधक की अंतरंग भावना कैसी होती है ?

उत्तर – ज्ञानी ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर विशेष समाधि सुख प्रगट करने को उत्सुक रहते हैं अर्थात् निज परमात्म स्वरूप में एकाग्र होकर उसी में लीन रहना चाहते हैं। स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी कि श्रेणी माड़कर केवलज्ञान प्रगट होगा। कब ऐसा परम ध्यान होगा कि आत्मा शाश्वत रूप से परमानंदमयी ध्रुव धाम में लीन हो जायेगा। ज्ञानी साधक निरन्तर ऐसी भावना भाते हैं।

गाथा – २१

वेदिकाग्र स्थिर होकर – देव दर्शन

वेदिका अग्र स्थिरस्चैव, वेदतं निरग्रंथं धुवं ।
त्रिलोकं समयं सुद्धं, वेद वेदन्ति पंडिता ॥

अन्वयार्थ – (पंडिता) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी **(वेदिका अग्र)** वेदिका के आगे **(स्थिरस्चैव)** स्थिर होकर **(निरग्रंथं)** निर्ग्रन्थ **(धुवं)** ध्रुव स्वभाव का **(वेदतं)** अनुभव करते हैं [और] **(त्रिलोकं)** तीनों लोक में **(समयं सुद्धं)** जो शुद्धात्मा **(वेद)** सम्पूर्ण जिनवाणी का सार है [उसका] **(वेदन्ति)** वेदन करते हैं।

अर्थ – सम्यकदृष्टि ज्ञानी वेदिका के आगे स्थिर होकर निर्ग्रन्थ ध्रुव स्वभाव का अनुभव करते हैं और तीन लोक में जो शुद्धात्मा सम्पूर्ण जिनवाणी का सार है उसका वेदन करते हैं, समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित होकर निरंतर शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव करते हैं यही देव दर्शन है।

प्रश्न १ – ज्ञानी किस प्रकार देव दर्शन करते हैं ?

उत्तर – अपने शुद्ध स्वभाव की वेदिका के आगे स्थिर होकर ज्ञानी, निर्ग्रन्थ चिद्रूप स्वभाव का अनुभव करते हैं। यह अनन्त चतुष्टयमयी ध्रुव स्वभाव निज शुद्धात्मा ही सच्चा देव परमात्मा है। तीनों लोक में त्रिकाल शुद्ध चैतन्य भगवान देह देवालय में वास कर रहा है। ज्ञानी साधक निर्विकल्प होकर शुद्धात्मा की अनुभूति करते हैं, यही वस्तुत: सच्चे देव का दर्शन है।

प्रश्न २ – तारण तरण चैत्यालय में वेदी पर जिनवाणी विराजमान रहती है, फिर देव दर्शन किस प्रकार होता है ?

उत्तर – चैत्यालय में वेदिका के सामने स्थिर होकर जिनवाणी के बहुमान पूर्वक आत्म स्वरूप के लक्ष्य से जब दर्शन करते हैं तो अपने आप नेत्र बन्द हो जाते हैं और शुद्ध स्वभाव के आश्रय पूर्वक

अपने स्वरूप का स्मरण दर्शन होता है। परमात्मा अपने देह देवालय में विराजमान है, जिसकी दृष्टि उस पर जाती है, उसको ही निज परमात्मा के दर्शन होते हैं।

प्रश्न ३ – वेदिका अग्रस्थिरस्चैव इस गाथा के अभिप्राय को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर –

शुद्ध निज स्वभाव की वेदिकाग्र थिर होके,
ज्ञानी अनुभवते चिद्रूप निरग्रंथ है ।
यही परम ध्रौव्य धाम – शुद्धातम देव जो,
सदा चतुष्टय मयी अनादि अनन्त है ॥
तीन लोक मांहि स्व समय शुद्ध है त्रिकाल,
देह देवालय में ही रहता भगवन्त है ।
ज्ञानी अनुभूति करते निज शुद्धातम की,
यही देव दर्शन निश्चय तारण पंथ है ॥

गाथा – २२

ज्ञानी करता है सच्ची पूजा आराधना

उच्चरनं ऊर्ध सुद्धं च, सुद्ध तत्वं च भावना ।
पंडितो पूज आराध्यं, जिन समयं च पूजतं ॥

अन्वयार्थ – (ऊर्ध सुद्धं) ऊर्ध्वगामी शुद्ध स्वभाव की **(उच्चरनं)** स्तुति उच्चारण करते है **(च)** और **(सुद्ध तत्वं च)** शुद्ध तत्त्व की **(भावना)** भावना भाते हैं [इस प्रकार] **(पंडितो)** सम्यक्ज्ञानी **(जिन समयं च)** जिन समय अर्थात् वीतरागी शुद्धात्मा परमात्म स्वरूप की **(पूजतं)** पूजा करते हुए **(पूज आराध्यं)** पूजा आराधना करते हैं।

अर्थ – ज्ञानीजन ऊर्ध्वगामी शुद्ध स्वभाव की स्तुतियाँ उच्चारण करते हैं, शुद्ध तत्त्व की भावना भाते हैं। इस प्रकार सम्यग्ज्ञानी साधक जिन समय अर्थात् वीतरागी शुद्धात्मा परमात्म स्वरूप की पूजा करते हुए सच्ची पूजा आराधना करते हैं।

प्रश्न १ – ज्ञानी किस प्रकार स्तुति पूजा आराधना करते हैं ?

उत्तर – ज्ञानीजन शुद्ध चिदानन्द मयी ध्रुव स्वभाव की स्तुति उच्चारण करते हैं। हृदय में ध्रुव स्वभाव की धारणा को दृढ़ता से धारण कर शुद्ध तत्व की भावना भाते हैं। ज्ञानी का पूज्य आराध्य निज शुद्धात्म स्वरूप होता है। अपने वीतराग शुद्धात्म देव का चिन्तन–मनन करना, सच्चा आराधन और ध्रुव धाम का अनुभव करना सच्ची देव पूजा है।

प्रश्न २ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी को किस बात का विवेक होता है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी निरन्तर निर्विकल्प अनुभव में नहीं रह सकते इसलिये उन्हें भी भक्ति आदि का राग आता है परन्तु ज्ञानी को हेय, ज्ञेय, उपादेय, इष्ट – अनिष्ट का विवेक होता है।

प्रश्न ३ – आराधना में कारण कार्य संबंध किस प्रकार घटित होगा ?

उत्तर – ज्ञानी जानता है कि जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। कारण (आश्रय लेने योग्य) अपना शुद्धात्म स्वरूप है उसका लक्ष्य रखकर आराधना स्तुति करता है तो कार्य (पर्याय) में भी परमात्म पद प्रगट होता है।

गाथा – २३

जिनेन्द्र कथित शुद्ध पूजा का महत्व

पूजतं च जिनं उक्तं, पंडितो पूजतो सदा ।
पूजतं सुद्ध सार्धं च, मुक्ति गमनं च कारनं ॥

अन्वयार्थ – (पूजतं च) पूजा का स्वरूप **(जिनं उक्तं)** जैसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है **(पंडितो)** ज्ञानी **(सदा)** हमेशा **(पूजतो)** उसी प्रकार पूजा करता है **(सुद्ध सार्धं च)** शुद्ध स्वभाव की साधना ही **(पूजतं)** सच्ची पूजा है [जो] **(मुक्ति गमनं च)** मुक्ति गमन का **(कारनं)** कारण है ।

अर्थ – जिनेन्द्र भगवान ने पूजा का जैसा स्वरूप कहा है, सम्यग्ज्ञानी साधक भगवान के बतलाये अनुसार हमेशा शुद्ध पूजा करते हैं, पचहत्तर गुणों के द्वारा अरिहंत सिद्ध परमात्मा के गुणों की आराधना करना व्यवहार से पूजा है और शुद्ध स्वभाव की साधना करना निश्चय से सच्ची पूजा है, यह पूजा मुक्ति गमन का कारण है ।

प्रश्न १ – शुद्ध पूजा का फल क्या है ?

उत्तर – जिनेन्द्र परमात्मा ने पूजा का जैसा स्वरूप कहा है ज्ञानीजन हमेशा वैसी ही शुद्ध पूजा अर्थात् स्वाभाव की साधना करते हैं । शुद्ध पूजा से मुक्ति की प्राप्त होती है ।

प्रश्न २ – ज्ञानी को परमात्मा की वाणी का कैसा श्रद्धान होता है ?

उत्तर – परमात्मा की वाणी को सत्य ध्रुव शाश्वत मानते हुए ज्ञानी यह श्रद्धान करता है कि आत्मा त्रिकाली शुद्ध है, पर द्रव्यों से सर्वथा भिन्न है । निज स्वभाव में लीनता ही धर्म है तथा इस लीनता में क्रमोत्तर वृद्धि ही धर्म का मार्ग है, यही मोक्ष का कारण है ।

गाथा – २४

अदेवादि की पूजा संसार का कारण है

अदेवं अन्यान मूढं च, अगुरं अपूज पूजतं ।
मिथ्यातं सकल जानन्ते, पूजा संसार भाजनं ॥

अन्वयार्थ – (अदेवं) अदेव **(च)** और **(अगुरं)** अगुरू [जो] **(अपूज)** अपूज्य होते हैं **(अन्यान मूढं)** अज्ञानी मूढ़ जीव [इनकी] **(पूजतं)** पूजा करते हैं [ज्ञानी] **(सकल)** इस सबको **(मिथ्यातं)** मिथ्यात्व **(जानन्ते)** जानते हैं **(पूजा)** यह पूजा [जीव को] **(संसार भाजनं)** संसार का पात्र बनाने वाली है ।

अर्थ – अदेव और अगुरू जो अपूज्य होते हैं, अज्ञानी मूढ़ जीव अदेव और अगुरुओं की पूजा करते हैं जबकि ज्ञानीजन अज्ञान जनित मान्यताओं और कार्यों को पूर्णतः मिथ्यात्व जानते हैं । अदेव अगुरु आदि की पूजा जीव को संसार का पात्र बनाने वाली है ।

प्रश्न १ – अज्ञानी मूढ़ जीव क्या करते हैं और उसका क्या परिणाम होता है ?

उत्तर – अज्ञानी मूढ़ जीव देवत्व रहित अदेवों की तथा अज्ञानी अगुरू जो अपूज्य होते हैं, उनकी पूजा भक्ति करते हैं और दुर्गति के पात्र बनते हैं । जो अदेवादि की पूजा करते हैं, उन्हें इष्ट मानते हैं वे अज्ञानी जीव संसार के पात्र बनते हैं अर्थात् चार गति चौरासी लाख योनियों में अनन्त काल तक जन्म – मरण के दु:ख भोगते हैं ।

प्रश्न २ – '' अदेवं अन्यान मूढं च '' इस गाथा के पद्यानुवाद में कवि भूषण चंचल जी ने क्या लिखा है ?

उत्तर – देव किन्तु देवत्व हीन जो, वे अदेव कहलाते हैं ।
वही अगुरू जड़ जो गुरू बनकर, झूठा जाल बिछाते हैं ॥
ऐसे इन अदेव अगुरू की, पूजा है मिथ्यात्व महान ।
जो इनकी पूजा करते वे, भव–भव में फिरते अज्ञान ॥

प्रश्न ३ – मिथ्यात्व क्या है ? भेद सहित बताइये ।

उत्तर – कुदेव–अदेव में देव बुद्धि, कुगुरू–अगुरू में गुरू बुद्धि और कुधर्म–अधर्म में धर्म बुद्धि होना ही मिथ्यात्व है । इसके पाँच भेद हैं –

(१) एकान्त (२) विपरीत (३) संशय (४) विनय (५) अज्ञान ।

मिथ्यात्व जीव को अनन्त संसार में परिभ्रमण का कारण है । पर को अपना मानना, पर से अपना भला होना मानना, यह तो भ्रम है ही, परन्तु अपनी एक समय की चलने वाली पर्याय में इष्ट–अनिष्टपना मानना भी मिथ्यात्व है । (इन पाँच भेदों की परिभाषा – अध्याय ४ में जैन सिद्धांत प्रवेशिका के प्रश्न क्रमांक ३१४ से ३१८ तक दी गई है ।)

प्रश्न ४ – अज्ञानी जीव की मान्यता को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – अज्ञानी संसारी जीव मोह के कारण अदेव, कुदेवादि की पूजा, वंदना भक्ति करता है, और संसारी पुत्र, परिवार आदि की कामना पूर्ति चाहता है, जबकि यह सब प्रत्येक जीव को स्वयं के कर्मोदय अनुसार प्राप्त होते हैं । मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण विवेकहीन जीव लोक मूढ़ता वश अदेवादि की पूजा भक्ति करता है, जिससे अनन्त संसार में घूमता रहता है ।

गाथा – २५

शुद्ध पूजा का फल

तेनाह पूज सुद्धं च, सुद्ध तत्व प्रकासकं ।
पंडितो वन्दना पूजा, मुक्ति गमनं न संसया ॥

अन्वयार्थ – (तेनाह) इसीलिये कहा है मैंने **(पूज सुद्धं च)** शुद्ध पूजा का स्वरूप [यह शुद्ध पूजा] **(सुद्ध तत्व)** शुद्ध तत्व की **(प्रकासकं)** प्रकाशक है **(पंडितो)** ज्ञानी [इस प्रकार की] **(वन्दना पूजा)** वन्दना पूजा करके **(मुक्ति गमनं)** मुक्ति को प्राप्त करते हैं **(न संसया)** इसमें कोई संशय नहीं है ।

अर्थ – अदेवादि की पूजा से जीव संसार में परिभ्रमण करता है । (आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज कहते हैं कि) इसीलिये मैंने शुद्ध पूजा का स्वरूप कहा है । यह शुद्ध पूजा शुद्ध तत्त्व का प्रकाश करने वाली है, ज्ञानी पंडित इस विधि से वन्दना पूजा करके मुक्ति को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।

प्रश्न १ – श्री जिन तारण स्वामी जी ने शुद्ध पूजा का स्वरूप किस कारण से कहा है ?

उत्तर – अदेव आदि की पूजा जीव को संसार में परिभ्रमण कराने वाली है इसलिये श्री जिन तारण स्वामी जी ने शुद्ध पूजा का स्वरूप कहा है ।

प्रश्न २ – संसार परिभ्रमण का कारण और उससे छूटने का उपाय क्या है ?

उत्तर – देह में आत्म बुद्धि, पर द्रव्य में कर्तृत्व बुद्धि, विषयों में सुख बुद्धि, शुभ भावों में धर्म बुद्धि संसार परिभ्रमण का कारण है। संसार परिभ्रमण से मुक्त होने का उपाय शुद्ध पूजा है जो शुद्ध तत्त्व की प्रकाशक है और मुक्ति गमन की कारण है।

गाथा – २६

सम्यक्दृष्टि ज्ञानी की जीव मात्र के प्रति दृष्टि

प्रति इन्द्रं प्रति पूर्नस्य, सुद्धात्मा सुद्ध भावना ।
सुद्धार्थं सुद्ध समयं च, प्रति इन्द्रं सुद्ध दिस्टितं ॥

अन्वयार्थ – (प्रति इन्द्रं) प्रत्येक आत्मा **(प्रति पूर्नस्य)** अपने में परिपूर्ण है **(सुद्धात्मा)** शुद्धात्मा है **(सुद्ध भावना)** ऐसी शुद्ध भावना भाते हुए **(सुद्धार्थं)** निश्चय से प्रयोजनीय **(सुद्ध समयं च)** शुद्ध स्व समय का अनुभव करने वाले ज्ञानी **(प्रति इन्द्रं)** प्रत्येक आत्मा को **(सुद्ध दिस्टितं)** शुद्ध दृष्टि से देखते हैं [अर्थात् प्रत्येक आत्मा को परिपूर्ण परमात्म स्वरूप देखते हैं।]

अर्थ – प्रत्येक आत्मा स्वभाव से अपने में परिपूर्ण है, शुद्धात्मा परमात्मा है, ऐसी निरंतर भावना भाते हुए आत्म स्वरूप का चिंतन – मनन करते हुए, निश्चय से प्रयोजनीय शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव करने वाले सम्यक्दृष्टि ज्ञानी प्रत्येक आत्मा को शुद्ध दृष्टि से परमात्म स्वरूप देखते हैं, अनुभव करते हैं।

प्रश्न १ – ज्ञानी की जगत के जीवों के प्रति कैसी दृष्टि होती है ?

उत्तर – ज्ञानी अपने आत्मा को सिद्ध के समान परमात्म स्वरूप जानता और मानता है। जैसा उसने अपने आपको देखा है, सिद्धांतत: वह उसी अनुसार जगत के समस्त जीवों को परमात्म स्वरूप देखता है।

ज्ञानी जानता है कि संसारी दशा में जीव कर्म संयोग सहित होने से नाना प्रकार की योनियों मे जन्म–मरण करता है फिर भी स्वभाव दृष्टि से प्रत्येक आत्मा कर्म रहित सिद्ध के समान शुद्ध है। वह प्रत्येक आत्मा को शुद्ध दृष्टि से देखता है।

प्रश्न २ – क्या और कोई जीव भी शुद्ध दृष्टि हो सकता है ?

उत्तर – प्रत्येक जीव आत्मा अपने आपमें परिपूर्ण है, शुद्धात्मा है, जो भव्य जीव ऐसी शुद्ध भावना करता हुआ अपने प्रयोजनीय निज शुद्धात्म स्वरूप को देखता है, अनुभूति करता है वह जीव शुद्ध दृष्टि हो सकता है।

गाथा – २७

ज्ञानी सच्ची पूजा के आचरण से संयुक्त

दातारो दान सुद्धं च, पूजा आचरन संजुतं ।
सुद्ध संमिक्त हृदयं जस्य, अस्थिरं सुद्ध भावना ॥

अन्वयार्थ – (जस्य) जिसके **(हृदयं)** हृदय में **(सुद्ध संमिक्त)** शुद्ध सम्यक्त्व है [ऐसा सम्यक्दृष्टि ज्ञानी] **(दातारो)** सच्चा दातार होता है **(दान सुद्धं)** शुद्ध दान देता है **(च)** और **(सुद्ध भावना)** शुद्ध

भावना में **(अस्थिरं)** स्थिर होकर **(पूजा आचरन)** पूजा के आचरण से **(संजुतं)** संयुक्त रहता है।

अर्थ – जिस जीव के हृदय में शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, जिसने अपने आत्म स्वरूप का निश्चय श्रद्धान किया है, स्वानुभूति से सम्पन्न ऐसा सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी सच्चा दाता होता है, शुद्ध दान देता है और शुद्ध भावना में स्थिर होकर सम्यक् पूजा के आचरण से संयुक्त रहता है।

प्रश्न १ – व्यवहार से दान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – सम्यक्‌दृष्टि श्रावक पात्र जीवों को आहार दान, ज्ञान दान, औषधिज्ञान और अभयदान देता है यह व्यवहार दान है जो स्वर्ग आदि सद्‌गति की प्राप्ति कराता है, पुण्य बंध का कारण है।

प्रश्न २ – निश्चय दान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – ज्ञानी साधक अपना उपयोग अपने स्वभाव में लगाता है यह निश्चय दान है।

प्रश्न ३ – निश्चय से आहार दान क्या है ?

उत्तर – अपने आत्मा को ममल स्वभाव के अनुभव से संतुष्ट करना आहारदान है।

प्रश्न ४ – निश्चय से औषधि दान क्या है ?

उत्तर – अपनी आत्मा को जन्म-मरण के रोग से छुड़ाने के लिये भेदज्ञान तत्त्वनिर्णय की औषधि देना औषधिदान है।

प्रश्न ५ – निश्चय से ज्ञान दान क्या है ?

उत्तर – अपने आत्मा को ज्ञान रूप अनुभव करना, ज्ञायक रहना, केवलज्ञान की ओर अग्रसर होना ज्ञानदान है।

प्रश्न ६ – निश्चय से अभय दान क्या है ?

उत्तर – अपनी आत्मा को मोह रागादि परिणामों के निमित्त से होने वाले भय से मुक्त रखना अभयदान है।

प्रश्न ७ – निश्चय दान का क्या फल है ?

उत्तर – ज्ञानी साधक निश्चय दान देता है। इस दान के प्रभाव से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

गाथा – २८

वंदना पूजा की यथार्थ विधि

सुद्ध दिस्टी च दिस्टंते, सार्धं न्यान मयं धुवं ।
सुद्ध तत्वं च आराध्यं, वन्दना पूजा विधीयते ॥

अन्वयार्थ – [ज्ञानी] **(सुद्ध दिस्टी)** शुद्ध दृष्टि से **(दिस्टंते)** देखते हैं **(न्यान मयं)** ज्ञान मयी **(धुवं)** ध्रुव स्वभाव की **(सार्धं)** साधना करते हैं **(च)** और **(सुद्ध तत्वं च)** शुद्ध तत्त्व की **(आराध्यं)** आराधना करते हैं [यही] **(वन्दना पूजा)** वन्दना पूजा की **(विधीयते)** यथार्थ विधि है।

अर्थ – आत्मार्थी सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी पुरुष शुद्ध दृष्टि से अपने आत्म स्वरूप को देखते हैं, अरिहंत सिद्ध परमात्मा के समान अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करते हैं, शुद्धात्म तत्त्व की आराधना करते हैं, यही वन्दना पूजा की यथार्थ विधि है।

प्रश्न १ – यथार्थ पूजा विधि के संबंध में २८ वीं गाथा में सार सूत्र क्या हैं ?

उत्तर – १. शुद्ध दृष्टि से निज स्वरूप को देखना। २. ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करना। ३. शुद्ध तत्त्व की आराधना करना। यथार्थ पूजा की विधि है।

प्रश्न २ – शुद्ध दृष्टि का पूजा से क्या संबंध है ?

उत्तर – ज्ञानी की दृष्टि अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव पर स्थिर रहती है। जिससे ज्ञान का स्व–पर प्रकाशकपना स्वभाव रूप परिणत होकर शुद्धात्म तत्त्व की आराधना में लीन हो जाता है। यही शुद्धोपयोग की स्थिति है जो वन्दना पूजा की वास्तविक विधि है, इसी से परमात्म पद प्रगट होता है।

गाथा – २९

चार संघ को शरणभूत निज शुद्धात्मा

संघस्य चत्रु संघस्य, भावना सुद्धात्मनं ।
समय सरनस्य सुद्धस्य, जिन उक्तं सार्धं धुवं ॥

अन्वयार्थ – (संघस्य) श्री संघ के भव्य जीवो ! **(सुद्धात्मनं)** शुद्धात्मा की **(भावना)** भावना भाओ **(सार्धं ध्रुवं)** ध्रुव स्वभाव की साधना करो **(चत्रु)** चारों **(संघस्य)** संघ के जीवों को **(सुद्धस्य समय)** शुद्ध स्वरूप मय शुद्धात्मा **(सरनस्य)** शरण भूत है **(जिन उक्तं)** जिनेन्द्र भगवान की यही दिव्य देशना है।

अर्थ – श्री संघ के हे भव्य जीवो ! शुद्धात्म स्वरूप की निरंतर भावना भाओ। अविनाशी ध्रुव स्वभाव की साधना करो, यही साध्य आराध्य इष्ट और प्रयोजनीय है। मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका चारों संघ के जीवों को शुद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा ही शरणभूत है, श्री जिनेन्द्र भगवान का यही दिव्य संदेश है।

प्रश्न १ – जिनवाणी में मोक्षमार्ग का कथन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर – जिनवाणी में मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से किया गया है। अखंड आत्म स्वभाव के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद रूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है, वह व्यवहार मोक्षमार्ग है, इसे उपचार से साधन रूप मोक्षमार्ग कहा है।

आत्मा में वीतराग भाव रूप जो यथार्थ मोक्षमार्ग प्रगट होता है वह निश्चय मोक्षमार्ग है, इस प्रकार जिनवाणी में दो प्रकार से मोक्षमार्ग का कथन किया गया है।

प्रश्न २ – मुनि धर्म क्या है, और चार संघ के जीव क्या करते हैं ?

उत्तर – मुनि धर्म शुद्धोपयोग रूप है। जो आत्मज्ञान पूर्वक स्वभाव की साधना करते हैं, आत्मा में लीन होते हैं, वह सच्चे साधु हैं। मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, चारों संघ के जीव निरंतर शुद्धात्म स्वरूप की भावना भाते हैं।

गाथा – ३०

जिनोपदेश में सर्व तत्त्वों का सार निज शुद्धात्मा

सार्धं च सप्त तत्वानं, दर्व काया पदार्थकं ।
चेतना सुद्ध ध्रुवं निस्चय, उक्तंति केवलं जिनं ॥

अन्वयार्थ – (सप्त तत्वानं) सात तत्त्वों में **(दर्व)** छह द्रव्यों में **(काया)** पाँच अस्तिकाय में **(च)** और **(पदार्थकं)** नौ पदार्थों में **(चेतना सुद्ध)** शुद्ध चेतना मयी **(ध्रुवं)** ध्रुव स्वभाव **(निस्चय)** निश्चय से इष्ट उपादेय है **(सार्धं)** इसकी श्रद्धा, साधना करो **(केवलं)** केवलज्ञानी **(जिनं)** जिनेन्द्र भगवान की **(उक्तंति)** यही दिव्य देशना है।

अर्थ – केवलज्ञानी श्री जिनेन्द्र भगवान की परम पावन देशना है – सात तत्त्व – जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। छह द्रव्य – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। पाँच अस्तिकाय – जीव अस्तिकाय, पुद्गल अस्तिकाय, धर्म अस्तिकाय, अधर्म अस्तिकाय आकाश अस्तिकाय। नौ पदार्थ –जीव, अजीव, आस्रव, बंध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सत्ताईस तत्त्वों में एक मात्र शुद्ध चेतनामयी ध्रुव स्वभाव निश्चय से साधना करने योग्य इष्ट और उपादेय है, इसी सत्स्वरूप की निरंतर साधना आराधना करो।

प्रश्न १ – केवलज्ञानी भगवान ने वस्तु स्वरूप के बारे में क्या देशना दी है ?

उत्तर – केवलज्ञानी भगवान ने कहा है कि सात तत्त्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नौ पदार्थों में, शुद्ध चैतन्य मयी ध्रुव स्वभाव निज शुद्धात्मा ही इष्ट और प्रयोजनभूत है।

प्रश्न २ – सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि में आत्म श्रद्धान किस प्रकार करना चाहिये ?

उत्तर – भेद ज्ञान पूर्वक ऐसा श्रद्धान करना चाहिये कि सात तत्त्व (जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष) में शुद्ध तत्त्व शुद्धात्मा मैं जीव तत्त्व हूँ।

छह द्रव्य (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) में मैं शुद्ध जीव द्रव्य हूँ।

पंचास्तिकाय (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश) में मैं शुद्ध जीवास्तिकाय शुद्धात्मा हूं।

नौ पदार्थ (जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, मोक्ष) में शुद्ध सिद्ध पद वाला मैं शुद्धात्मा हूँ, शेष अजीवादि तत्त्व मुझसे सर्वथा भिन्न हैं।

प्रश्न ३ – मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि जीव की अंतर दशा कैसी होती है ?

उत्तर – **मिथ्यादृष्टि –**

जीव अजीव के भेद को नहीं जानते। वे कर्मोदय जनित अवस्थाओं को अपना स्वरूप जानकर उनमें तन्मय हो जाते हैं। रागादि भाव, कर्म कृत होने पर भी उन्हें अपने भाव जानकर उनमें लीन रहते हैं।

सम्यक्दृष्टि –

जीव, अजीव, आस्रव, बंध आदि समस्त अवस्थाओं को जानते देखते हैं। रागादि परिणामों को मात्र जानते हैं। उनके कर्ता नहीं होते। शुभ – अशुभ भावों को कर्मोदय जनित परिणाम जानकर उनमें तन्मय नहीं होते।

प्रश्न ४ – धर्म की प्राप्ति और आत्म कल्याण का मूल क्या है ?

उत्तर – धर्म की प्राप्ति और आत्म कल्याण का मूल भेदज्ञान तत्त्व निर्णय पूर्वक अपने स्वानुभव को उपलब्ध करना है। आत्म ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। किसी जीव को क्षयोपशम बहुत हो और अंतर में निज शुद्धात्म स्वरूप का बोध न हो तो वह ज्ञान कोई कार्यकारी नहीं है। जैसे–चम्मच सभी व्यंजनों में जाती है परन्तु उसे स्वाद किसी भी वस्तु का नहीं आता। इसी प्रकार क्षयोपशम ज्ञान वाले जीव की दशा होती है। उसके क्षयोपशम ज्ञान में सब होने पर भी उसको अनुभव रूप स्वाद नहीं आता इसलिये स्वानुभूति ही धर्म की प्राप्ति और आत्म कल्याण का मूल है।

गाथा – ३१

शुद्धात्म स्वरूप की साधना की प्रेरणा

मिथ्या तिक्त त्रितियं च, कुन्यानं त्रिति तिक्तयं ।
सुद्ध भाव सुद्ध समयं च, सार्धं भव्य लोकयं ॥

अन्वयार्थ – (भव्य लोकयं) हे भव्य जीवो ! **(त्रितियं)** तीन प्रकार के **(मिथ्या)** मिथ्यात्व को **(तिक्त)** छोड़ो **(त्रिति)** तीन प्रकार के **(कुन्यानं)** कुज्ञान का **(तिक्तयं)** त्याग करो **(च)** और **(सुद्ध भाव)** शुद्ध भाव मयी **(सुद्ध समयं)** शुद्ध स्व समय की **(सार्धं च)** श्रद्धा और साधना करो।

अर्थ – हे भव्य जीवो ! मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व इन तीनों प्रकार के मिथ्यात्व को छोड़ो। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि तीन प्रकार के कुज्ञान का त्याग करो और शुद्ध भावमयी अपने शुद्धात्म स्वरूप की श्रद्धा और साधना करो।

प्रश्न १ – मानव जीवन की सार्थकता और सफलता कब है ?

उत्तर – नैतिकता, उत्तम कुल, धनादि संयोगों की प्राप्ति, निरोग शरीर, दीर्घ आयु यह सभी शुभ योग पूर्व पुण्य के उदय से प्राप्त होते हैं। उत्तम सरल स्वभाव का होना भी उपलब्धि है। यह सब शुभ योग प्राप्त कर आत्म स्वभाव को पहिचानने में ही मानव जीवन की सार्थकता और सफलता है।

प्रश्न २ – जिन वचनों को स्वीकार करने का क्या महत्व है ?

उत्तर – सर्वज्ञ परमात्मा के मुखारविन्द से निकली हुई वीतराग वाणी परम्परा से गणधरों व मुनियों द्वारा प्रवाहित होती आई है, जो जिनवाणी शास्त्र रूप में गुंथित है। इस वीतराग वाणी में कथित तत्त्वों के स्वरूप को जो भव्य जीव हृदयंगम करते हैं, जिन वचनों को स्वीकार करते हैं वह संसार के दु:खों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं, यही जिन वचनों को स्वीकार करने का महत्व है।

गाथा – ३२

सच्ची पूजा का स्वरूप और मुक्ति मार्ग

एतत् संमिक्त पूजस्या, पूजा पूज्य समाचरेत् ।
मुक्ति श्रियं पथं सुद्धं, विवहार निस्चय सास्वतं ॥

अन्वयार्थ – (एतत्) इस प्रकार **(संमिक्त पूजस्या)** सम्यक्त्व सहित की जाने वाली पूजा का स्वरूप कहा **(पूज्य समाचरेत्)** पूज्य के समान आचरण होना ही [सच्ची] **(पूजा)** पूजा है **(मुक्ति श्रियं)** मुक्ति श्री को प्राप्त करने का **(पथं सुद्धं)** शुद्ध पथ **(विवहार निस्चय)** व्यवहार निश्चय से **(सास्वतं)** शाश्वत है ।

अर्थ – आत्म दृष्टा परम वीतरागी आत्मज्ञानी संत आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज कहते हैं – इस प्रकार सम्यक्त्व सहित की जाने वाली पूजा का स्वरूप वर्णन किया । पूज्य के समान आचरण होना ही सच्ची पूजा है । मुक्ति श्री को प्राप्त करने का शुद्ध पथ व्यवहार और निश्चय से शाश्वत है ।

प्रश्न १ – पूजा पूज्य समाचरेत् का क्या अर्थ है ?

उत्तर – पूज्य के समान आचरण होना ही सच्ची पूजा है । पूज्य के समान ही अपना शुद्धात्मा शुद्ध चैतन्य स्वरूप है । ऐसा जानकर निज शुद्धात्मा की आराधना करते हुए पूज्य के समान वीतरागतामय आचरण बनाना सच्ची पूजा है । यही पूजा पूज्य समाचरेत् का अर्थ है ।

प्रश्न २ – भक्ति और पूजा का क्या स्वरूप है ?

उत्तर –

पूजा का अभिप्राय पूज्य सम, स्वयं पूज्य बन जाना है ।
जो भी अपना इष्ट मानते, उसी इष्ट को पाना है ॥

भक्ति अर्थात् भजना–किसको भजना ? अपने स्वरूप को भजना । आत्म स्वरूप निर्मल निर्विकारी–सिद्ध परमात्मा के समान है । उसकी यथार्थ प्रतीति करके उसको भजना यही निश्चय भक्ति है, और यही परमार्थ स्तुति है । व्यवहार से परमात्मा के गुणों में अनुराग होना भक्ति है । निश्चय से अपने ध्रुव तत्त्व शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय से पर्याय की अशुद्धि और कमी को दूर कर पूर्णता को उपलब्ध करना पूजा है । व्यवहार से अरिहंत सिद्ध परमात्मा के गुणों की आराधना करना पूजा है ।

प्रश्न ३ – ज्ञानी को पूज्य का बहुमान कैसा होता है और पूजा विधि का सार क्या है ?

उत्तर – गणधर देव कहते हैं कि हे जिनेन्द्र भगवान ! मैं आप जैसे ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता । आपके एक समय के ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें झलक रही हैं । कहाँ आपका अनंत द्रव्य पर्यायों को जानने वाला अगाधज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान ? चार ज्ञान का धारी भी छद्मस्थ है । केवलज्ञानी परमात्मा शुद्ध स्वरूप में लीन हो गये हैं । इस प्रकार प्रत्येक साधक द्रव्य अपेक्षा से अपने को परमात्मा स्वीकार कर लेने पर भी ज्ञान, दर्शन आदि पर्यायों की अपेक्षा से अपनी कमी को जानता है और इसे पूरा करने के लिये अरिहंत सिद्ध परमात्मा की वाणी के अनुसार अपने इष्ट निज शुद्धात्म देव की पूजा आराधना करता है । जिससे परमात्म पद प्रगट होता है । यही ज्ञान मार्ग की पूजा विधि का सार है ।

अभ्यास के प्रश्न – गाथा १७ से ३२

प्रश्न १ – सत्य/असत्य कथन चुनिये।

(क) जिन्हें आत्मानुभूति पूर्वक सम्यग्ज्ञान हुआ है, उन्हें पर की ओर देखने का भाव नहीं होता।

(ख) सम्यग्दर्शन होने के लिए आत्म स्वभाव की रुचि होना आवश्यक नहीं है।

(ग) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी समयक्त्व के २५ दोषों में से २० दोषों से रहित होते हैं।

(घ) पंडितो पूज आराध्यं, जिन समयं च पूजते।

प्रश्न २ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

(अ) ज्ञानीजन शुद्ध चिदानंदमयी............की स्तुति उच्चारण करते हैं।

(ब) शुद्ध स्वभाव की साधना करना ही सच्ची............है।

(स) देह में आत्म बुद्धि, पर द्रव्य में ....बुद्धि , शुभ भावों में धर्म बुद्धि संसार परिभ्रमण का कारण है।

(द) जिसके लक्ष्य में शुद्ध सम्यक्त्व है, ऐसा सम्यक्ज्ञानी सच्चा दाता होता है।

प्रश्न ३ – निम्नलिखित में कोई पाँच परिभाषाएँ लिखिये।

१. निश्चय दान – व्यवहार दान (गाथा २७)।

२. मिथ्यादृष्टि – सम्यक्दृष्टि (गाथा ३०)।

३. लोक मूढ़ता, पाखंड मूढ़ता, देव मूढ़ता (गाथा १९)।

४. ज्ञानी का चैतन्य भासन (गाथा १७)।

५. ज्ञानी का देव दर्शन (गाथा २१)।

६. शुद्ध दृष्टि की पूजा (गाथा २८)

प्रश्न ४ – अति लघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) अंतरशोधन का मार्ग क्या है ? (उत्तर स्वयं लिखें)

(ख) ज्ञानी का दर्शनोपयोग किस प्रकार निर्मल होता है ? (उत्तर स्वयं लिखें)

(ग) ज्ञानी किस प्रकार देव दर्शन करते हैं ? (उत्तर स्वयं लिखें)

(घ) ज्ञानी की जगत के जीवों के प्रति कैसी दृष्टि होती है ? (उत्तर स्वयं लिखें)

प्रश्न ५ – लघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) दातारो दान सुद्धं च, पूजा आचरन संजुतं (गाथा २७) के आधार पर सम्यक्ज्ञानी के दान का संक्षिप्त स्वरूप बताइये। (उत्तर स्वयं लिखें)

(ख) जिनवाणी में मोक्षमार्ग का कथन किस प्रकार किया गया है ? (उत्तर स्वयं लिखें)

(ग) सात तत्त्व नौ पदार्थ आदि में आत्म श्रद्धान किस प्रकार करना चाहिये ?(उत्तर स्वयं लिखें)

प्रश्न ६ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) पंडित पूजा जी ग्रन्थ के आधार पर सम्यग्ज्ञान का स्वरूप समझाइये। (उत्तर स्वयं लिखें)

आचार्य तारण स्वामी कृत ग्रंथों में

सम्यग्ज्ञान

न्यानमयं अप्पानं, न्यानं तिलोय सयल संजुत्तं ।
अन्यान तिमिर हरनं,न्यान उदेसं च सयल विलयंमि ॥

अर्थ – आत्मा ज्ञान मय है। ज्ञान तीनों लोक के समस्त पदार्थों को जानने की सामर्थ्य से संयुक्त है। अज्ञान अंधकार को दूर करने वाला है। ऐसे सम्यग्ज्ञान के प्रगट होने पर समस्त विकार क्षय हो जाते हैं।

(श्री ज्ञान समुच्चय सार जी, गाथा – २५७)

न्यानं तिलोय सारं, न्यानं दंसेइ दंसनं मग्गं ।
जानदि लोयपमानं, न्यान सहावेन सुद्धमप्पानं ॥

अर्थ – सम्यग्ज्ञान तीन लोक में सारभूत है। अपने शुद्धात्म स्वरूप, ज्ञान स्वभाव के आश्रय पूर्वक सम्यग्ज्ञान, दर्शन (निर्विकल्प स्वरूप में लीनता) के मार्ग को दर्शाता है अर्थात् प्रगट करता है और लोक प्रमाण को जानता है।

(श्री ज्ञान समुच्चय सार जी, गाथा – २५८)

न्यानं तत्वानि वेदंते, सुद्ध तत्व प्रकासकं ।
सुद्धात्मा तिअर्थं सुद्धं, न्यानं न्यान प्रयोजनं ॥

अर्थ – ज्ञान तत्त्वों का वेदन करता है, स्व–पर को यथार्थ जानता है, शुद्ध तत्त्व का प्रकाशक है। शुद्धात्मा रत्नत्रय मयी शुद्ध है ऐसा जानना ही ज्ञान का प्रयोजन है।

(श्री श्रावकाचार जी, गाथा – २५०)

न्यानं न्यान सरूवं, जानदि पिच्छेइ सुद्धमप्पानं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा न्यान संजुत्तं ॥

अर्थ – अपने ज्ञान स्वरूपी शुद्धात्मा को जो जानता पहिचानता है, अनुभव करता है वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। यह ज्ञान आत्मा को शुद्धात्मा परमात्मा जानता है, स्वभाव के बोध से संयुक्त रहता है।

(श्री ज्ञान समुच्चय सार जी, गाथा – २५९)

न्यान बलेन जीवो, अप्पा सुद्धप्प हवेइ परमप्पा ।
न्यान सहावं जानदि, मुक्ति पंथ सिद्धि ससरूवं ॥

अर्थ – सम्यग्ज्ञान के बल से जीव आत्मा शुद्धात्मा को जानता हुआ परमात्मा होता है। सम्यग्ज्ञान अपने स्व स्वरूप ज्ञान स्वभाव को जानता है यही सिद्धि और मुक्ति को प्राप्त करने का मार्ग है।

(श्री ज्ञान समुच्चय सार जी, गाथा – २६०)

न्यानेन न्यानमालंबं, पंच दीप्ति प्रस्थितं ।
उत्पन्नं केवलं न्यानं, सुद्धं सुद्ध दिस्टितं ॥

अर्थ – शुद्ध दृष्टि जीव निश्चय से सम्यग्ज्ञान के द्वारा ज्ञान स्वभाव का आलम्बन लेकर पंच ज्ञान मयी ज्योति स्वरूप में स्थित होता है और स्वभाव में लीन होने से उसे केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

(श्री श्रावकाचार जी, गाथा – २५१)

पाठ – १

षट् लेश्या दर्शन

लेश्या की परिभाषा –

१. कषाय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं।

२. जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य–पाप से लिप्त करता है उसे लेश्या कहते हैं।

लेश्या के भेद –

लेश्या के मूल दो भेद हैं – द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या तथा उत्तर भेद छह हैं – कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, पीत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या।

द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या का लक्षण – शरीर के वर्ण (रंग) को द्रव्य लेश्या कहते हैं तथा जीव के आंतरिक परिणामों को भाव लेश्या कहते हैं।

लेश्या के छह भेद होने का कारण –

कषाय का उदय अनेक प्रकार का होता है, उनमें तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, मंदतम कषाय परिणाम होने से लेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल यह छह भेद होते हैं।

कृष्ण लेश्या वाले जीव के लक्षण –

१. जो तीव्र क्रोधी हो। २. बैर न छोड़ता हो। ३. लड़ना जिसका स्वभाव हो। ४. धर्म और दया से रहित हो। ५. दुष्ट प्रकृति का हो। ६. किसी के वश में न आता हो, ऐसे परिणामों वाला जीव कृष्ण लेश्या वाला होता है।

नील लेश्या वाले जीव के लक्षण –

१. जो काम करने में मंद हो। २. वर्तमान कार्य में विवेक रहित हो। ३. कला चातुर्य से रहित हो। ४. पाँच इन्द्रियों के विषयों में लम्पट हो। ५. मानी, मायाचारी और आलसी हो। ६. भीरू और अति सोने वाला हो। ७. दूसरों को ठगने में अति चतुर हो। ८. धन और धान्य के विषय में तीव्र लालसा हो। ऐसे परिणामों वाला जीव नील लेश्या वाला होता है।

कापोत लेश्या वाले जीव के लक्षण –

१. जो दूसरों पर क्रोध करता है और दोष लगाता है।२. शोक और भय से व्याप्त रहता है। ३. दूसरों की निंदा करता है और अनेक प्रकार से दूसरों को दुःख देता है। ४. दूसरों का तिरस्कार करता है। ५. अपनी बहुत प्रशंसा करता है और दूसरों पर विश्वास नहीं करता। ६. प्रशंसा करने वाले पर प्रसन्न होता है फिर हानि–लाभ की भी परवाह नहीं करता। ७. प्रशंसा स्तुति करने वाले पर धन लुटा देता है। ८. युद्ध में मरने के लिए तैयार रहता है, कार्य–अकार्य को नहीं जानता, ऐसे परिणामों वाला जीव कापोत लेश्या वाला होता है।

पीत लेश्या वाले जीव के लक्षण –

१. जो कार्य–अकार्य को और सेव्य – असेव्य को जानता है। २. सबसे समान व्यवहार एवं प्रीति भाव रखता है। ३. लाभ – हानि में समभाव रखता है, संतोषी रहता है। ४. करुणा भाव युक्त, कोमल परिणामी होता है। ५. दया दान में तत्पर रहता है, ऐसे परिणामों वाला जीव पीत लेश्या वाला होता है।

पद्म लेश्या वाले जीव के लक्षण –

१. जो त्यागी और भद्र परिणामी होता है। २. जिसके निर्मल परिणाम रहते हैं। ३. निरंतर सत् कार्य करने में तत्पर रहता है। ४. साधु–गुरूजनों की सेवा पूजा में तत्पर रहता है। ५. अनेक अपराधों को क्षमा कर देता है, ऐसे परिणामों वाला जीव पद्म लेश्या वाला होता है।

शुक्ल लेश्या वाले जीव के लक्षण –

१. जो पक्षपात नहीं करता और धर्म परायण होता है। २.सबके साथ समान व्यवहार करता है। ३. इष्ट–अनिष्ट विषयों में राग–द्वेष नहीं करता। ४. स्त्री, पुरुष, मित्र आदि में मोहित नहीं होता। ५.परमात्म स्वरूप की निरंतर भावना भाता है, ऐसे परिणामों वाला जीव शुक्ल लेश्या वाला होता है।

अशुभ और शुभ लेश्या होने का कारण –

छह लेश्याओं में प्रथम तीन कृष्ण, नील और कापोत अशुभ लेश्या हैं जो क्रमशः तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र कषाय के उदय में होती हैं तथा पीत, पद्म और शुक्ल यह तीन शुभ लेश्या हैं जो क्रमशः मंद, मंदतर और मंदतम कषाय के उदय में होती हैं।

षट् लेश्याओं के वर्ण अर्थात् रंग –

१. कृष्ण लेश्या का रंग कौए के समान काला होता है। २. नील लेश्या का रंग नीलकण्ठ के समान नीला होता है। ३. कापोत लेश्या का रंग कबूतर के समान होता है। ४. पीत लेश्या का रंग स्वर्ण के समान पीला होता है। ५. पद्म लेश्या का रंग कमल के समान गुलाबी होता है। ६. शुक्ल लेश्या का रंग शंख के समान धवल होता है।

लेश्याओं को समझने के लिए उदाहरण –

छह पथिक (राहगीर) कहीं जा रहे थे, मार्ग में उन्होंने पके आमों से लदा हुआ वृक्ष देखा और आम खाने का विचार करके वृक्ष के नीचे पहुंचे। उन छह व्यक्तियों को छह लेश्याओं के अनुसार भिन्न– भिन्न विचार मन में उठते हैं – पहला व्यक्ति कृष्ण लेश्या वाला वृक्ष को जड़ से काटकर गिराना चाहता है। दूसरा व्यक्ति नील लेश्या वाला बड़ी शाखाओं को काटकर गिराना चाहता है। तीसरा व्यक्ति कापोत लेश्या वाला फल वाली छोटी डालियाँ गिराना चाहता है। चौथा व्यक्ति पीत लेश्या वाला डालियाँ नहीं काटना चाहता बल्कि सम्पूर्ण फलों को गिराना चाहता है। पाँचवां व्यक्ति पद्म लेश्या वाला मात्र पके फलों को तोड़कर खाना चाहता है और छटवां व्यक्ति शुक्ल लेश्या वाला वृक्ष को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना जमीन पर गिरे हुए फलों को खाने का विचार करता है। जिस तरह इन छह राहगीरों के भिन्न–भिन्न परिणाम हैं, उसी प्रकार छह लेश्याओं से युक्त नाना जीवों के परिणाम और स्वभाव भिन्न–भिन्न होते हैं।

लेश्याओं से प्राप्त होने वाली गति –

१. 'कृष्णाये जाइ नरयं' कृष्ण लेश्या वाला जीव नरक गति में जाता है।

२. 'नीलाए थावरो होइ' नील लेश्या वाला जीव स्थावर पर्याय को प्राप्त होता है।

३. 'कापोतये तिर्यंच योनिः' कापोत लेश्या वाला जीव तिर्यंच गति में जाता है।

४. 'पीताए मानुषो होई' पीत लेश्या वाला जीव मनुष्य होता है।

५. 'पम्माए देव लोयंमि' पद्म लेश्या वाला जीव देव गति में जाता है।

६. 'सुक्काए सासयं ठाणं' शुक्ल लेश्या वाला जीव शाश्वत सिद्ध पद को प्राप्त करता है।

गतियों में लेश्या का सामान्य कथन –

सामान्य रूप से मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों को छहों लेश्याएं होती हैं। नरक गति में अशुभ लेश्यायें तथा देव गति में शुभ लेश्यायें होती हैं। इस प्रकार चारों गतियों के जीवों को शुभ–अशुभ लेश्यायें होती हैं।

अरिहन्त और सिद्ध भगवान की लेश्या –

अरिहन्त भगवान की एकमात्र परम शुक्ल लेश्या होती है और सिद्ध भगवान आठों कर्मों से रहित होने से लेश्या रहित होते हैं।

लेश्याओं को जानने का प्रयोजन –

शुभ – अशुभ लेश्या रूप परिणामों के द्वारा पुण्य–पाप कर्मों का बंध होता है। जिससे जीव संसार में परिभ्रमण करता है। आयु के त्रिभाग में शुभ–अशुभ लेश्या रूप भाव होते हैं,उन भावों के अनुसार ही आगामी गति का बंध होता है; इसलिए निरंतर अपने भावों की संभाल करना चाहिए तथा रत्नत्रय को धारण करके कर्म बंधनों से मुक्त होने का पुरुषार्थ करना चाहिए, लेश्याओं को जानने का यही प्रयोजन है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – सत्य/असत्य कथन चुनिये।

(क) प्रशंसा स्तुति करने वाले पर धन लुटा देने वाला कापोत लेश्या वाला जीव है।

(ख) लाभ – हानि में राग – द्वेष करना पीत लेश्या का लक्षण है।

(ग) कृष्ण लेश्या वाला जीव काले रंग का होता है।

(घ) पीत लेश्या वाला जीव मनुष्य होता है।

प्रश्न २ – रिक्त स्थानों की पूर्ति करो।

(क) कृष्ण लेश्या वाला जीव वृक्ष को जड़ से काटकर गिराना चाहता है।

(ख) परमात्म स्वरूप की निरंतर भावना भाना.............लेश्या वाले जीव का लक्षण है।

(ग) निरंतर सत्कार्य करने में तत्पर जीव.............लेश्या वाला होता है।

प्रश्न ३ – (अ) परिभाषाएँ लिखिये –

(क) लेश्या (ख) कृष्ण लेश्या (ग) पीत लेश्या (घ) पद्म लेश्या (ङ) शुक्ल लेश्या।

(ब) अंतर बताइये –

(क) कृष्ण और कापोत लेश्या (ख) शुक्ल और पद्म लेश्या (ग) पीत और पद्म लेश्या।

प्रश्न ४ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) लेश्याओं को उदाहरण द्वारा समझाइये। (उत्तर स्वयं लिखें)

(ख) लेश्याओं का स्वरूप बताते हुए समझाइये कि इन्हें जानने का क्या प्रयोजन है ?
(उत्तर स्वयं लिखें)

पाठ – २

ग्यारह प्रतिमा परिचय

प्रश्न – प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन सहित परिणामों की विशुद्धता पूर्वक आत्मोन्नति की श्रेणियों पर आरोहण करने को प्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न – श्रावक के जीवन में प्रतिमाओं का क्या महत्व है।

उत्तर – देशविरत पाँचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ या श्रेणियाँ होती हैं।

ये श्रेणियाँ धीरे – धीरे क्रमशः चारित्र बढ़ाने की व कषाय घटाने की उपयोगी रीतियाँ हैं। श्रावक इनको क्रम से उत्तीर्ण करता हुआ मुनि पद को सुगमता से धारण कर सकता है। ये प्रतिमाएँ संसार के दुःखों का क्षय करने वाली और शुद्धात्मा को झलकाने वाली हैं।

प्रश्न – प्रतिमाएँ कितनी और कौन – कौन सी हैं।

उत्तर – प्रतिमाएँ ग्यारह होती हैं। १. दर्शन प्रतिमा, २. व्रत प्रतिमा, ३. सामायिक प्रतिमा, ४. प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५. सचित्त त्याग प्रतिमा, ६. अनुराग भक्ति प्रतिमा, ७. ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८. आरंभ त्याग प्रतिमा, ९. परिग्रहत्याग प्रतिमा, १०. अनुमति त्याग प्रतिमा, ११. उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा। इन प्रतिमाओं में क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है। पहली प्रतिमा का चारित्र दूसरी प्रतिमा में छूटता नहीं है। पहली प्रतिमा का चारित्र पालते हुए आगे की प्रतिमाओं का चारित्र पालन किया जाता है।

प्रश्न – दर्शन प्रतिमा धारी श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसका सम्यग्दर्शन निर्दोष हो, जो संसार शरीर भोगों से वैरागी हो, पंच परमेष्ठी का आराधक हो। आगे के व्रत आदि पदों को धारण करने के लिये उत्सुक रहता हो वह दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक है।

सार सिद्धांत – निज शुद्ध चैतन्य प्रतिमा का दर्शन ही दर्शन प्रतिमा है।

प्रश्न – व्रत प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतों को आत्मिक भावों की शुद्धि पूर्वक निरतिचार पालन करता है वह व्रत प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

सार सिद्धांत – राग द्वेष आदि विकारी भावों से विरक्त, स्वभाव में रत रहना ही व्रत प्रतिमा है।

प्रश्न – व्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – पापों के त्याग को व्रत कहते हैं। व्रत के दो भेद हैं –

१. अणुव्रत – पापों के एक देश त्याग को अणुव्रत कहते हैं। अणुव्रती श्रावक होता है।

२. महाव्रत – पापों के सर्व देश त्याग को महाव्रत कहते हैं। महाव्रती साधु होता है।

प्रश्न – व्रत कितने और कौन – कौन से होते हैं।

उत्तर – व्रत बारह होते हैं – पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

१. पाँच अणुव्रत – १. अहिंसाणुव्रत, २. सत्याणुव्रत, ३. अचौर्याणुव्रत, ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत, ५. परिग्रह प्रमाण अणुव्रत।

२. तीन गुणव्रत – १. दिग्व्रत, २. देशव्रत, ३. अनर्थदण्ड त्याग व्रत।

३. चार शिक्षाव्रत – १. सामायिक, २. प्रोषधोपवास, ३. भोगोपभोग परिमाण, ४. अतिथि संविभाग।

प्रश्न – अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापों के एकदेश त्याग को अणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न – अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – संकल्प पूर्वक हिंसा न करना अर्थात् संकल्पी हिंसा का त्याग कर अन्य तीनों प्रकार की हिंसा से भी यथा साध्य बचने का प्रयत्न करते हुए आत्मा को रागादि भावों से बचाना अहिंसाणुव्रत है।

प्रश्न – हिंसा कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर – हिंसा चार प्रकार की होती है। १. संकल्पी हिंसा, २. उद्योगी हिंसा, ३. आरम्भी हिंसा, ४. विरोधी हिंसा।

१. संकल्पी हिंसा – संकल्प (इरादा) पूर्वक किया गया प्राणघात संकल्पी हिंसा है।

२. उद्योगी हिंसा – व्यापार आदि कार्यों में सावधानी वर्तते हुए भी जो हिंसा होती है वह उद्योगी हिंसा है।

३. आरम्भी हिंसा – गृहस्थी के आरम्भ आदि कार्यों में सावधानी वर्तते हुए भी जो हिंसा होती है वह आरम्भी हिंसा है।

४. विरोधी हिंसा – अपने तथा अपने परिवार, धर्मायतन आदि पर किये गये आक्रमण से रक्षा के लिये अनिच्छा पूर्वक की गई हिंसा विरोधी हिंसा है।

प्रश्न – सत्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रमाद के योग से असत् वचन बोलना असत्य है। इसका एकदेश त्याग सत्याणुव्रत है।

प्रश्न – असत्य कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर – असत्य चार प्रकार का होता है। १. सत् का अपलाप । २. असत् का उद्भावन। ३. अन्यथा प्ररूपण। ४. गर्हित वचन।

१. सत् का अपलाप – विद्यमान पदार्थ को अविद्यमान कहना सत् का अपलाप है।

२. असत् का उद्भावन – अविद्यमान पदार्थ को विद्यमान कहना असत् का उद्भावन है।

३. अन्यथा प्ररूपण – कुछ का कुछ कहना अर्थात् वस्तु स्वरूप जैसा है वैसा न कहकर अन्यथा कहना अन्यथा प्ररूपण है। जैसे – हिंसा में धर्म बताना।

४. गर्हित वचन – निंदनीय, कलहकारक, पीड़ाकारक, शास्त्र विरुद्ध, हिंसा पोषक आदि वचनों को गर्हित वचन कहते हैं।

प्रश्न – अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – पानी और मिट्टी के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु बिना दिये नहीं लेना उसे अचौर्याणुव्रत कहते है।

प्रश्न – ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – पूर्णतया स्त्रीसेवन का त्याग ब्रह्मचर्य व्रत है। जो ग्रहस्थ इसे धारण करने में असमर्थ हैं, वे स्वस्त्री में संतोष करते हैं और परस्त्री रमण के भाव को सर्वथा त्याग देते हैं, यह व्रत एकदेश रूप होने से ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है।

प्रश्न – परिग्रह प्रमाण अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने से भिन्न पर पदार्थों में ममत्व बुद्धि होना परिग्रह है। यह अंतरंग और बहिरंग के भेद से दो प्रकार का होता है। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, तथा हास्यादि नौ नो कषाय यह चौदह अंतरंग परिग्रह के भेद हैं। जमीन, मकान, सोना, चांदी, धन, धान्य, दास, दासी, बर्तन, वस्त्र आदि बाह्य परिग्रह के १० भेद हैं। इन परिग्रहों में ग्रहस्थ के मिथ्यात्व नामक परिग्रह का पूर्णरूप से त्याग हो जाता है तथा बाकी अंतरंग परिग्रहों का कषायांश के सद्भाव के कारण एकदेश त्याग होता है। वह बाह्य परिग्रह की सीमा निर्धारित कर लेता है इसे परिग्रह प्रमाण अणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न – गुणव्रत किसे कहते हैं और कितने होते हैं ?

उत्तर – जो अणुव्रतों में गुणित क्रम से वृद्धि करे उसे गुणव्रत कहते हैं।
गुणव्रत के तीन भेद होते हैं।

१. **दिग्व्रत –** सांसारिक विषय कषाय, पाँच पाप, सावद्य योग और सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिये मरण पर्यन्त दसों दिशाओं में आने – जाने की मर्यादा कर लेना दिग्व्रत है।

२. **देशव्रत –** जीवन पर्यन्त के लिए की गई दिग्व्रत की विशाल सीमा को घड़ी, घंटा, दिन, सप्ताह, माह आदि काल की मर्यादा पूर्वक सीमित कर लेना देशव्रत है।

३. **अनर्थदंड त्याग व्रत –** बिना प्रयोजन हिंसादि पापों में प्रवृत्ति करना या उस रूप भाव करना अनर्थदंड है और उसके त्याग को अनर्थदंड त्याग व्रत कहते हैं। उसके पाँच भेद हैं। १. अपध्यान त्याग व्रत, २. पापोपदेश त्याग व्रत, ३. प्रमादचर्या त्याग व्रत, ४. हिंसादान त्याग व्रत, ५. दुःश्रुति त्याग व्रत।

प्रश्न – शिक्षाव्रत किसे कहते हैं और कितने होते हैं ?

उत्तर – जिनसे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा प्राप्त हो उसे शिक्षाव्रत कहते हैं। इसके चार भेद हैं – १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाण ४. अतिथि संविभाग।

प्रश्न – सामायिक शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्पूर्ण पर द्रव्यों में राग – द्वेष के त्याग पूर्वक समता भाव का अवलम्बन करके आत्म भाव की प्राप्ति करना सामायिक है। व्रती श्रावकों द्वारा प्रातः दोपहर, सायं कम से कम अन्तर्मुहूर्त एकान्त स्थान में सामायिक करना सामायिक शिक्षाव्रत है।

प्रश्न – सामायिक की विधि क्या है ?

उत्तर – श्रावकों को तीनों समय उत्कृष्ट छह घड़ी, मध्यम चार घड़ी, जघन्य दो घड़ी तक पाँचों पापों तथा आरम्भ परिग्रह त्याग करके एकान्त स्थान में मन शुद्ध करके पहले पूर्व दिशा में नमस्कार करना अर्थात् अंगों को भूमि से लगाकर नमन करना फिर नौ बार नमस्कार मंत्र का जाप

करना, पश्चात् तीन आवर्त अर्थात् हाथ जोड़ कर प्रदक्षिणा करना और एक शिरोनति अर्थात् हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर नमन करना। इस प्रकार चारों दिशाओं में नमन करके खड्गासन या पद्मासन धारण करके सामायिक करना चाहिये और जब सामायिक पूर्ण हो जाये तब अन्त भी प्रारम्भ की तरह नौ बार नमस्कार मंत्र का जाप तीन – तीन आवर्त व एक – एक शिरोनति करना चाहिये। यही सामायिक करने की स्थूल विधि है। सामायिक करते समय सामायिक काल में श्रावक भी मुनि के समान ही है।

प्रश्न – प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – विषय – कषाय और आहार का त्याग कर आत्म स्वभाव के समीप ठहरना उपवास है। प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को समस्त आरम्भ छोड़कर उपवास करना प्रोषधोपवास है। यह तीन प्रकार से किया जाता है। १. उत्तम – सप्तमी के दिन दोपहर को १२ बजे उपवास धारण किया और नवमी के दिन दोपहर को बारह बजे पारणा किया, इस तरह १६ पहर हुए यह उत्तम उपवास है। २. मध्यम – सप्तमी के दिन संध्या समय ५ बजे उपवास धारण किया और नवमी के दिन प्रातः ७ बजे पारणा किया यह १२ पहर का मध्यम उपवास है। ३. जघन्य – अष्टमी के दिन प्रातः ७ बजे उपवास धारण किया और नवमी के दिन प्रातः ७ बजे पारणा किया यह ८ पहर का जघन्य उपवास है।

प्रश्न – भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रयोजनभूत सीमित परिग्रह के भीतर भी कषाय कम करके भोग और उपभोग का परिमाण घटाना भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत है। भोग – जो पदार्थ एक बार भोगने में आवे उसे भोग कहते हैं। जैसे – भोजन, जल,आदि। उपभोग – एक ही पदार्थ जो बार – बार भोगने में आवे उसे उपभोग कहते हैं। जैसे – वस्त्र, सवारी, पलंग आदि।

प्रश्न – अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – मुनि, व्रती श्रावक, अव्रती श्रावक इन तीन प्रकार के पात्रों को अपने भोजन में से विधिपूर्वक दान देना अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है।

प्रश्न – सामायिक प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – समस्त इष्ट – अनिष्ट पदार्थों में राग – द्वेष भावों के त्यागपूर्वक समता भाव का अवलम्बन करके तीनों काल में सामायिक करते हुए किसी भी प्रकार का उपसर्ग और परीषह आने पर साम्यभाव से नहीं डिगना अर्थात् समतामय परिणामों में रहना सामायिक प्रतिमा है।

सार सिद्धांत – त्रिकाली निज भगवान आत्मा में संलग्न रहना सामायिक प्रतिमा है।

प्रश्न – प्रोषधोपवास प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रोषध का अर्थ है – पर्व और उपवास का अर्थ है – निकट वास करना। पर्व के दिनों में पापों को छोड़कर धर्म में वास करने को प्रोषधोपवास कहते हैं। शाश्वत पर्व अष्टमी और चतुर्दशी के पहले और पश्चात् के दिनों में एकासन पूर्वक अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास रखकर एकान्तवास में रहकर, सम्पूर्ण सावद्ययोग को छोड़कर एवं सर्व इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर धर्म ध्यान में संलग्न रहना प्रोषधोपवास प्रतिमा है।

सार सिद्धांत – रागादि विकारों का परित्याग कर आत्मा में वास करना प्रोषधोपवास है।

प्रश्न – सचित्त त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो श्रावक एकेन्द्रिय जीव सहित हरित वनस्पति को नहीं खाता व कच्चे अप्राशुक पानी को नहीं पीता। सूखी, बनाई हुई, छिन्न–भिन्न की गई व लवणादि से मिली हुई वनस्पति को तथा प्राशुक गर्म जल को ही ग्रहण करता है वह सचित्त त्याग प्रतिमाधारी है।

सार सिद्धांत – चित्त को चैतन्य स्वभाव में लगाना, अंतर में निरंतर सावधान रहना ही सचित्त (त्याग) प्रतिमा है।

प्रश्न – अनुराग भक्ति प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – परम भक्ति व परम प्रेम जिसका निज आत्मा के चिंतवन में हो वही अनुराग भक्ति प्रतिमाधारी है।

सार सिद्धांत – आत्मा में परमात्मा को देखना ही अनुराग भक्ति प्रतिमा है।

प्रश्न – ब्रह्मचर्य प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो श्रावक मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से संपूर्ण स्त्रियों को कभी नहीं भोगता वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी है।

सार सिद्धांत – चैतन्य ब्रह्म की अनुभूति सहित ब्रह्म स्वभाव के आनंद का भोग करना ही ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

प्रश्न – आरंभ त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो श्रावक प्राणीघात के कारणभूत कार्य, कृषि, व्यापार आदि आरंभ से विरक्त होता है वह आरंभ त्याग प्रतिमाधारी है।

सार सिद्धांत – शुद्धात्म स्वरूप के अनुभव में निरंतर उद्यमी रहना आरंभ त्याग प्रतिमा है।

प्रश्न – परिग्रह त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो बाहरी क्षेत्र, मकान आदि दस प्रकार के परिग्रह की ममता को छोड़कर कुछ वस्त्र और बर्तन रखकर शेष परिग्रह को त्याग कर विरक्त हो जाते हैं और परम श्रद्धा से आत्मा के ध्यान में लीन रहते हैं वह परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी हैं।

सार सिद्धांत – आत्मा के अनंतगुणों में रत रहना परिग्रह त्याग प्रतिमा है।

प्रश्न – अनुमति त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो श्रावक किसी को लौकिक कार्यों की सम्मति नहीं देता, केवल धर्मोपदेश देता है तथा स्वयं आत्मिक भावों में रत रहता है वह अनुमति त्याग प्रतिमाधारी है।

सार सिद्धांत – परभावों से विरक्ति और स्वभाव में अनुरक्ति अनुमति त्याग प्रतिमा है।

प्रश्न – उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो अपने निमित्त से बनाये हुए आहार को ग्रहण नहीं करता है। जो आहार गृहस्थों ने अपने कुटुम्ब के लिये बनाया हो उसी में से भिक्षा द्वारा मिलने पर लेता है वह उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी श्रावक है। ग्यारहवीं प्रतिमा में क्षुल्लक – ऐलक ऐसे उत्कृष्ट श्रावक दो भेद रूप होते हैं।

सार सिद्धांत – रागादि भावों को समूल नष्ट करके वीतराग भावों का वृद्धिंगत होना ही उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) ....गुणस्थानवर्ती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ या श्रेणियाँ होती हैं।

(ख) ये प्रतिमाएँ संसार के...............का क्षय करने वाली और..............झलकाने वाली हैं।

(ग) इन प्रतिमाओं में क्रमशः...............बढ़ता जाता है।

(घ) निज शुद्ध चैतन्य प्रतिमा का दर्शन ही..............प्रतिमा है।

प्रश्न २ – सही विकल्प चुनिये।

(१) पापों के एकदेश त्याग को कहते हैं।

(अ) अणुव्रत (ब) शिक्षाव्रत (स) शुद्धव्रत (द) महाव्रत।

(२) गृहस्थी के कार्यों में न चाहते हुए भी होने वाली हिंसा को कहते हैं।

(अ) संकल्पी हिंसा (ब) उद्योगी हिंसा (स) आरंभी हिंसा (द) अहिंसा।

(३) अपने से भिन्न पर पदार्थों में ममत्व बुद्धि को कहते हैं।

(अ) क्रोध (ब) हिंसा (स) परिग्रह (द) चोरी।

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये –

सत् अपलाप – हिंसा में धर्म बताना

असत् का उद्भावन – निंदनीय, कलहकारक वचन।

अन्यथा प्ररुपण – अविद्यमान को विद्यमान कहना।

गर्हित वचन – विधमान को अविद्यमान कहना।

प्रश्न ४ – लघु उत्तरीय प्रश्न –

(क) सामायिक प्रतिमा क्या है ? बताइये। (उत्तर स्वयं लिखें)

(ख) अनुराग भक्ति प्रतिमा किसे कहते हैं ? (उत्तर स्वयं लिखें)

प्रश्न ५ – अंतर बताइये –

(क) ब्रह्मचर्य प्रतिमा और ब्रह्मचर्याणुव्रत

(ख) अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत

(ग) सामायिक शिक्षाव्रत और सामायिक प्रतिमा।

प्रश्न ६ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) ग्यारह प्रतिमाओं के नाम लिखकर किन्हीं दो प्रतिमाओं का स्वरूप समझाइये। (उत्तर स्वयं लिखें)

(ख) व्रत प्रतिमा का स्वरूप समझाइये। (उत्तर स्वयं लिखें)

(ग) प्रतिमा और व्रत में क्या अंतर है ? विस्तार से समझाइये। (उत्तर स्वयं लिखें)

पाठ – ३

मुक्ति श्री फूलना

चलि चलहु न हो मुक्ति सिरी, तुम्ह न्यान सहाए।
कललंकृत हो कम्म न उपजै, ममल सुभाए॥
जिन जिनवर हो उत्तो स्वामी परम सुभाए।
मुनि मुनहु न हो भवियनगन तुम्ह अप्प सहाए॥ १॥

अर्थ – [हे भव्य जीवो !] **(चलि चलहु न हो मुक्ति सिरी)** चलो, मुक्ति श्री चलो **(तुम्ह)** तुम्हारे **(न्यान सहाए)** ज्ञान स्वभाव में ही मुक्ति है **(ममल सुभाए)** ममल स्वभाव में रहने से **(कललंकृत हो)** शरीर को प्राप्त कराने वाले **(कम्म)** कर्म **(न उपजै)** उत्पन्न नहीं होते **(जिनवर हो उत्तो स्वामी)** जिनवर स्वामी ने कहा है कि तुम **(परम)** उत्कृष्ट **(जिन)** वीतराग **(सुभाए)** स्वभाव के धारी हो **(भवियनगन)** हे भव्यजनों ! **(तुम्ह)** तुमने अभी तक **(अप्प सहाए)** अपने आत्म स्वभाव का **(मुनि मुनहु न हो)** चिंतन मनन नहीं किया है [अब आत्म स्वरूप का चिंतन–मनन करो और मुक्ति श्री चलो]

तुम्हरी अषय रमन रै नारी, हो न्यानी भव भंवर विनट्ठी।
मन हरषिय लो जिन तारन को, जब सब मुक्ति पहुंते हो न्यानी॥ २॥

अर्थ – (न्यानी) हे ज्ञानी ! **(अषय रमन)** अक्षय स्वरूप में रमण करने रूप **(तुम्हरी)** तुम्हारी **(रै नारी हो)** शुद्धोपयोगमयी परिणति **(भव भंवर)** संसार रूपी भंवर को **(विनट्ठी)** विनष्ट करने वाली है **(मन हरषिय लो जिन तारन को)** जिन तारण [स्वामी] का मन तब हर्षित होगा **(जब सब मुक्ति पहुंते हो न्यानी)** जब सब जीव ज्ञानी होकर मुक्ति श्री को प्राप्त करेंगे।

सो मुनियो हो उत्तउ जिनु हो ममल सुभाए।
धरि धरियो हो अर्थ तिअर्थह न्यान सहाए॥
कलि कलियो हो ममल दिष्टि यहु कमल सुभाए।
रै रमियो हो पंच दिप्ति यहु आद सहाए॥ ३॥

अर्थ – (जिनु उत्तउ हो) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि तुम **(ममल सुभाए)** ममल स्वभावी हो, **(सो मुनियो हो)** इसी स्वभाव का मनन करो **(न्यान सहाए)** ज्ञान स्वभाव के [आश्रय से] **(अर्थ तिअर्थह)** प्रयोजनीय रत्नत्रय **को (धरि धरियो हो)** धारण करो [अपनी आत्मा का] **(यहु कमल सुभाए)** यह ज्ञायक स्वभाव ही **(ममल)** ममल स्वभाव है **(दिष्टि)** इसी पर दृष्टि रखने से [आत्म स्वभाव की] **(कलि कलियो हो)** कली – कली खिल जाती है। [हे आत्मन् ! कमल की तरह सदैव ज्ञायक रहो] **(यहु आद सहाए)** यह आत्म स्वभाव **(पंच दिप्ति)** पंचम दीप्ति [केवलज्ञान] स्वरूप है **(रै रमियो हो)** इसी में रमण करो।

उदि उदियो हो इस्ट संजोगे परम सुभाए।
दिपि दिपियो हो पर्म ज्योति यहु अप्प सहाए॥
लहि लहियो हो अंगदि अंगह सुद्ध सुभाए।
मैं मइयो हो अंग सर्वंगह ममल सुभाए॥ ४॥

अर्थ – (इस्ट संजोगे) अपने इष्ट का संयोग करके **(परम सुभाए)** परम स्वभाव का **(उदि उदियो**

हो) उदय करो **(यहु)** यह **(दिपि दिपियो हो)** दैदीप्यमान हो रहा है **(पर्म ज्योति)** यही परम ज्योति स्वरूप **(अप्प सहाए)** आत्म स्वभाव है **(लहि लहियो हो)** इसी को ग्रहण करो **(अंगदि अंगह)** यह सर्वांग **(सुद्ध सुभाए)** शुद्ध स्वभावी है [ज्ञानी] **(अंग सर्वंगह)** प्रदेश – प्रदेश में सर्वांग **(ममल सुभाए)** ममल स्वभाव में **(मैं मइयो हो)** तन्मय रहता है ।

रहि रहियो हो सुष्यम सहियो ममल सुभाए ।
गहि गहियो हो नन्तानन्त सु गगन सहाए ।।
उगि उगियो हो ऊर्धह सुद्धह मुक्ति सुभाए ।
मल रहियो हो ममल बुद्धि यह षिपक सहाए ।। ५ ।।

अर्थ – [अपने] **(सुष्यम)** सूक्ष्म अर्थात् स्वानुभव गम्य **(सहियो ममल सुभाए)** ममल स्वभाव सहित **(रहि रहियो हो)** रहो **(गहि गहियो हो)** इसी को ग्रहण करो **(सु गगन सहाए)** स्व स्वरूप आकाश के समान निर्मल **(नन्तानन्त)** अनंतानंत है **(ऊर्धह)** श्रेष्ठ है [ऐसे महिमामय] **(सुद्धह मुक्ति सुभाए)** शुद्ध मुक्ति स्वभाव का **(उगि उगियो हो)** उदय हो रहा है **(यह)** यह **(मल रहियो हो)** मल रहित **(षिपक सहाए)** क्षायिक स्वभाव है **(ममल बुद्धि)** जो ममल ज्ञान स्वरूप है ।

उव उवनो हो, दिस्टि देई सो देव सुभाए ।
सहकारे हो, देइ अनन्तु जु अन्मोय सुभाए ।।
दर दरसिउ हो, देइ सु दर्सन न्यान सहाए ।
औकासह हो, उपजै न्यानु सु रयन सुभाए ।। ६ ।।

अर्थ – [हे आत्मन् ! अपना ऊंकारमयी] **(देव सुभाए)** देव स्वभाव **(उव उवनो हो)** उदित हुआ है **(सो दिस्टि देई)** इसी पर दृष्टि रखो **(सहकारे हो)** इसी का सहकार करो **(अन्मोय सुभाए)** स्वभाव की अनुमोदना **(देइ अनन्तु जु)** अनंत चतुष्टय को देने वाली है [इसलिये] **(दर्सन न्यान)** दर्शन ज्ञानमयी **(सु देइ सहाए)** स्वयं के देव स्वभाव का **(दर दरसिउ हो)** दर्शन करो **(औकासह हो)** इसी में ठहरो **(सु रयन सुभाए)** स्वयं के रत्नत्रयमयी स्वभाव में रहने से **(उपजै न्यानु)** पूर्ण ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न हो जावेगा ।

गुरु गुरवति हो, लोयालोय सु ममल सुभाए ।
गुरु गुपित सु हो, दिट्ठउ दीन्हउ चरन सहाए ।।
चरि चरियो हो, ममल दिस्टि यहु अप्प सुभाए ।
तव यरियो हो, सहकारे जिनु सहज सुभाए ।। ७ ।।

अर्थ – [हे आत्मन् !] **(गुरु गुरवति हो)** सच्चे ज्ञानी वीतरागी सद्गुरु ने बतलाया है कि **(सु ममल सुभाए)** अपना ममल स्वभाव **(लोयालोय)** लोकालोक को जानने वाला है **(गुरु गुपित सु हो)** अंतरात्मा गुप्त गुरु है [जिसके जाग्रत होने पर] **(चरन सहाए)** चारित्र स्वभाव [जो] **(दिट्ठउ दीन्हउ)** दृष्टि में आया है **(यहु अप्प सुभाए)** इसी आत्म स्वभाव में **(ममल दिस्टि)** ममल दृष्टि पूर्वक **(चरि चरियो हो)** आचरण करो **(सहज जिनु सुभाए)** सहज जिन स्वभाव का **(सहकारे)** सहकार करो अर्थात् लीन रहो **(तव यरियो हो)** यही तपश्चरण [तप काआचरण] है ।

उप उपजै हो, कम्मु अनन्तु अनिस्ट सुभाए ।
षिपि षिपियो हो, न्यान दिस्टि यहु ममल सहाए ॥
नंद नंदियो हो, चिदानन्द जिनु कमल सुभाए ।
आनन्दिउ हो, परमनन्द सु मुक्ति सहाए ॥ ८ ॥

अर्थ – [हे आत्मन् !] **(अनिस्ट सुभाए)** रागादि अनिष्ट विभाव परिणामों से **(कम्मु अनन्तु)** अनन्त कर्म **(उप उपजै हो)** आस्रवित होते हैं **(यहु)** यह [कर्म] **(ममल)** ममल **(न्यान)** ज्ञान **(सहाए)** स्वभाव की **(दिस्टि)** दृष्टि से **(षिपि षिपियो हो)** क्षय हो जाते हैं **(नंद नंदियो हो चिदानन्द)** नंद आनंद चिदानंदमयी **(जिनु)** अंतरात्मा **(कमल सुभाए)** कमल अर्थात् ज्ञायक स्वभाव है [इसी के आश्रय से] **(आनन्दिउ हो परमनन्द)** आनंद परमानंद में लीन रहो **(सु मुक्ति सहाए)** यही मुक्ति स्वभाव है।

यहु जानहु हो, भय विनासु सु भव्व सुभाए ।
पर परजय हो, दिस्टि न देइ सु ममल सुभाए ॥
अन्मोयह हो, मिलियो जोति सु रयन सहाए ।
षिपि कम्मु जु हो, मुक्ति पहुंते ममल सहाए ॥ ९ ॥

अर्थ – (भव्व) हे भव्य ! **(यहु जानहु हो)** यह जान लो कि **(सु सुभाए)** स्व स्वभाव के आश्रय से ही **(भय विनासु)** भयों का विनाश होता है [जो] **(पर परजय हो)** पर पर्यायों पर **(दिस्टि न देइ)** दृष्टि नहीं देता [यही] **(सु ममल सुभाए)** अपना ममल स्वभाव है **(अन्मोयह हो)** इसी की अनुमोदना करो [और] **(जोति)** ज्योतिर्मय **(सु रयन सहाए)** अपने रत्न स्वभाव में **(मिलियो)** लीन हो जाओ **(ममल सहाए)** ममल स्वभाव में लीनता [रूप पुरुषार्थ] से **(षिपि कम्मु जु हो)** कर्म क्षय हो जायेंगे [और] **(मुक्ति पहुंते)** मुक्ति की प्राप्ति होगी।

दिपि दिपियो हो, देउ लंक्रित सो अन्मोय सहाए ।
भय षिपनिक हो, मिलियो रमियो षिपक सुभाए ॥
आनन्दिउ हो, परमानन्द यहु परम सुभाए ।
अन्मोयह हो, मिलियो जोति सु सिद्ध सुभाए ॥ १० ॥

अर्थ – [परिपूर्ण] **(दिपि दिपियो हो)** दैदीप्यमान प्रभा से **(लंक्रित)** अलंकृत **(देउ)** देव **(सहाए)** स्वभाव है **(सो अन्मोय सहाए)** वही अनुमोदना करने योग्य है [ऐसे] **(भय षिपनिक हो)** भयों को क्षय करने वाले **(षिपक सुभाए)** क्षायिक स्वभाव में **(रमियो)** रमण करो **(मिलियो)** लीन रहो **(आनन्दिउ हो)** आनन्द **(परमानन्द)** परमानंद मयी **(यहु)** यही **(परम सुभाए)** परम स्वभाव **(जोति)** ज्योतिर्मयी **(सु सिद्ध सुभाए)** अपना सिद्ध स्वभाव है **(अन्मोयह हो)** इसकी अनुमोदना करो **(मिलियो)** इसी में लीन रहो।

मुक्ति श्री फूलना का सारांश

मुक्ति श्री फूलना, आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री भय षिपनिक ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ की दूसरी फूलना है। इस फूलना में स्वभाव में रमण कर मुक्ति श्री के अतीन्द्रिय आनंद रस में निमग्न होने के लिये प्रेरणा प्रदान की गई है। मुक्ति श्री फूलना का अर्थ है मुक्ति श्री का अमृत रसास्वादन कराने वाली फूलना।

आचार्य देव कहते हैं कि हे भव्यात्मनो ! मुक्ति श्री के आनंद में निमग्न रहो। अपने ज्ञान के सहारे अपने ज्ञान स्वभाव में लीनता का पुरुषार्थ ही मुक्ति श्री का निराकुल सुख प्रदान करने वाला है। अपने स्वभाव में रहने से संसार के परिभ्रमण में निमित्तभूत कर्म उत्पन्न नहीं होते। अपने चैतन्य स्वरूप परमात्म सत्ता को ग्रहण करो। इसी का चिंतन – मनन करो। स्वभाव में लीनता से संसार का परिभ्रमण छूट जाता है।

परोन्मुखी दृष्टि संसार की कारण है। आत्मोन्मुखी दृष्टि मोक्षमार्ग में साधन है। मन में जो अनेक प्रकार की मान्यताओं का शैल शिखर है यही बंधन है, संसार है। संयोगों में रहते हुए ज्ञानी अज्ञान जनित मान्यताओं के बंधनों को ज्ञान के बल से मिटाता है तत्प्रमाण वह मुक्ति श्री के अमृत रस का पात्र होता है।

सच्चे गुरु के हृदय में करुणा का सागर लहराता रहता है। इसलिये आचार्य श्री तारण स्वामी जी ने कहा है कि सभी जीव आत्मज्ञान को उपलब्ध हों और मुक्ति श्री को प्राप्त करें मुझे अत्यंत हर्ष होगा। ऐसी करुणा तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति के बंध का कारण होती है।

अतीन्द्रिय आत्म स्वभाव को धारण करना, इसी का ध्यान, ग्रहण, सहकार, दर्शन, आचरण यही सच्चा पुरुषार्थ है। अंतरंग में स्वानुभूति हेतु आचार्य प्रेरणा प्रदान करते हैं कि स्वभाव उदित हो रहा है, प्रकाशमान अनुभव में वर्त रहा है यही नंद, आनंद, चिदानंदमयी परमात्म स्वरूप है।

रत्नत्रयमयी स्वरूप को भूलकर पर्याय से युक्त होने पर अनिष्टकारी अनंत कर्मों का आस्रव बंध होता है। ममल ज्ञान स्वभाव में रहने से कर्म क्षय हो जाते हैं। पर पर्याय पर दृष्टि नहीं देना ही ममल स्वभाव है।

जो भव्य जीव रत्न के समान रत्नत्रयमयी स्वरूप का आश्रय लेते हैं वे अपने चैतन्य ज्योति स्वरूप में लीन हो जाते हैं यही मुक्ति श्री है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

१. ....स्वभाव में रहने से शरीर प्राप्त कराने वाले कर्म उत्पन्न नहीं होते।

२. शुद्धोपयोगमयी.............संसार रूपी भँवर को विनष्ट करने वाली है।

३. स्वयं के.............स्वभाव में रहने से पूर्ण ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

४. अपना ममल स्वभाव.............को जानने वाला है।

प्रश्न २ – सही जोड़ी बनाइये – १. चलि – उदियो हो इष्ट संजोगे। २. उदि – रहियो हो सुष्यम सहियो। ३. रहि – उपजै हो कम्मु अनन्तु अनिष्ट। ४. उप – चलहु न हो मुक्ति सिरी।

प्रश्न ३ – अति लघुउत्तरीय प्रश्न – (क) कललंकृत हो कम्म न उपजै का क्या अर्थ है ?

उत्तर – ममल स्वभाव में रहने से शरीर प्राप्त कराने वाले कर्म नहीं उपजते यही इस पंक्ति का अर्थ है।

(ख) तपश्रण क्या है ?

उत्तर – सहज जिन स्वभाव का सहकार करना अर्थात् लीन रहना ही तपश्चरण है।

प्रश्न ४ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न – मुक्ति श्री फूलना का कोई रुचिकर छंद लिखकर फूलना का सारांश लिखिये।

श्री कमलबत्तीसी जी

संक्षिप्त परिचय

स्वरूपे चरणं चारित्रं – स्वरूप में आचरण करना सम्यक्चारित्र है। जो ज्ञानी पुरुष संसार के कारणों को दूर करने के लिये उद्यमी है वे कर्मों को ग्रहण करने में निमित्तभूत क्रियाओं का त्याग करते है यही सम्यक्चारित्र कहलाता है। वस्तुत: चारित्र ही धर्म है तथा मोह और क्षोभ अर्थात् राग–द्वेष से रहित वीतराग समभाव रूप आत्मा का ही परिणाम है।

चारित्र यद्यपि एक प्रकार का है परन्तु उसमें जीव के अंतरंग भाव व बाह्य त्याग दोनों बातें एक साथ होने के कारण अथवा पूर्व भूमिका और ऊंची भूमिकाओं में विकल्प व निर्विकल्पता की प्रधानता होने के कारण उसका निरूपण दो प्रकार से किया गया है – निश्चय चारित्र और व्यवहार चारित्र। इन दोनों प्रकार के चारित्र में जीव की अंतरंग विरागता साम्यता निश्चय चारित्र है और बाह्य वस्तुओं के त्याग रूप व्रत, बाह्य क्रियाओं में यत्नाचार रूप समिति तथा मन, वचन, काय को नियंत्रित करने रूप गुप्ति का पालन व्यवहार चारित्र है।

व्यवहार चारित्र को सराग चारित्र और निश्चय चारित्र को वीतराग चारित्र भी कहते हैं। निचली भूमिकाओं में व्यवहार चारित्र की प्रधानता रहती है और ऊपर – ऊपर ध्यानस्थ भूमिकाओं में निश्चय चारित्र की प्रधानता रहती है।

मोक्ष प्राप्ति में कारणभूत साक्षात् द्वार के समान अतिशय महिमामय सम्यक्चारित्र का वर्णन आचार्य प्रवर श्री मद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने श्री कमल बत्तीसी जी ग्रंथ में किया है। जिन वचनों के श्रद्धान पूर्वक कमल भाव अर्थात् ज्ञायक भाव को प्रगट करना और वीतराग चारित्र को धारण करना मुक्ति को प्राप्त करने का उपाय है।

सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग में प्रधान है। इसकी आराधना करने से दर्शन, ज्ञान और तप यह तीनों आराधना हो जाती हैं।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय आत्मा ही निश्चय से एक मोक्ष का मार्ग है। जो भव्य जीव अपने को आत्म स्वभाव में स्थित करता है, आत्म स्वभाव का ध्यान कर उसी का निरंतर अनुभव करता है वह निश्चित ही नित्य समयसार सिद्ध स्वरूप का अनुभव करता है। ऐसे भव्य जीव समयसार में स्थित होकर निजात्मा से भिन्न अन्य आत्माओं, पुद्गलों को तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन चार अमूर्ती द्रव्यों को तथा उनके भावों को रंच मात्र भी स्पर्श नहीं करते। वास्तव में यह आत्मानुभव ही मोक्षमार्ग है और योगी को यही निरन्तर करना चाहिये।

जहाँ शुद्धात्मा का श्रद्धान है, ज्ञान, ध्यान है अर्थात् जहाँ शुद्धात्मा का अनुभव है, उपयोग पंचेन्द्रिय व मन के विषयों से हटकर एक निर्मल आत्मा में ही तन्मय है, वहीं यथार्थ मोक्षमार्ग है।

गाथा – १

मंगलाचरण– परम देव को नमस्कार

तत्वं च परम तत्वं, परमप्पा परम भाव दरसीये ।
परम जिनं परमिस्टी, नमामिहं परम देव देवस्या ॥

अन्वयार्थ – (तत्वं) तत्त्व **(च)** और **(परम तत्वं)** परम तत्त्व **(परमप्पा)** परमात्म स्वरूप है [जो] **(परम भाव)** परम पारिणामिक भाव में **(दरसीये)** दर्शित होता है, दिखाई देता है, अनुभव में आता है [यही] **(परम जिनं)** परम जिन स्वभाव **(परमिस्टी)** परम इष्ट,उपादेय है [ऐसे] **(देवस्या)** देवों के **(परम देव)** परम देव को **(नमामिहं)** मैं नमस्कार करता हूं।

अर्थ – तत्त्व और परम तत्त्व परमात्म स्वरूप, जो परम पारिणामिक भाव में स्वानुभव पूर्वक दर्शित होता है, अनुभव में आता है, यही परमात्म स्वरूप परम जिन स्वभाव, परम इष्ट उपादेय है, ऐसे देवों के परम देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न १ – तत्त्व और परम तत्त्व में क्या अंतर है ?

उत्तर – चित् सत्ता रूप आत्म स्वभाव जो प्रत्येक जीव का स्वरूप है वह तत्त्व है। जिन जीवों ने अपने तत्त्व स्वरूप में लीन होकर अरिहंत सिद्ध पद प्रगट कर लिया है वही परम तत्त्व है।

प्रश्न २ – तत्त्व और परम तत्त्व की क्या महिमा है ?

उत्तर – तत्त्व और परमतत्त्व निज स्वरूप ही है। ऐसे शुद्ध स्वरूप में श्रद्धान ज्ञान पूर्वक लीनता से परम पारिणामिक भाव का अनुभव होता है और परमपद अर्थात् सिद्धत्व की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ३ – देवों का देव परम देव कौन है ?

उत्तर – अरिहंत और सिद्ध परमात्मा देव हैं, और उन्होंने निज शुद्धात्मा के आश्रय से देवत्व पद को प्राप्त किया है इसलिये देवों का देव परम देव निज शुद्धात्मा है।

गाथा – २

सत्श्रद्धान और सरल स्वभाव की महिमा

जिन वयनं सद्दहनं, कमलसिरि कमल भाव उववन्नं ।
अर्जिक भाव सउत्तं, ईर्ज सभाव मुक्ति गमनं च ॥

अन्वयार्थ – (कमलसिरि) हे कमल श्री ! **(जिन वयनं)** जिनेन्द्र परमात्मा के वचनों पर **(सद्दहनं)** श्रद्धान करके **(कमल भाव)** कमल भाव अर्थात् ज्ञायक भाव को **(उववन्नं)** उत्पन्न करो, प्रगट करो **(च)** और **(अर्जिक)** आर्यिका पद के **(भाव सउत्तं)** भावों से संयुक्त होकर, भावों को जगाकर **(ईर्ज सभाव)** सरल स्वभाव में रहो **(मुक्ति गमनं)** यही मुक्ति गमन का उपाय है।

अर्थ – हे कमल श्री ! जिनेन्द्र परमात्मा के वचनों पर श्रद्धान करके जल में रहते हुए भी अलिप्त, कमल के समान निर्विकारी ज्ञायक भाव को प्रगट करो। आर्यिका पद स्वयं के रमण के भाव जाग्रत करके सरल स्वभाव में रहो, यही मुक्ति गमन का उपाय है।

प्रश्न १ – इस गाथा में कमल श्री को संबोधित किया गया है, यह कमल श्री कौन थीं ?

उत्तर – कमल श्री भद्र परिणामों से युक्त ग्रहस्थ श्राविका थीं। इनकी आत्म कल्याण के मार्ग में चलने की उत्कृष्ट भावना थी। इनके ही निमित्त से श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने यह कमल बत्तीसी ग्रंथ लिखा। जब आचार्य श्री गुरू तारण स्वामी जी ने श्री संघ की स्थापना की तब उनके संघ में ७ निर्ग्रन्थ मुनिराजों सहित ३६ आर्यिकायें भी थीं। कमल श्री श्राविका आगे चलकर कमल श्री आर्यिका हुई और प्रमुख गणिनी पद को सुशोभित किया।

प्रश्न २ – आचार्य श्री मद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने कमल श्री को किस प्रकार संबोधित किया ?

उत्तर – सद्गुरू तारण स्वामी ने कहा कि हे कमल श्री ! तुमने वस्तु स्वरूप जान लिया है, अत: जिनेन्द्र परमात्मा के वचनों पर दृढ़ श्रद्धान करो और स्वयं परमात्मा बनो। अपना कमल भाव प्रगट करो, आर्यिका पद धारण कर सरल सहज स्वभाव में लीन रहो, यही मुक्ति का मार्ग है।

प्रश्न ३ – साधु पद और वीतरागता कब प्रगट होती है ?

उत्तर – सर्वोत्कृष्ट महिमा का भंडार चैतन्य देव अनादि अनन्त परम पारिणामिक भाव में स्थित है इसलिये– द्रव्य दृष्टि पूर्वक एक ज्ञायक स्वभाव को लक्ष्य में लेकर ध्रुव स्वभाव का आश्रय लेने से सच्चा साधु पद और वीतरागता प्रगट होती है। सहज सरल परिणति और ज्ञायक भाव साधु जीवन की प्रामाणिकता है।

गाथा – ३

रत्न के समान रत्नत्रय स्वरूप

अन्मोयं न्यान सहावं, रयनं रयन सरूव विमल न्यानस्य ।
ममलं ममल सहावं, न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्तं ।।

अन्वयार्थ – (न्यान सहावं) ज्ञान स्वभाव की **(अन्मोयं)** अनुमोदना करो **(रयनं)** रत्न के समान **(रयन)** रत्नत्रय मयी **(विमल न्यानस्य)** विमल ज्ञान का धारी **(ममलं)** ममल **(सरूव)** स्वरूप है [इसी] **(न्यानं)** ज्ञान मयी **(ममल सहावं)** ममल स्वभाव में **(अन्मोय)** लीन रहो [और] **(सिद्धि संपत्तं)** सिद्धि की संपत्ति प्राप्त करो।

अर्थ – हे आत्मन् ! ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना करो, रत्न के समान रत्नत्रयमयी विमल ज्ञान का धारी अपना ममल आत्म स्वरूप है। इसी ज्ञानमयी ममल स्वभाव में लीन रहो और सिद्धि की सम्पत्ति को प्राप्त करो।

प्रश्न १ – इस गाथा का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – इस गाथा में आचार्य कहते हैं कि हे आत्मन् ! अपने चैतन्य स्वभाव में लीन रहो। रत्न के समान उज्ज्वल दैदीप्यमान रत्नत्रयमयी अपना विमल ज्ञान स्वरूप है। इसी निर्विकारी ममल स्वभाव की निर्विकल्प अनुभूति से मुक्ति की प्राप्ति होती है इसलिये अपने शुद्ध स्वभाव में लीन होकर मुक्ति की परम सम्पदा को प्राप्त करो, यही परम पुरुषार्थ है।

प्रश्न २ – सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग कैसे है ?

उत्तर – पर द्रव्यों से भिन्न ज्ञायक स्वभाव के लक्ष्य से बारम्बार भेद ज्ञान का अभ्यास करने से विकल्प टूट जाते हैं। उपयोग के गहराई में जाने से आत्मा के दर्शन होते हैं। उपयोग का ध्रुव तत्त्व के अवलम्बन द्वारा अंतर में स्थिर होना सम्यक्चारित्र अर्थात् मोक्ष का मार्ग है।

प्रश्न ३ – ममल स्वभाव का अर्थ क्या है ?

उत्तर – ममल का अर्थ है त्रिकाली शुद्ध ध्रुव स्वभाव, जिसमें अतीत में कर्म मल नहीं थे, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में कर्म मल नहीं होंगे, ऐसे परम शुद्ध स्वभाव को ममल कहते हैं।

गाथा – ४

मिथ्या भावों को जीतने का फल

जिनयति मिथ्याभावं, अन्रित असत्य पर्जाव गलियं च ।
गलियं कुन्यान सुभावं, विलयं कंमान तिविह जोएन ॥

अन्वयार्थ – (मिथ्याभावं) तीन प्रकार के मिथ्या भावों को **(जिनयति)** जो जीतता है [उसकी] **(अन्रित)** क्षणभंगुर **(असत्य)** असत्य **(पर्जाव)** पर्याय **(गलियं)** गल जाती है **(कुन्यान सुभावं)** कुज्ञान भाव [भी] **(गलियं)** गल जाता है **(च)** और **(तिविह)** तीन प्रकार के **(जोएन)** योग की एकता से **(कंमान)** कर्म **(विलयं)** विला जाते हैं, क्षय हो जाते हैं।

अर्थ – जो भव्य जीव तीन प्रकार के मिथ्यात्व भाव पर विजय प्राप्त करता है, उसकी कर्मोदय जनित विभाव रूप क्षणभंगुर असत् पर्याय गल जाती है। कुज्ञान भाव भी गल जाता है और तीन प्रकार के योग की अर्थात् मन वचन काय की एकाग्रता पूर्वक शुद्धात्म स्वभाव में लीन होने से कर्मों के समूह क्षय हो जाते हैं, विलय हो जाते हैं।

प्रश्न १ – असत् पर्याय, कुज्ञान और कर्म कैसे गलते विलाते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञानी तीनों योग की एकाग्रता कर निज स्वभाव में लीन होते हैं वही तीन प्रकार के मिथ्यात्व भाव को जीतते हैं और क्षणभंगुर भावों में भयभीत नहीं होते, उनकी विभाव रूप समस्त असत् पर्यायें गल जाती हैं। कुज्ञान भाव भी गल जाता है और कर्मों के समूह के समूह विला जाते हैं।

प्रश्न २ – मिथ्या भाव क्या हैं ?

उत्तर – यह शरीर मैं हूं ,यह शरीरादि मेरे हैं, मैं इन सबका कर्ता हूं यही मिथ्याभाव हैं जो अज्ञान दशा में होते हैं।

प्रश्न ३ – मिथ्याभावों को कैसे जीतें ?

उत्तर – ज्ञान मार्ग में अपना आत्मबल, ज्ञानबल सहकारी होता है। भेदज्ञान – तत्त्व निर्णय पूर्वक वस्तु स्वरूप का सत्श्रद्धान करना, पर्यायी भावों में भयभीत न होना और उन्हें अच्छा – बुरा नहीं मानना, ज्ञान भाव में स्थिर रहना मिथ्या भावों को जीतने का उपाय है।

गाथा – ५

पर्याय गलने और कर्म क्षय होने का उपाय

नंद अनंदं रूवं, चेयन आनंद पर्जाव गलियं च ।
न्यानेन न्यान अन्मोयं, अन्मोयं न्यान कम्म षिपनं च ॥

अन्वयार्थ – (रूवं) अपना सत्स्वरूप **(नंद)** नन्द **(अनंदं)** आनन्द मयी है **(चेयन)** चैतन्य स्वरूप के **(आनंद)** आनंद में रहने से **(पर्जाव)** पर्याय **(गलियं)** गल जाती है **(च)** और **(न्यानेन)** ज्ञान के बल से **(न्यान)** ज्ञान स्वभाव की **(अन्मोयं)** अनुमोदना, चिंतन मनन करने से [तथा] **(न्यान)** ज्ञान स्वभाव में **(अन्मोयं)** लीन रहने से **(कम्म)** कर्म **(षिपनं च)** क्षय हो जाते हैं।

अर्थ –अपना सत् स्वरूप नंद आनंदमयी है, चैतन्य स्वरूप के आनंद में आनंदित रहने से पर्याय गल जाती है और ज्ञान के बल से ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना चिंतन – मनन करने से तथा उपयोग के स्वभाव में लीन रहने से कर्म क्षय हो जाते हैं। ज्ञान भाव में रहने से पर्याय गलती है और ज्ञान स्वभाव में रहने से कर्म क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न १ – पर्यायी भावों से जीव को भयभीतपना क्यों रहता है ?

उत्तर – जीव ने अपनी सत्ता शक्ति को नहीं पहिचाना, अपना स्वाभिमान, बहुमान जाग्रत नहीं किया, इसलिये कर्मोदय जनित पर्यायी भावों से भयभीतपना रहता है।

प्रश्न २ – किस जीव की विभाव पर्याय निर्जरित हो जाती है ?

उत्तर – पर्याय एक समय की होती है, ज्ञानी उससे दृष्टि हटाकर अपने स्वभाव में रहते हैं उनकी विभाव पर्याय निर्जरित (क्षय) हो जाती है।

प्रश्न ३ – इस गाथा में रहस्य पूर्ण बात क्या है ?

उत्तर – यहाँ सद्गुरू ने दो विशेष सूत्र दिये हैं–

(१) अपने चैतन्य स्वभाव के आनंद में रहने से पर्याय गल जाती हैं।

(२) अपने ज्ञान स्वभाव में लीन होने पर कर्म क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न ४ – पर्याय गलने और कर्म क्षय होने में क्या अंतर है ?

उत्तर – ज्ञानी साधक स्वभाव के आश्रय से अपना ज्ञान बल जाग्रत रखता है, ज्ञायक रहता है तथा पर्यायी परिणमन में उसे अच्छा–बुरा नहीं लगता, यही पर्याय का गलना है। त्रिविध योग की एकता पूर्वक अपने स्वभाव में लीन रहने से कर्म निर्जरित अर्थात् क्षय होते हैं। यही पर्याय के गलने और कर्म क्षय होने में अंतर है।

गाथा – ६

धर्म कर्म का रहस्य

कम्म सहावं षिपनं, उत्पत्ति षिपिय दिस्टि सभावं ।
चेयन रूव संजुत्तं, गलियं विलियं ति कम्म बंधानं ॥

अन्वयार्थ – (कम्म) कर्म **(सहावं)** स्वभाव से **(षिपनं)** नाशवान, क्षय होने वाले हैं **(उत्पत्ति)** कर्म का उत्पन्न होना और **(षिपिय)** क्षय होना **(दिस्टि सभावं)** दृष्टि के सद्भाव पर निर्भर है **(चेयन**

रूव संजुत्तं) चैतन्य स्वरूप में लीन रहने से **(ति कम्म)** तीन प्रकार (द्रव्य, भाव, नो) के कर्मों के **(बंधानं)** बन्धन **(गलियं)** गल जाते हैं **(विलियं)** विला जाते हैं।

अर्थ – कर्म स्वभाव से क्षय होने वाले हैं। कर्मों का उत्पन्न होना और क्षय होना अर्थात् कर्मों का आश्रव बंध होना और निर्जरित होना दृष्टि के सद्‌भाव पर निर्भर है। चैतन्य स्वरूप में लीन रहने से द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म तीनों ही प्रकार के कर्मों के बंधन गल जाते हैं, विलय हो जाते हैं।

प्रश्न १ – कर्म के बंध और निर्जरा में मूल कारण क्या है ?

उत्तर – कर्म स्वभाव से नाशवान हैं अर्थात् कर्मों का स्वभाव क्षय होने का है। कर्मों का उत्पन्न होना अर्थात् आस्रव बंध होना और क्षय होना, दृष्टि के सद्‌भाव पर निर्भर है। विभाव पर्याय पर रागादि विकार युक्त दृष्टि से कर्मों का आस्रव, बंध होता है और अपने ममल स्वभाव पर दृष्टि होने से कर्म क्षय होते हैं। अपने चैतन्य स्वरूप में लीन रहने से द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म तीनों प्रकार के कर्मों के बंधन विला जाते हैं।

प्रश्न २ – कर्मों का आस्रव, बंध जीव को किस कारण से होता है ?

उत्तर – अज्ञानी जीव अचैतन्य पर वस्तुओं को अपना मानता है, इसलिये रागादि भाव होते हैं। ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म और शरीरादि संयोग नो कर्म कहलाते हैं। जीवों को तीनों प्रकार के कर्मों का आस्रव, बंध अज्ञान के कारण होता है।

प्रश्न ३ – सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी के कर्मों की निर्जरा किस प्रकार होती है ?

उत्तर – सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप ध्रुव स्वभाव में लीन रहता है। जिससे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र पूर्वक उसके कर्मों की निर्जरा होती है।

प्रश्न ४ – किए हुए कर्मों का फल कौन भोगता है ?

उत्तर – जिस प्रकार खेत में बोए हुए बीजों के अनुरूप उनके फल समय पर प्रगट होते हैं उसी प्रकार अज्ञान पूर्वक किये हुए कर्मों के फल अन्य पर्याय में अथवा इसी पर्याय में समय पर प्रगट होते हैं। जीव जैसे कर्म करता है उनका फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है।

गाथा – ७

विशुद्ध ज्ञान बल की महिमा

मन सुभाव संषिपनं, संसारे सरनि भाव षिपनं च।
न्यान बलेन विसुद्धं, अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च ॥

अन्वयार्थ – (मन सुभाव) मन का स्वभाव **(संषिपनं)** नाशवान, क्षय होने का है **(च)** और **(संसारे)** चार गति, पंच परावर्तन रूप संसार में **(सरनि)** परिभ्रमण कराने वाले **(भाव)** रागादि भाव **(षिपनं च)** भी क्षय हो जाते हैं **(विसुद्धं)** विशुद्ध **(न्यान)** सम्यग्ज्ञान के **(बलेन)** बल से **(ममल)** ममल स्वभाव में **(अन्मोयं)** लीन रहना ही **(मुक्ति गमनं)** मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

अर्थ – मन का स्वभाव नाशवान है। चार गति पंच परावर्तन रूप संसार में परिभ्रमण कराने वाले रागादि विकारी भाव भी क्षय हो जाते हैं। अपने विशुद्ध सम्यग्ज्ञान के बल से ममल स्वभाव में लीन रहो, यही मोक्ष को प्राप्त करने का उपाय है।

प्रश्न १ – जीव के लिये बंधन और मुक्ति का मार्ग क्या है ?

उत्तर – परभाव, शरीर की क्रिया आदि में अज्ञान भाव सहित आसक्त रहना जीव के लिये बंधन है। ज्ञान बल से अनासक्त भाव पूर्वक ज्ञान स्वभाव में रहना मुक्ति का मार्ग है।

प्रश्न २ – ज्ञान मार्ग के पुरूषार्थ के अंतर्गत गुरूदेव तारण स्वामी क्या कहते हैं ?

उत्तर – ज्ञान मार्ग के पुरुषार्थ के अन्तर्गत सद्गुरू तारण स्वामी कहते हैं कि मन को शांत नहीं करना, स्वयं शांत होना है। भाव – विभावों को नहीं बदलना है, स्वयं निज स्वभाव में रहना है। जैसे – आकाश में बादल दिखाई देते हैं लेकिन कुछ ही समय में अपने आप विला जाते हैं। इसी प्रकार मन और संसारी भाव भी नाशवान हैं। इनसे दृष्टि हटाकर भेदज्ञान तत्त्व निर्णय के बल से अपने शुद्ध स्वभाव में लीन रहना, यही ज्ञान मार्ग का पुरुषार्थ है।

प्रश्न ३ – जीव का संसार में परिभ्रमण कब समाप्त होता है ?

उत्तर – विशुद्ध ज्ञान के बल से ममल स्वभाव में लीन होने पर जीव का संसार में परिभ्रमण समाप्त हो जाता है।

गाथा – ८

ज्ञानी को उत्पन्न तीन प्रकार का वैराग्य

वैरागं तिविह उवन्नं, जनरंजन रागभाव गलियं च ।
कलरंजन दोस विमुक्कं, मनरंजन गारवेन तिक्तं च ॥

अन्वयार्थ – [ज्ञानी साधक को] **(तिविह)** तीन प्रकार का **(वैरागं)** वैराग्य **(उवन्नं)** उत्पन्न हो जाता है **(जनरंजन)** जनरंजन **(राग भाव)** राग भाव **(गलियं)** गल जाता है **(कलरंजन)** कलरंजन **(दोस)** दोष से **(विमुक्कं)** विमुक्त हो जाते हैं **(च)** और **(मनरंजन)** मनरंजन **(गारवेन)** गारव का **(तिक्तं च)** त्याग कर देते हैं।

अर्थ – आत्मानुभवी ज्ञानी साधक को तीन प्रकार का वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। संसार से जिनकी दृष्टि हट गई है, उनका जनरंजन राग भाव गल जाता है। ज्ञानी कलरंजन दोष से विमुक्त हो जाते हैं, वे मनरंजन गारव को भी त्याग कर अपने स्वभाव में लीन होने की परम साधना करते हैं।

प्रश्न १ – जनरंजन राग क्या है ?

उत्तर – जनरंजन राग भाव है। जनरंजन का अर्थ है संसारी जीवों को प्रसन्न करना, प्रभावित करना, रंजायमान करना। संसार की तरफ दृष्टि होने से जनरंजन राग होता है। जनरंजन राग के द्वारा अपनी प्रभावना, प्रसिद्धि की चाह और इच्छा पूर्ति का अभिप्राय रहता है। इसके अन्तर्गत कुटुम्ब, परिवार, समाज, संसार सभी आ जाते हैं यह राग भाव कर्म बंध का कारण है।

प्रश्न २ – कलरंजन दोष क्या है ?

उत्तर – शरीर के आश्रय से शरीर संबंधी परिणाम होना और शरीर में रंजायमान रहना कलरंजन दोष है। कलरंजन दोष के परिणाम दुर्गति में ले जाने वाले हैं।

प्रश्न ३ – मनरंजन गारव क्या है ?

उत्तर – मनरंजन गारव अहंभाव है। मनरंजन का अर्थ है मन से रागादि भावों में रस लेना, मन के

संकल्प-विकल्प रूप परिणामों में जुड़ना। मन माया मोह से ग्रसित विचारों का प्रवाह है, मोहनीय कर्म की पर्याय है। इस पर्याय पर दृष्टि होने से अहं भाव बढ़ता है। पर्याय दृष्टि पूर्वक शास्त्र का अभ्यास व्रतादि और अन्य क्रियायें करके मन को रंजायमान करना मनरंजन गारव है।

प्रश्न ४ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी को कितने प्रकार का वैराग्य उत्पन्न होता है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी को तीन प्रकार का वैराग्य उत्पन्न होता है। उसका जनरंजन राग गल जाता है, कलरंजन दोष और मनरंजन गारव को भी वह त्याग देता है और अपने निरंजन निर्विकार स्वभाव की साधना में संलग्न रहता है।

गाथा – ९

दर्शन मोहांध के अभाव में दिखते हैं अनन्त चतुष्टय

दर्सन मोहंध विमुक्कं, रागं दोसं च विषय गलियं च ।
ममल सुभाव उवन्नं, नंत चतुस्टय दिस्टि संदर्स ॥

अन्वयार्थ – (दर्सन) दर्शन मोहनीय के **(मोहंध)** मिथ्यात्व रूप अन्धकार **से (विमुक्कं)** विमुक्त होने पर **(रागं दोसं)** राग-द्वेष **(च)** और **(विषय)** विषय भाव **(गलियं)** गल जाते हैं **(ममल सुभाव)** ममल स्वभाव **(उवन्नं)** उत्पन्न हो जाता है **(च)** और **(नंत चतुस्टय)** अनंत चतुष्टय मयी [सर्वज्ञ स्वभाव] **(दिस्टि)** दृष्टि में **(संदर्सं)** दिखाई देने लगता है।

अर्थ – दर्शन मोहनीय के मिथ्यात्व रूप अंधकार का अभाव होने पर इष्ट – अनिष्ट रूप राग – द्वेष और दुःखदायी विषय भाव गल जाते हैं, ममल स्वभाव उत्पन्न हो जाता है और अपना अनन्त चतुष्टयमयी सर्वज्ञ स्वभाव दृष्टि में दिखाई देने लगता है।

(मोहनीय कर्म के भेद-प्रभेद अध्याय ४, श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका प्रश्न क्रमांक १४९ से देखें।)

प्रश्न १ – सम्यग्दर्शन कब होता है ?

उत्तर – दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ और चारित्र मोहनीय की अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशम क्षयोपशम या क्षय के निमित्त से आत्म स्वरूप की अनुभूति होने पर सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न २ – परमात्म स्वरूप कब दिखाई देता है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन होने पर सम्यक्दृष्टि, सम्यग्ज्ञान पूर्वक वस्तु स्वरूप को यथार्थ जानता है, जिससे राग – द्वेष विषय आदि स्वयं छूटने लगते हैं, यही सम्यक्चारित्र का प्रगट होना है। इसी अनुभूति में अपना ममल स्वभाव उत्पन्न होता है और अनंत चतुष्टय मयी परमात्म स्वरूप दिखाई देता है।

प्रश्न ३ – रागादि विभावों के रहते हुए स्वभाव दिखाई क्यों नहीं देता ?

उत्तर – विभाव, कर्मोदय के निमित्त से होने वाले शुभाशुभ परिणाम हैं और स्वभाव कर्मादि संयोगों से रहित आत्मा की शुद्ध सत्ता है। अनादि काल से जीव विभाव भाव में ही रमण करता रहा है। जिस प्रकार पानी में लहरें उत्पन्न होने पर चेहरा दिखाई नहीं देता इसी प्रकार अन्तर में रागादि विभावों के रहते हुए स्वभाव दिखाई नहीं देता।

गाथा – १०

महिमा मयी स्वभाव में आचरण की प्रेरणा

तिअर्थ सुद्ध दिस्टं, पंचार्थ पंच न्यान परमिस्टी ।
पंचाचार सुचरनं, संमत्तं सुद्ध न्यान आचरनं ॥

अन्वयार्थ – (तिअर्थ) ॐकार, ह्रींकार, श्रींकार स्वरूप रत्नत्रय मयी **(सुद्ध)** शुद्ध स्वभाव को **(दिस्टं)** देखो **(पंचार्थ)** पाँच अर्थ **(पंच न्यान)** पाँच ज्ञान **(परमिस्टी)** पाँच परमेष्ठी पद को ग्रहण करो **(पंचाचार)** पाँच आचार में **(सुचरनं)** आचरण करो **(संमत्तं)** सम्यक्त्व से **(सुद्ध)** शुद्ध **(न्यान)** ज्ञान स्वभाव में **(आचरनं)** आचरण करो, लीन रहो ।

अर्थ – हे आत्मन् ! ओंकार, ह्रींकार, श्रींकार स्वरूप रत्नत्रयमयी शुद्ध स्वभाव को देखो, पाँच अर्थ – (उत्पन्न अर्थ, हितकार अर्थ, सहकार अर्थ जान अर्थात् ज्ञान अर्थ और पय – पद अर्थ) पाँच ज्ञान – (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान) पाँच परमेष्ठी – (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु) पद को ग्रहण करो । पाँच आचार (दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, तपाचार, चारित्राचार) में आचरण करो तथा सम्यक्त्व से शुद्ध अपने ज्ञान स्वभाव में लीन रहो ।

प्रश्न १ – अध्यात्म साधना के अंतर्गत पाँच अर्थ की साधना क्या है?

उत्तर – अध्यात्म साधना के अन्तर्गत पाँच अर्थ का स्वरूप – उत्पन्न अर्थ (सम्यग्दर्शन), हितकार अर्थ (सम्यग्ज्ञान), सहकार अर्थ (सम्यक्चारित्र) पूर्वक जान अर्थ (ज्ञान अर्थ अर्थात् केवलज्ञान) सहित पय अर्थ (पद अर्थ) सिद्ध पद प्रगट होना ही पाँच अर्थ की साधना है ।

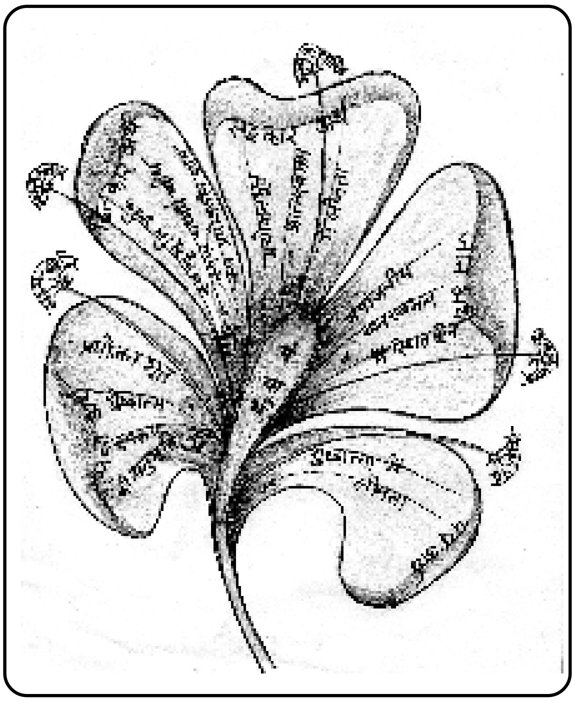

प्रश्न २ – तिअर्थ का क्या अभिप्राय है, आचार्य श्री जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज के अनुसार स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – तिअर्थ का आगम और साधना परक अभिप्राय –

ॐ	ह्रीं	श्रीं
उवं	ह्रियं	श्रियं
उवंकार	ह्रियंकार	श्रियंकार
शुद्धात्म बोधक	केवलज्ञान स्वभाव	मोक्षलक्ष्मी
उत्पन्न अर्थ	हितकार अर्थ	सहकार अर्थ
शुद्धात्मानुभूति	स्व पर का निर्णय	स्वरूप लीनता
सम्यग्दर्शन	सम्यग्ज्ञान	सम्यक्चारित्र

प्रश्न ३ – आत्मानुभूति की क्या महिमा है ?

उत्तर – आत्मानुभूति का प्रकाश होने पर मिथ्यात्व का अंधकार स्वयं दूर हो जाता है। ज्ञान की किरणें प्रकाशित हो जाती हैं। वस्तु स्वरूप का यथार्थ बोध हो जाता है। पर से राग – द्वेष का अभाव, समता भाव की प्रगटता और शुद्ध दृष्टि हो जाती है।

गाथा –११

शुद्ध स्वभाव ही देव गुरू धर्म है

दर्सन न्यान सुचरनं, देवं च परम देव सुद्धं च ।
गुरं च परम गुरुवं, धर्मं च परम धर्म सभावं ॥

अन्वयार्थ – (दर्सन) सम्यग्दर्शन **(न्यान)** सम्यग्ज्ञान **(सुचरनं)** सम्यक्चारित्र मयी **(सुद्धं च)** शुद्ध **(सभावं)** स्वभाव **(देवं)** देव **(च)** और **(परम देव)** परम देव है **(गुरं)** गुरू **(च)** और **(परम गुरुवं)** परम गुरू है **(धर्मं)** धर्म **(च)** और **(परम धर्म)** परम धर्म है।

अर्थ – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमयी एक अखंड अविनाशी शुद्धात्म स्वभाव ही निश्चय से देव और परमदेव है, गुरू और परम गुरू है तथा यही धर्म और परम धर्म है।

प्रश्न १ – शुद्ध निश्चय नय से जीव का सत्स्वरूप क्या है ?

उत्तर – जीव का शुद्ध चैतन्य स्वभाव धर्म है, परम धर्म है। अपने अंतरात्मा का जागरण गुरू और परम गुरू है। पूर्ण शुद्ध स्वभावमय हो जाना ही देव और परम देव है। शुद्ध निश्चयनय से जीव का सत्स्वरूप यही है;

प्रश्न २ – आत्मा स्वयं ही देव गुरू धर्म स्वरूप है फिर संसार में क्यों भटक रहा है ?

उत्तर – अनादि काल से अपने सत्स्वरूप को भूला हुआ यह जीव अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि बना हुआ संसार में भटक रहा है।

प्रश्न ३ – आत्मा स्वयं देव गुरू धर्म स्वरूप है ऐसा मानने से क्या लाभ है ?

उत्तर – निज आत्मा देव गुरू धर्म है, परम पारिणामिक भाव वाला है ऐसा जो स्वीकार करता है वह सम्यक्दृष्टि ज्ञानी हो जाता है। वह अपने स्वभाव की महिमा के बल से शुद्ध स्वभाव रूप धर्म

का अनुभव करता है। उसका अंतरात्मा सद्गुरू जाग्रत रहता है, वह विभाव भाव और सम्पूर्ण जगत का साक्षी रहता है, अपने स्वरूप में लीन होकर स्वयं देव पद प्राप्त करता है।

गाथा – १२

ज्ञान की वृद्धि और सिद्धि को पाने का उपाय

जिनं च परम जिनयं, न्यानं पंचामि अषिरं जोयं।
न्यानेन न्यान विर्धं, ममल सुभावेन सिद्धि संपत्तं॥

अन्वयार्थ – (जिनं) आत्मा वीतराग जिन स्वरूप है **(परम जिनयं)** परम जिन है **(अषिरं)** अक्षय, अविनाशी **(न्यानं पंचामि)** पंचम ज्ञान, केवलज्ञान स्वभाव को **(जोयं)** संजोओ, साधना करो **(क्योंकि)** **(न्यानेन)** ज्ञान से **(न्यान)** ज्ञान की **(विर्धं)** वृद्धि होती है **(च)** और **(ममल सुभावेन)** ममल स्वभाव में रहने से **(सिद्धि संपत्तं)** सिद्धि की सम्पत्ति प्राप्त होती है।

अर्थ – आत्मा वीतराग जिन स्वरूप है, परम जिन है, ऐसे अक्षय अविनाशी पंचम ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान स्वभाव को संजोओ, इसी की साधना करो क्योंकि ज्ञान से ज्ञान की वृद्धि होती है और ममल स्वभाव में रहने से सिद्धि की सम्पत्ति प्राप्त होती है।

प्रश्न १ – आत्मा जिन और परम जिन है इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – आत्मा स्वभाव से वीतराग है, परम जिन अर्थात् अरिहन्त सर्वज्ञ स्वरूप जिनेन्द्र पद वाला है। यहाँ जिन का अर्थ वीतराग और परम जिन का अर्थ परम जिनेन्द्र स्वरूप है।

प्रश्न २ – पंचम ज्ञान को अक्षर स्वभाव क्यों कहा गया है ?

उत्तर – संस्कृत व्याकरण में अक्षर की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है–' न क्षरति इति अक्षर:' अर्थात् जिसका कभी क्षरण नहीं होता उसे अक्षर कहते हैं। पंचम ज्ञान केवलज्ञान है यह ज्ञान कभी क्षरण को प्राप्त नहीं होता। यह अविनाशी है अक्षय है तथा केवलज्ञान स्वभाव संसार के प्रत्येक जीव का स्वभाव है इसलिये पंचम ज्ञान को अक्षर स्वभाव कहा गया है।

प्रश्न ३ – 'न्यानेन न्यान विर्धं' का क्या अर्थ है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी अपने स्वभाव की सुरत ध्यान रखता है, ज्ञानोपयोग करता है, इस साधना से ज्ञानी के अंतर में ज्ञान से ज्ञान बढ़ता है यही न्यानेन न्यान विर्धं का अर्थ है।

गाथा – १३

चिदानन्द मय रहने से कर्मों का क्षय

चिदानंद चिंतवनं, चेयन आनंद सहाव आनंदं।
कम्म मल पयडि षिपनं, ममल सहावेन अन्मोय संजुत्तं॥

अन्वयार्थ – (चिदानंद) चिदानंद स्वभाव का **(चिंतवनं)** चिंतवन करो **(चेयन)** चैतन्य **(सहाव)** स्वभाव के **(आनंद)** आनंद में **(आनंदं)** आनंदित रहो **(ममल सहावेन)** ममल स्वभाव के आश्रय रहो **(अन्मोय)** इसी की अनुमोदना करो **(संजुत्तं)** इसी में लीन हो जाओ [इससे] **(कम्म मल)** कर्म मलों की **(पयडि)** प्रकृतियाँ **(षिपनं)** क्षय हो जायेंगी।

अर्थ – चिदानंद स्वभाव का चिंतवन करो । चैतन्य स्वभाव के आनंद में अर्थात् ज्ञायक भाव में आनन्दित रहो । ममल स्वभाव के आश्रय पूर्वक इसी की अनुमोदना करो, ममल स्वभाव में लीन रहो । इस साधना से कर्म मलों की समस्त प्रकृतियाँ क्षय हो जायेंगी ।

प्रश्न १ – चिदानंद चिंतवनं का आशय और लाभ लिखिये ।

उत्तर – अपने आत्म स्वरूप का चिंतन करना, अपने ज्ञानानंद स्वभाव में आनंदित रहना और अपने ममल स्वभाव की साधना करना यही चिदानंद चिंतवनं का आशय है । इससे लाभ यह है कि निर्विकल्प स्वानुभूति में रहने से कर्म मलों की समस्त प्रकृतियाँ क्षय हो जाती हैं ।

प्रश्न २ – श्री जिनेन्द्र परमात्मा ने बंध और मोक्ष के संबंध में क्या उपदेश दिया है ?

उत्तर – श्री जिनेन्द्र परमात्मा का उपदेश है कि रागी जीव कर्मों से बंधता है और आत्मस्थ वीतरागी जीव कर्म से छूटता है । मोक्ष पद शुभ क्रियाओं के करने से प्राप्त नहीं होता, वह आत्मज्ञान की कला से ही मिलता है । इसलिये आत्मार्थी जीवों का कर्तव्य है कि वे आत्मज्ञान की कला के बल से मुक्ति का पुरुषार्थ करें ।

प्रश्न ३ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी की अंतरंग भावना कैसी होती है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी की अन्तरंग भावना हर समय अपने स्वरूप में रमण करने की रहती है । वह हमेशा अपने चिदानन्द चैतन्य स्वभाव का चिन्तवन करता है और उसी के आनन्द में आनन्दित रहता है ।

गाथा – १४

पर पर्याय और शल्यों से छूटने का उपाय

अप्पा परु पिच्छन्तो, पर पर्जाव सल्य मुक्तानं ।
न्यान सहावं सुद्धं, सुद्धं चरनस्य अन्मोय संजुत्तं ॥

अन्वयार्थ – (अप्पा) आत्मा और **(परु)** पर पदार्थों को भिन्न – भिन्न **(पिच्छन्तो)** पहिचानने से **(पर पर्जाव)** पर पर्यायें और **(सल्य)** शल्य **(मुक्तानं)** छूट जाती हैं **(न्यान सहावं)** ज्ञान स्वभाव **(सुद्धं)** शुद्ध है **(अन्मोय)** इसकी अनुमोदना पूर्वक **(संजुत्तं)** लीन रहना ही **(सुद्धं चरनस्य)** शुद्ध सम्यक्चारित्र है ।

अर्थ – आत्मा और शरीरादि पर पदार्थों को भिन्न – भिन्न पहिचानने से, अनुभव करने से, पर पर्याय और शल्यों का अभाव हो जाता है, रागादि भाव क्षय हो जाते हैं । ज्ञान स्वभाव त्रिकाल शुद्ध है ऐसे महिमामयी स्वभाव की अनुमोदना करते हुए इसी में लीन रहो, स्वभाव में लीन रहना ही सम्यक् चारित्र है ।

प्रश्न १ – क्या सम्यक्चारित्र भी बंध का कारण है ?

उत्तर – नहीं, सम्यक्चारित्र कदापि बंध का कारण नहीं है । साधक दशा में जीव के चारित्र गुण की पर्याय में दो अंश हो जाते हैं – राग अंश और वीतराग अंश । जितना राग अंश है वह शुभाशुभ भाव रूप होने से बंध का कारण है और जितना वीतराग अंश है वह शुद्ध भाव रूप होने से संवर निर्जरा का कारण है ।

प्रश्न २ – ज्ञानी सम्यक्चारित्र की सिद्धि के लिये अपने स्वभाव का कैसा बहुमान जाग्रत करते हैं ?

उत्तर – निश्चय से आत्मा परम तत्त्व है। एक ही समय में जानने और परिणमन करने के कारण आत्मा को समय कहते है। आत्मा द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म से रहित होने से शुद्ध है। स्वतंत्र चैतन्य स्वरूप पूर्ण ज्ञानमय होने से केवली है। मनन मात्र होने से मुनि है। ज्ञानमय होने से ज्ञानी है। स्वभाव से सिद्ध परमात्मा के समान आठ कर्म रहित और जन्म,जरा,मरण से रहित होने के कारण सिद्ध है। ज्ञानी इस प्रकार अपने स्वभाव का बहुमान जाग्रत करके शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर सम्यक्चारित्र की सिद्धि करते हैं।

प्रश्न ३ – पर पर्याय और शल्य आदि विभाव कैसे छूटते हैं ?

उत्तर – शरीरादि संयोग आत्मा से भिन्न हैं। वे कभी आत्मा नहीं होते और आत्मा कभी शरीरादि संयोग रूप नहीं होता। इस प्रकार पर को पर रूप और आत्मा को ज्ञाता दृष्टा चिदानंदमय समझ कर उसी में लीन रहने से पर पर्याय और शल्य आदि विभाव भाव छूट जाते हैं।

गाथा – १५

विभाव का परिहार, स्वरूप में रमणता–सम्यक्चारित्र

अबंभं न चवन्तं, विकहा विसनस्य विसय मुक्तं च।
न्यान सहाव सु समयं, समयं सहकार ममल अन्मोयं ॥

अन्वयार्थ – (सु समयं) स्व समय [शुद्धात्मा] **(न्यान सहाव)** ज्ञानानंद स्वभावी है **(ममल)** इसी ममल **(समयं)** स्व समय के **(सहकार)** आश्रय पूर्वक **(अन्मोयं)** अनुमोदना करने से **(अबंभं न)** अब्रह्म भाव नहीं रहता, छूट जाता है **(चवन्तं)** चार प्रकार की **(विकहा)** विकथा **(विसनस्य)** व्यसन **(च)** और **(विसय)** विषय आदि विकार **(मुक्तं)** छूट जाते हैं।

अर्थ – अपना स्व समय अर्थात् शुद्धात्मा ज्ञानानंद स्वभावी है, इसी ममल शुद्धात्म स्वरूप का सहकार करो, अनुमोदना करो इससे अब्रह्म भाव छूट जाता है। चार प्रकार की विकथा – राजकथा, चोरकथा, भोजनकथा और स्त्रीकथा इन विकथाओं के साथ – साथ व्यसन और विषय विकारों का भी अभाव हो जाता है।

प्रश्न १ – ज्ञानी सहज वैरागी कैसे होते हैं ?

उत्तर – जिनके अंतर में भेदज्ञान रूपी कला जाग जाती है। जो चैतन्य के आनंद का वेदन करते हैं ऐसे ज्ञानी संसार शरीर भोगों से सहज वैरागी होते हैं।

प्रश्न २ – किस कषाय के सद्भाव में कौन सा चारित्र नहीं हो सकता ?

उत्तर – अनंतानुबंधी कषाय के सद्भाव में स्वरूपाचरण चारित्र, अप्रत्याख्यानावरण के सद्भाव में देश चारित्र, प्रत्याख्यानावरण के सद्भाव में सकल चारित्र और संज्वलन कषाय के सद्भाव में यथाख्यात चारित्र नहीं हो सकता।

प्रश्न ३ – ज्ञानी की दृष्टि कहाँ रहती है और उससे क्या लाभ होता है ?

उत्तर – ज्ञानी की दृष्टि शुद्धात्म तत्त्व पर रहती है फिर भी वह जानता सबको है। शुद्ध–अशुद्ध पर्यायों

को जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव – विभावपने का, सुख–दु:ख रूप वेदन का, साधक – बाधकपने आदि का उसे विवेक रहता है। मैं परिपूर्ण शुद्ध ज्ञान स्वरूपी शुद्धात्मा हूँ ऐसे स्वभाव पर दृष्टि रहती है, इससे विभाव परिणमन अपने आप विला जाता है।

गाथा – १६

परमात्म स्वरूप के दर्शन की प्रेरणा

जिन वयनं च सहावं, जिनियं मिथ्यात कसाय कम्मानं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा ममल दर्सए सुद्धं ॥

अन्वयार्थ – (जिन वयनं) जिन वचनों के अनुसार **(सहावं)** स्वभाव के आश्रय से **(मिथ्यात)** मिथ्यात्व **(कसाय)** कषाय **(च)** और **(कम्मानं)** कर्मों को **(जिनियं)** जीतो **(अप्पा)** मैं आत्मा **(सुद्धप्पानं)** शुद्धात्मा **(परमप्पा)** परमात्मा हूँ **(ममल)** ऐसे ममल **(सुद्धं)** शुद्ध स्वभाव का **(दर्सए)** दर्शन करो।

अर्थ – जिनेन्द्र भगवान के वचनों को स्वीकार करके ममल स्वभाव के आश्रय से मिथ्यात्व कषाय और कर्मों को जीतो। मैं आत्मा शुद्धात्मा परमात्मा हूँ, संसार में सर्वोत्कृष्ट परम आनन्दमयी अमृत रस से परिपूर्ण अपने शुद्ध स्वभाव का दर्शन करो अर्थात् स्वानुभूति में लीन रहो।

प्रश्न १ – पर्याय में शुद्धता कैसे प्रगट होती है ?

उत्तर – आत्म स्वभाव रागादि विभाव से निरपेक्ष है। ज्ञानी को स्वभाव में प्रगाढ़ प्रीति होती है और अखंडानंद शुद्ध स्वभाव के आश्रय पूर्वक पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है।

प्रश्न २ – सच्चा ज्ञानी कौन है ?

उत्तर – जो ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, ऐसे पर भाव या पर द्रव्य को जो ग्रहण नहीं करता तथा सदा ग्रहण किया हुआ जो अपना स्वभाव है उसका कभी त्याग नहीं करता वही सच्चा ज्ञानी है।

प्रश्न ३ – सम्यक्चारित्र का मार्ग किसकी समझ में आता है ?

उत्तर – सम्यक्चारित्र का मार्ग सूक्ष्म है, वह निकट भव्य जीव की समझ में आता है।

प्रश्न ४ – चारित्र की समझ में क्या सावधानी रखना चाहिये ?

उत्तर – व्यवहार चारित्र का मार्ग स्थूल है, वह सहज ही समझ में आ जाता है। व्यवहार चारित्र साधन है, साध्य नहीं है। भूल यह हो जाती है कि साध्य का लक्ष्य न होने से साधन को ही साध्य मान लिया जाता है। इसमें सावधान रहना आवश्यक है।

प्रश्न ५ – मिथ्यात्व कषाय कर्मादि को जीतने का मूल आधार क्या है ?

उत्तर – मैं आत्मा सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा हूं, मेरे स्वभाव में कोई भी कर्म, संयोग या भाव विभाव नहीं हैं और जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है। यह वस्तु स्वरूप का निर्णय ही मिथ्यात्व कषाय और कर्मादि को जीतने का मूल आधार है।

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

द्वितीय वर्ष (परिचय)
प्रश्न पत्र – श्री कमल बत्तीसी जी

समय –३ घंटा **अभ्यास के प्रश्न – गाथा १ से १६** **पूर्णांक – १००**

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) रत्न के समान.....विमल ज्ञान का धारी ममल स्वरूप है। (ख) .....की गहराई में जाने से आत्मा के दर्शन होते हैं।

(ग) सर्वोत्कृष्ट महिमा का भंडार चैतन्य देव अनादि अनन्त परम............भाव में स्थित है।

(घ) जो भव्य जीव तीन प्रकार के मिथ्यात्व भाव को जीतता है, उसकी कर्मोदय जनित विभाव रूप क्षणभंगुर ....गल जाती है। (ङ) यह शरीर मैं हूँ, यह शरीरादि मेरे हैं, मैं इन सबका कर्ता हूँ यही...............है।

प्रश्न २ –सत्य/असत्य कथन लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) ज्ञानमार्ग में आत्मबल, ज्ञानबल सहकारी होता है। (ख) कर्म स्वभाव से क्षय होने वाले हैं।

(ग) पंच परावर्तन रूप संसार में परिभ्रमण कराने वाले रागादि भाव सदा बने रहते हैं।

(घ) संसारी जीवों को प्रसन्न करना जनरंजन राग भाव आत्महितकारी है।

(ङ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमयी शुद्ध स्वभाव ही निश्चय से देव और परमदेव है।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) एक ही समय में जानने और परिणमन करने के कारण आत्मा को........कहते हैं।
(१) शुद्धात्मा (२) चैतन्य (३) समय (४) ममल

(ख) सम्यक्चारित्र का मार्ग........है। (१) सरल (२) कठिन (३) सूक्ष्म (४) स्थूल

(ग) जो विभावों को नहीं बदलता, निज स्वभाव में रहता है –
(१) भाव (२) परभाव (३) विभाव (४) अभाव

(घ) ममल स्वसमय का सहकार करने से छूटता है–(१) अब्रह्म भाव (२) कर्त्तत्त्व (३) अप्रमेयत्व (४) प्रमेयत्व

(ङ) जितना राग का अंश है वह शुभाशुभ भाव होने से कारण है–
(१) राग का (२) पुण्य का (३) धर्म का (४) बंध का

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
चिंतवन	मिथ्याभाव
आनंद	स्वसमय
अनुमोदना	चिदानंद स्वभाव
सहकार	ममल स्वभाव
मैं शरीर हूँ	ज्ञायक भाव

प्रश्न ५ – अति लघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में) (अंक ४ x ५ = २०)

(क) मिथ्यात्व कषाय कर्मादि को जीतने का मूल आधार क्या है ? (ख) पर्याय में शुद्धता कैसे प्रगट होती है ?

(ग) आत्मा जिन परम जिन है, इसका क्या अभिप्राय है ? (घ) चार विकथा, सात व्यसनों के नाम लिखिए।

(ङ) चिदानंद चिंतवनं का आशय क्या है इसका क्या लाभ है ?

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ६ x ५ = ३०)

(ख) जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारव को समझाइये। (क) क्या सम्यक्चारित्र भी बंध का कारण है ?

(ग) कर्म के बंध और निर्जरा में मूल कारण क्या है ? (घ) तिअर्थ का अभिप्राय तारण स्वामी के अनुसार लिखिए।

(ङ) पर्याय गलने और कर्म क्षय होने में क्या अंतर है ? इस विषय पर तारण स्वामी ने कौन से दो सूत्र दिये हैं ?

प्रश्न ७ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (अंक १ x १० = १०)

(क) कमल बत्तीसी की गाथा १ से १६ का सारांश लिखिये। आवश्यक पंक्तियाँ भी लिखिये।

गाथा – १७

इष्ट स्वरूप में रहने से अनिष्ट संयोगों का अभाव

जिन दिस्टि इस्टि संसुद्धं, इस्टं संजोय तिक्त अनिस्टं ।
इस्टं च इस्ट रूवं, ममल सहावेन कम्म संषिपनं ।।

अन्वयार्थ – (जिन) [संबोधन] हे अंतरात्मन् ! **(इस्टि)** अपने इष्ट **(संसुद्धं)** परम शुद्ध स्वभाव पर **(दिस्टि)** दृष्टि रखो **(इस्टं)** इष्ट स्वरूप को **(संजोय)** संजोने से **(अनिस्टं)** रागादि अनिष्ट भाव **(तिक्त)** छूट जायेंगे **(इस्ट रूवं)** अपना इष्ट स्वरूप ही **(इस्टं च)** प्रयोजनीय है **(ममल सहावेन)** ममल स्वभाव में रहने से **(कम्म)** कर्म **(संषिपनं)** क्षय हो जाते हैं।

अर्थ – हे आत्मन् ! अपना इष्ट परम शुद्ध स्वभाव है, इसी पर दृष्टि रखो । अपने इष्ट स्वरूप को संजोने अर्थात् साधना करने से समस्त रागादि अनिष्ट भाव छूट जायेंगे, अपना इष्ट स्वरूप ही प्रयोजनीय है। इसी ममल स्वभाव में रहने से कर्म क्षय हो जाते हैं, निर्जरित हो जाते हैं।

प्रश्न १ – अपना इष्ट कौन है ?

उत्तर – रागादि भावों से रहित अनन्त गुणों मयी निज शुद्धात्मा अपना इष्ट है।

प्रश्न २ – शुद्धात्मा सर्वोत्कृष्ट कैसे है ?

उत्तर – अपना शुद्धात्मा सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि शुद्धात्मा ऐसा द्रव्य है जिसमें से अनन्त सिद्ध पर्याय प्रगट होती हैं इसलिये यह सर्वोत्कृष्ट है।

प्रश्न ३ – शुद्ध दृष्टि किसे कहते हैं ?

उत्तर – ज्ञान दर्शन आदि अनन्त शक्तियों का पिंड सर्वोत्कृष्ट आत्मा है, जो दृष्टि ऐसी सर्वोत्कृष्ट वस्तु को स्वीकार करती है, वह शुद्ध दृष्टि है।

प्रश्न ४ – इष्ट स्वभाव, पर्याय में प्रगट कैसे होता है ?

उत्तर – सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा का ध्यान करने से, ममल स्वभाव में लीन होने से इष्ट स्वभाव, पर्याय में प्रगट होता है।

प्रश्न ५ – जीव के लिये अनिष्टकारी क्या है ?

उत्तर – मोह राग-द्वेष आदि विभाव परिणाम और पुण्य-पाप आदि कर्मों के निमित्त से जो सुखाभास एवं दु:ख का वेदन होता है यह जीव के लिये अनिष्टकारी है।

गाथा – १८

स्वरूप लीनता में अंतर होना ही अज्ञान

अन्यानं नहु दिस्टं, न्यान सहावेन अन्मोय ममलं च ।
न्यानंतरं न दिस्टं, पर पर्जाव दिस्टि अंतरं सहसा ।।

अन्वयार्थ – (अन्यानं) स्वरूप के विस्मरण रूप अज्ञान को **(नहु)** मत **(दिस्टं)** देखो **(न्यान सहावेन)** ज्ञान स्वभाव के आश्रय से **(ममलं च)** ममल स्वभाव में **(अन्मोय)** लीन रहो **(न्यानंतरं)** स्वभाव में लीनता रूप ज्ञानांतर [अज्ञान] को **(न दिस्टं)** मत देखो [अभीष्ट मत मानो] **(पर पर्जाव)** पर

पर्याय पर **(दिस्टि)** दृष्टि जाते ही **(सहसा)** अचानक [उसी क्षण] **(अंतरं)** लीनता में अंतर आ जाता है।

अर्थ – आत्म स्वभाव के विस्मरण रूप अज्ञान को मत देखो, ज्ञायक भाव के आश्रय से ममल स्वभाव में लीन रहो। लीनता में व्यवधान रूप ज्ञानान्तर को भी मत देखो, क्योंकि पर पर्याय पर दृष्टि जाते ही स्वभाव लीनता में अचानक अंतर आ जाता है। इसलिये ज्ञान स्वभाव में सदैव सावधान रहो।

प्रश्न १ – ''अन्यानं नहु दिस्टं'' इस गाथा का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – ज्ञान स्वभावी ममल स्वरूप में दृढ़ता पूर्वक लीनता ही इस गाथा का अभिप्राय है। पर पर्याय पर दृष्टि जाते ही स्वभाव लीनता में व्यवधान आ जाता है। चारित्र की शिथिलता का कारण भी यही है।

प्रश्न २ – अज्ञान क्या है ?

उत्तर – उपयोग (दृष्टि) का पर्यायोन्मुखी होने पर स्वभाव का विस्मरण होना ही अज्ञान है।

प्रश्न ३ – ज्ञानांतर किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी अपने स्वभाव के लक्ष्य पूर्वक साधना में संलग्न रहता है। ज्ञान रूप परिणत रहता है। परन्तु पर पर्याय पर दृष्टि जाते ही ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना में (लीनता में) अचानक अंतर आ जाता है इसी को ज्ञानांतर कहते हैं।

गाथा – १९

ज्ञानमयी आत्मा ही शुद्धात्मा परमात्मा

अप्पा अप्प सहावं, अप्पा सुद्धप्प विमल परमप्पा।
परम सरूवं रूवं, रूवं विगतं च ममल न्यानस्य ॥

अन्वयार्थ – (अप्पा) आत्मा **(अप्प सहावं)** आत्म स्वभाव मय है **(अप्पा)** आत्मा **(सुद्धप्प)** शुद्धात्मा **(विमल)** कर्म मल रहित **(परमप्पा)** परमात्मा है **(च)** और **(ममल न्यानस्य)** ममल ज्ञान **(रूवं)** स्वरूप से **(विगतं)** [व्यक्त] प्रगट है [ऐसा] **(परम)** उत्कृष्ट **(रूवं)** रूप ही अपना **(सरूवं)** स्वरूप है।

अर्थ – आत्मा, आत्म स्वभावमय है, वह उपमा रहित है, समस्त कर्म मलों से रहित शुद्धात्मा परमात्मा है और अपने ममल ज्ञान स्वरूप से प्रगट है, ऐसा मंगलमय परम उत्कृष्ट रूप ही अपना स्वरूप है, यही इष्ट आराध्य और उपादेय है, इसी की साधना – आराधना करने में जीवन की सार्थकता है।

प्रश्न १ – आत्मा आत्म स्वभाव मय है इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – आत्मा, आत्म स्वभाव मय है अर्थात् स्वयं – स्वयं के स्वभाव में तन्मय है। इसकी उपमा पर से नहीं की जा सकती यह अपने स्वभाव से परम ज्ञानमयी है। चैतन्य तत्त्व ज्ञानमय स्वयं ज्ञान रूप है इस प्रकार आत्मा आत्म स्वभावमय है।

प्रश्न २ – आत्म धर्म की महिमा क्या है ?

उत्तर – जिस प्रकार रत्नों में श्रेष्ठ वज्र नामक हीरा है, बड़े वृक्षों में उत्तम बावन चंदन है,उसी प्रकार धर्मों में श्रेष्ठ रत्नत्रयमयी आत्म धर्म है जो संसार के दु:खों से छुड़ाकर मोक्ष प्राप्त कराने वाला है।

गाथा – २०

विमल स्वरूप में रहना ही मुक्ति मार्ग

विमलं च विमल रूवं, न्यानं विन्यान न्यान सहकारं ।
जिन उत्तं जिन वयनं, जिन सहकारेन मुक्ति गमनं च ॥

अन्वयार्थ – (जिन उत्तं) जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि **(विमलं च)** कर्म मलों से रहित **(विमल रूवं)** अपना विमल स्वरूप है **(न्यानं)** ज्ञान पूर्वक [इसी] **(विन्यान न्यान)** ज्ञान विज्ञान मयी स्वभाव का **(सहकारं)** सहकार करो **(जिन)** जिन अर्थात् वीतराग स्वभाव के **(सहकारेन)** सहकार करने से ही **(मुक्ति)** मुक्ति की **(गमनं च)** प्राप्ति होती है **(जिन वयनं)** यही जिन वचन हैं।

अर्थ – श्री जिनेन्द्र भगवान कहते हैं – द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नो कर्मों से रहित आत्मा का विमल स्वभाव है। ज्ञान पूर्वक अपने ज्ञान विज्ञानमयी स्वभाव का सहकार करो, यही जिन वचन हैं। जिन स्वभाव के सहकार करने से, आत्म स्वरूप में लीन रहने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १ – मुक्ति का मार्ग क्या है ?

उत्तर – जिनेन्द्र परमात्मा के कहे अनुसार शरीरादि संयोग से और कर्म मलों से रहित एक अखंड अविनाशी आत्म स्वरूप को स्वीकार करना तथा श्रद्धान, ज्ञान सहित अपने स्वभाव में रहना मुक्ति का मार्ग है।

प्रश्न २ – सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा का अनुभव कौन करते हैं ?

उत्तर – जो जीव कर्म मल और रागादि भावों से भिन्न परमात्मा के समान अपने ज्ञायक स्वरूप का श्रद्धान करते हैं। वे सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा का अनुभव करते हैं।

प्रश्न ३ – जीवन में समता शांति किस प्रकार आती है ?

उत्तर – निज स्वानुभूति पूर्वक यह तत्त्व निर्णय स्वीकार करना कि ''जिस समय जिस जीव का जिस द्रव्य का जैसा जो कुछ होना है, वह अपनी तत् समय की योग्यतानुसार हो रहा है और होगा, उसे कोई टाल फेर बदल सकता नहीं'', इस निर्णय से जीवन में समता शांति आती है।

गाथा – २१

अहिंसा मयी आचरण की प्रेरणा

षट्काई जीवानं, क्रिपा सहकार विमल भावेन ।
सत्वं जीव समभावं, क्रिपा सह विमल कलिस्ट जीवानं ॥

अन्वयार्थ – [सम्यक्दृष्टि ज्ञानी] **(विमल भावेन)** विमल भाव के **(सहकार)** सहकार पूर्वक **(षट्काई)** छह काय के **(जीवानं)** जीवों पर **(क्रिपा)** दया भाव रखता है **(सत्वं जीव)** प्राणी मात्र के प्रति **(समभावं)** समभाव रखता है और **(सह विमल)** विमल भाव सहित **(कलिस्ट)** दुःखी **(जीवानं)** जीवों पर **(क्रिपा)** करुणा से ओतप्रोत रहता है।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी विमल स्वभाव के सहकार पूर्वक षट्कायिक अर्थात् छह काय के जीवों पर दया भाव रखता है। प्राणी मात्र के प्रति उसके हृदय में समभाव होता है और विमल भाव सहित दुःखी जीवों के प्रति वह करुणा से ओतप्रोत रहता है।

प्रश्न १ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी की भावना कैसी होती है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी छह काय के जीवों पर दया भाव रखता है। उसके अंतरंग में सबके प्रति मैत्री भाव होता है। सब जीवों को सम भाव से देखता है। किसी के प्रति ऊँच – नीच का भेद भाव नहीं रखता; क्योंकि उसकी दृष्टि अपने द्रव्य स्वभाव पर रहती है। दीन – दु:खी जीवों पर उसके हृदय में करुणा होती है। किसी जीव को कोई कष्ट न हो, ऐसी भावना रहती है।

प्रश्न २ – सम्यक्दृष्टि व्रती श्रावक कौन-कौन सी भावनायें भाता है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि व्रती श्रावक मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ भावना भाता है।

प्रश्न ३ – मैत्री आदि भावनाओं का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – **मैत्री –** दूसरे जीवों को दु:ख न देने की भावना को मैत्री भावना कहते हैं।

प्रमोद – गुणीजनों के प्रति हर्ष पूर्वक अन्तरंग भक्ति प्रगट होने को प्रमोद भावना कहते हैं।

कारुण्य – दु:खी जीवों को देखकर उनके प्रति करुणा भाव होने को कारुण्य भावना कहते हैं। **माध्यस्थ –** जो जीव तत्त्वार्थ श्रद्धान से रहित हैं और तत्त्व का उपदेश जिन्हें अच्छा नहीं लगता ऐसे जीवों के प्रति तटस्थ रहने को माध्यस्थ भावना कहते हैं।

गाथा – २२

ममल स्वभाव की दृष्टि से कर्म क्षय

एकांत विप्रिय न दिस्टं, मध्यस्थं विमल सुद्ध सभावं ।
सुद्ध सहावं उत्तं, ममल दिस्टी च कम्म संषिपनं ।।

अन्वयार्थ – (एकांत) एकांत **(विप्रिय)** विपरीत भाव को **(न दिस्टं)** नहीं देखता, वह **(मध्यस्थं)** मध्यस्थ रहकर **(विमल)** विमल **(सुद्ध सभावं)** शुद्ध स्वभाव में रहता है **(च)** और **(सुद्ध सहावं)** जो शुद्ध स्वभाव **(उत्तं)** कहा है **(ममल)** इसी ममल स्वभाव पर **(दिस्टी)** दृष्टि रखने से **(कम्म)** कर्म **(संषिपनं)** क्षय हो जाते हैं।

अर्थ – आत्मार्थी ज्ञानी साधक एकांत और विपरीत भाव पर श्रद्धान नहीं करता, वह मध्यस्थ रहकर विमल शुद्ध स्वभाव में रहता है और श्री जिनेन्द्र भगवान ने आत्मा का जो शुद्ध स्वभाव कहा है, इसी ममल स्वभाव पर दृष्टि रखने से उसके कर्म क्षय हो जाते हैं, वस्तुतः स्वभाव साधना ही मुक्ति का मार्ग है।

प्रश्न १ – निश्चय और व्यवहार नय का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – जो अभेद के आश्रय से होता है उसे निश्चय नय कहते हैं। जो भेद के आश्रय से होता है उसे व्यवहार नय कहते हैं।

प्रश्न २ – नयों को एकांत से ग्रहण करने वाला कौन होता है ?

उत्तर – निश्चय नय को एकान्त से ग्रहण करने वाला निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार नय को एकान्त पक्ष से मानने वाला व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि है। दोनों को एक सा उपादेय मानने वाला उभयाभासी मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न ३ – ज्ञानी कौन से नय को ग्रहण करता है ?

उत्तर – ज्ञानी वस्तु स्वरूप को जानता है। वह निश्चय नय के विषयभूत शुद्धात्म तत्त्व की आराधना

करता है। ज्ञानी की दृष्टि यथार्थ होती है इसलिये वह एकांत पक्ष से नहीं निश्चय नय को ग्रहण करता है और न एकांत ही पूर्वक व्यवहार नय को मानता है। वह नयातीत समभाव में अपने स्वभाव को देखता है।

प्रश्न ४ – जीव और कर्म बंध के संबंध में नयों का क्या कथन है ?

उत्तर – जीव कर्म से बंधा हुआ है तथा स्पर्शित है यह व्यवहार नय का कथन है। जीव कर्म से अबद्ध और अस्पर्शित है ऐसा शुद्ध नय का कथन है।

प्रश्न ५ – नय पक्ष को किस प्रकार समझना चाहिये और नयातीत स्वभाव की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर – व्यवहार नय कहता है कि जीव कर्म से बंधा हुआ है जबकि निश्चय नय कहता है कि जीव कर्म से बंधा हुआ नहीं है। यह दोनों नय पक्ष हैं। कोई जीव बंध पक्ष को या कोई जीव अबंध पक्ष को ग्रहण करता है वह विकल्प को ही ग्रहण करता है। कोई जीव दोनों पक्षों को मानता है वह भी विकल्प को ग्रहण करता है परन्तु भेद और विकल्पों को छोड़कर जो जीव पक्षातीत हो जाता है वह नयातीत शुद्धात्मा को प्राप्त करता है। इस विधि से नयातीत स्वभाव की प्राप्ति होती है।

गाथा – २३

स्वभाव का विरोध करना हिंसा है

सत्वं किलिस्ट जीवा, अन्मोयं सहकार दुग्गए गमनं।
जे विरोह सभावं, संसारे सरनि दुष्य वीयंमी ॥

अन्वयार्थ – (जीवा) जो जीव **(सत्वं)** प्राणियों को **(किलिस्ट)** दुःखी करते हैं [और उनके दुःखों को अच्छा मानकर जो उसकी] **(अन्मोयं)** अनुमोदना **(सहकार)** सहकार करते हैं, उनका **(दुग्गए)** दुर्गति में **(गमनं)** गमन होता है **(जे)** जो जीव **(सभावं)** स्वभाव का **(विरोह)** विरोध करते हैं; वे **(संसारे)** संसार में **(सरनि)** परिभ्रमण, जन्म – मरण के **(दुष्य)** दुःखों का **(वीयंमी)** बीज बोते हैं।

अर्थ – जो जीव किसी भी प्राणी को दुःख देते हैं और उसकी अनुमोदना सहकार करते हैं उनका दुर्गति में गमन होता है। जो जीव स्वभाव का विरोध करते हैं अर्थात् संसारी व्यवहार और राग को धर्म मानते हैं अथवा जीव दया का पालन नहीं करते, वे संसार में जन्म – मरण के दुःखों का बीजारोपण करते हैं।

प्रश्न १ – हिंसा कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर – हिंसा दो प्रकार की होती है – १. द्रव्य हिंसा २. भाव हिंसा।

१. द्रव्य हिंसा – किसी भी प्राणी के प्राणों का घात करना, दुःख देना द्रव्य हिंसा है।

२. भाव हिंसा – राग – द्वेष आदि के भावों का उत्पन्न होना भाव हिंसा है।

प्रश्न २ – कोई भी जीव दूसरे जीवों को पीड़ा क्यों पहुँचाता है ?

उत्तर – अज्ञानी जीव आत्म स्वरूप को नहीं जानता। मात्र अपने सुख भोग की सुविधाओं को प्राप्त

करने में तल्लीन रहता है, इसमें उसे हिंसा – अहिंसा का विवेक नहीं रहता और अपनी स्वार्थ पूर्ण क्रियाओं को पूर्ण करने में दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाता है।

गाथा – २४

सम्यक्चारित्र से सिद्धि की प्राप्ति

न्यान सहाव सु समयं, अन्मोयं ममल न्यान सहकारं ।
न्यानं न्यान सरूवं, ममलं अन्मोय सिद्धि संपत्तं ॥

अन्वयार्थ – (सु समयं) स्व समय [शुद्धात्मा] **(न्यान)** ज्ञान **(सहाव)** स्वभावी है **(ममल)** इसी ममल **(न्यान)** ज्ञान स्वभाव की **(अन्मोयं)** अनुमोदना **(सहकारं)** सहकार करो **(न्यानं)** ज्ञान है वह अपना ही **(ममलं)** ममल **(न्यान सरूवं)** ज्ञान स्वरूप है **(अन्मोय)** इसमें लीन होने से **(सिद्धि)** सिद्धि की **(संपत्तं)** सम्पत्ति प्राप्त होती है।

अर्थ – स्व समय अर्थात् अपना शुद्धात्म स्वरूप ज्ञान स्वभावी है। इस ममल ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना करो, ज्ञान है वह अपना ही ममल ज्ञान स्वरूप है इसमें लीन होने से दुःखों से निर्वृत्ति, आनन्द परमानन्द की उपलब्धि, कर्मों का क्षय और सिद्धि की सम्पत्ति प्राप्त होती है।

प्रश्न १ – सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर –
१. पाप क्रिया निर्वृतिः चारित्रम् – पाप क्रियाओं से निवृत्ति को चारित्र कहते हैं।
२. जिससे अहित का निवारण और हित की प्राप्ति हो उसको चारित्र कहते हैं।
३. अर्थात् सत्पुरुष जिसका आचरण करते हैं उसको चारित्र कहते हैं। जिसके सामायिक आदि पाँच भेद हैं।
४. जो जानता है वह ज्ञान है और जो देखता है वह दर्शन है। ज्ञान और दर्शन की एकता को सम्यक्चारित्र कहते हैं।
५. स्वरूपे चरणं चारित्रं स्व समय प्रवृत्तिरित्यर्थः– स्वरूप में आचरण करना चारित्र है, स्वसमय में प्रवृत्ति करना ही धर्म है।

प्रश्न २ – सम्यक्चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर – सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं – व्यवहार सम्यक्चारित्र और निश्चय सम्यक्चारित्र।

प्रश्न ३ – व्यवहार सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – अशुभ क्रियाओं से निवृत्त होकर व्रत, समिति, गुप्ति आदि शुभ उपयोग में प्रवृत्त होने को व्यवहार सम्यक्चारित्र कहते हैं। इसे सराग चारित्र भी कहा जाता है।

प्रश्न ४ – निश्चय सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – संसार के कारणों का अभाव करने के लिये बाह्य और अभ्यंतर क्रियाओं का निरोध कर आत्म स्वरूप में लीन होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। इसे वीतराग चारित्र भी कहते हैं।

विशेष – सम्यक्चारित्र से संसार का अभाव और सिद्धि मुक्ति की प्राप्ति होती है।

गाथा – २५

इष्ट की अनुमोदना से कर्मों पर विजय

इस्टं च परम इस्टं, इस्टं अन्मोय विगत अनिस्टं ।
पर पर्जावं विलियं, न्यान सहावेन कम्म जिनियं च ॥

अन्वयार्थ – (इस्टं) ज्ञान स्वभाव इष्ट **(च)** और **(परम इस्टं)** परम इष्ट है **(इस्टं)** इष्ट ज्ञान स्वभाव की **(अन्मोयं)** अनुमोदना करने से **(अनिस्टं)** अनिष्ट रागादि भाव **(विगत)** छूट जायेंगे **(पर पर्जावं)** पर पर्यायें **(विलियं)** विला जायेंगी **(च)** और **(न्यान सहावेन)** ज्ञान स्वभाव में रहने से **(कम्म)** कर्मों पर **(जिनियं)** विजय प्राप्त होगी ।

अर्थ – त्रिकाल एक रूप रहने वाली आत्मसत्ता ज्ञान स्वभाव इष्ट और परम इष्ट है। अपने इस ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना करने से अनिष्ट रागादि विकारी भाव छूट जाते हैं, पर पर्यायें विलय हो जाती हैं और ज्ञान स्वभाव में रहने से कर्मों पर विजय प्राप्त होती है।

प्रश्न १ – ''इस्टं च परम इस्टं'' इस गाथा में आचार्य श्री तारण स्वामी जी क्या प्रेरणा दे रहे हैं ?

उत्तर – ज्ञान स्वभावी निज शुद्धात्मा इष्ट और परम इष्ट है। अपने इष्ट,चैतन्य मय शुद्धात्म स्वरूप का आश्रय करो। इससे अनिष्टकारी समस्त रागादि विकार छूट जायेंगे, पर पर्यायें विला जायेंगी। अपने ज्ञान स्वभाव में रहकर कर्मों को जीतो श्री गुरूदेव इस गाथा में यही पावन प्रेरणा दे रहे हैं।

प्रश्न २ – मोक्षमार्ग क्या है और साधक जीव इस मार्ग में किस प्रकार आगे बढ़ते हैं ?

उत्तर – व्यवहार रत्नत्रय साधन है, निश्चय रत्नत्रय साध्य है। साधक जीव प्रारम्भ से अंत तक निश्चय की मुख्यता रखकर व्यवहार को गौण करते जाते हैं। इससे साधक दशा में निश्चय की मुख्यता के बल से शुद्धता की वृद्धि होती है, अशुद्धता दूर होती जाती है। इस प्रकार निश्चय की मुख्यता रूप स्वभाव के आश्रय से साधक जीव इस मार्ग में आगे बढ़ते हैं इसलिये निश्चय रत्नत्रय की साधना ही यथार्थ मोक्षमार्ग है।

गाथा – २६

जिनेन्द्र परमात्मा के हितकारी वचन

जिन वयनं सुद्ध सुद्धं, अन्मोयं ममल सुद्ध सहकारं ।
ममलं ममल सरूवं, जं रयनं रयन सरूव संमिलियं ॥

अन्वयार्थ – (ममलं) त्रिकाल शुद्ध है वह अपना **(ममल सरूवं)** ममल स्वरूप है **(जिन)** जिनेन्द्र भगवान के **(वयनं)** वचन हैं [कि] **(सुद्ध)** निश्चय से **(सुद्धं)** शुद्ध स्वभाव है **(ममल)** यही ममल स्वरूप है **(अन्मोयं)** इसकी अनुमोदना करने **(सहकारं)** इसी में लीन रहने से **(जं)** जो **(रयनं)** रत्न के समान **(सुद्ध)** शुद्ध **(रयन सरूव)** रत्नत्रय स्वरूप है [वह] **(संमिलियं)** मिल जायेगा, प्रगट हो जायेगा।

अर्थ – ममल है, वह अपना त्रिकाल शुद्ध ममल स्वरूप है। श्री जिनेन्द्र भगवान के दिव्य वचनों में पावन संदेश प्रस्फुटित हुआ है – आत्मा का निश्चय से कर्म रहित सिद्ध स्वभाव है, यही अपना शुद्ध ममल

स्वरूप है, इसकी अनुमोदना करने से, इसी में लीन रहने से रत्न के समान रत्नत्रयमयी सिद्ध स्वरूप प्रगट हो जाता है।

प्रश्न १ – चतुर्गति रूप दु:ख से मुक्त होने का जिनेन्द्र भगवान ने क्या उपाय बताया है ?

उत्तर – जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि सहज ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त गुण समृद्धि से परिपूर्ण शुद्धात्म तत्त्व का लक्ष्य करके द्रव्य दृष्टि को प्रगट करना चतुर्गति रूप संसार के दु:खों से मुक्त होने का उपाय है।

प्रश्न २ – जिनवाणी में मुक्ति मार्ग और सिद्ध पद की प्राप्ति का क्या उपदेश है ?

उत्तर – आत्म स्वरूप ज्ञानमय है, वह शरीरादि रूप नहीं है, ऐसा दृढ़ श्रद्धान ज्ञान करके, ममल स्वभाव का बार–बार चिंतन–मनन करना। 'पर परजय हो दिस्टि न देइ, सु ममल सुभाए' पर पर्याय पर दृष्टि न देना ही ममल स्वभाव है। 'अप्पा अप्पम्मि रओ' आत्मा–आत्मा में लीन हो जाये, यही मुक्ति मार्ग है। इसी से केवलज्ञान प्रगट होता है और सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ३ – अंतर में ज्ञान और आनन्द किस प्रकार प्रगट होता है ?

उत्तर – सिद्ध परमात्मा के समान सभी आत्माओं का स्वभाव ज्ञानानन्दमयी है। ऐसा निरावलम्बी ज्ञान और सुख स्वभाव रूप मैं हूँ। ऐसा लक्ष्य में लेने पर जीव का उपयोग अतीन्द्रिय होता है और उसकी पर्याय में ज्ञान और आनन्द प्रगट हो जाता है।

गाथा – २७

स्वभाव में लीनता से श्रेष्ठ गुणों की उत्पत्ति

स्रेस्टं च गुन उवन्नं, स्रेस्टं सहकार कम्म संषिपनं।
स्रेस्टं च इस्ट कमलं, कमलसिरि कमल भाव ममलं च ॥

अन्वयार्थ – [संसार में] **(स्रेस्टं)** सर्वश्रेष्ठ **(च)** और **(इस्ट)** इष्ट, प्रयोजनीय **(कमलं)** कमल स्वभाव है [इसकी साधना से] **(स्रेस्टं गुन)** श्रेष्ठ गुण **(उवन्नं)** उत्पन्न हो जाते हैं **(च)** और **(स्रेस्टं)** श्रेष्ठ स्वभाव का **(सहकार)** सहकार करने से **(कम्म)** कर्म **(संषिपनं)** क्षय हो जाते हैं [इसलिये] **(कमलसिरि)** हे कमल श्री ! **(ममलं च)** ममल स्वभाव के आश्रय से **(कमल भाव)** कमल भाव जाग्रत करो।

अर्थ – संसार में सर्वोत्कृष्ट प्रयोजनीय अपना कमल स्वभाव है, इसकी साधना से साधक के जीवन में श्रेष्ठ गुण उत्पन्न हो जाते हैं और श्रेष्ठ स्वभाव का सहकार करने से कर्म क्षय हो जाते हैं, निर्जरित हो जाते है, इसलिये हे कमल श्री ! ममल स्वभाव के आश्रय से कमल भाव जाग्रत करो।

प्रश्न १ – साधना से कौन–कौन से गुण प्रगट होते हैं, और कमलश्री को श्री गुरू ने क्या प्रेरणा दी है ?

उत्तर – कमल श्री को प्रेरणा देते हुए श्री गुरू महाराज ने कहा है कि सर्वोत्कृष्ट, परम इष्ट अपना ममल स्वभाव है। इसकी साधना करने से श्रेष्ठ गुण, पंच परमेष्ठी पद, दशलक्षण धर्म, रत्नत्रय, अनन्त चतुष्टय आदि अनन्त गुण प्रगट होते हैं, कर्म क्षय हो जाते हैं इसलिये हे कमल श्री ! अपना ज्ञायक वीतराग भाव जाग्रत करो।

प्रश्न २ – स्वानुभव होने पर भी चारित्र में मलिनता किस कारण से होती है ?

उत्तर – भेदज्ञान पूर्वक निज का आश्रय लेने पर जो आत्म धर्म प्रगट होता है, वह अनुभव प्रकाश है। उस समय चारित्र गुण की मिश्र दशा होने पर आंशिक निर्मलता व आंशिक मलिनता होती है। उस मलिनता में कर्म का उदय निमित्त मात्र है वस्तुत: वह स्वयं के पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण होती है।

गाथा – २८

महिमा मय हैं जिन वचन

जिन वयनं सहकारं, मिथ्या कुन्यान सल्य तिक्तं च।
विगतं विसय कसायं,न्यानं अन्मोय कम्म गलियं च ॥

अन्वयार्थ – (जिन) जिनेन्द्र भगवान के **(वयनं)** वचन **(सहकारं)** [स्वीकार] करने से **(मिथ्या)** मिथ्यात्व **(कुन्यान)** कुज्ञान **(च)** और **(सल्य)** शल्य **(तिक्तं)** छूट जाती हैं **(विसय)** विषय **(च)** और **(कसायं)** कषायों का **(विगतं)** अभाव हो जाता है **(न्यानं)** ज्ञान स्वभाव में **(अन्मोय)** लीन होने से **(कम्म)** कर्म **(गलियं)** गल जाते हैं।

अर्थ – परम वीतरागी परमात्मा श्री जिनेन्द्र भगवान के वचन स्वीकार करने से मिथ्यात्व, कुज्ञान और शल्यों का अभाव हो जाता है। विषय – कषाय कहाँ चले जाते हैं, ढूंढने से भी मिलते नहीं हैं। ज्ञान स्वभाव में लीन होने से अनादिकालीन समस्त कर्म क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न १ – जिन वचन रूप जिनवाणी की क्या विशेषता है ?

उत्तर – अरिहंत परमात्मा की दिव्य ध्वनि से आई हुई वाणी को जिनवाणी कहते है। मंदिर विधि में जिनवाणी को श्री कहा गया है और उसके पाँच विशेषण बतलाये गये हैं –'श्री कहिये शोभनीक, मंगलीक, जय जयवंत, कल्याणकारी, महासुखकारी' इस प्रकार जिनवाणी पाँच विशेषणों से युक्त महिमामय है।

प्रश्न २ – ज्ञानी को सम्यक्चारित्र होता है या करना पड़ता है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र होता है। जीव की पात्रता और पुरुषार्थ के अनुसार सम्यक्चारित्र स्वयमेव होता है, करना नहीं पड़ता। जैसे–बीज बोने के बाद उसमें अंकुर, पत्ती, फल–फूल अपने आप लगते हैं, लगाना नहीं पड़ते। इसी प्रकार मोक्ष मार्ग में सम्यक्दृष्टि ज्ञानी को सम्यक्चारित्र स्वयमेव होता है।

प्रश्न ३ – ज्ञानी की पहिचान क्या है ?

उत्तर – ज्ञानी समता शांति में ज्ञायक रहता है। तत् समय की योग्यतानुसार सारा परिणमन चलता है, इससे वह भ्रमित भयभीत नहीं होता है, न उसे कोई चाहना–कामना होती है, हर दशा में हर समय आनन्द में रहता है, यह ज्ञानी की पहिचान है।

गाथा – २१

षट् कमल की साधना से कर्म क्षय

कमलं कमल सहावं, षट् कमलं तिअर्थ ममल आनंदं ।
दर्सन न्यान सरूवं, चरनं अन्मोय कम्म संषिपनं ।।

अन्वयार्थ – (कमलं) कमल के समान [आत्मा का ज्ञायक] **(कमल सहावं)** कमल स्वभाव है **(षट् कमलं)** षट् कमल के द्वारा **(तिअर्थ)** रत्नत्रय मयी [आत्मा के] **(ममल)** ममल स्वभाव के **(आनंदं)** आनंद में रहो **(दर्सन)** सम्यग्दर्शन **(न्यान)** सम्यग्ज्ञान **(चरनं)** सम्यक्चारित्र मयी **(सरूवं)** स्वरूप में **(अन्मोय)** लीन होने से **(कम्म)** कर्म **(संषिपनं)** क्षय हो जाते हैं।

अर्थ – कमल के समान अपना ज्ञायक वीतराग स्वभाव है। षट्कमल की साधना के माध्यम से रत्नत्रयमयी ममल स्वभाव के आनंद में आनन्दित रहो। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रमयी स्वरूप में लीन होने से कर्म निर्जरित हो जाते हैं, क्षय हो जाते हैं और मुक्ति की अनंत आनंदमयी संपत्ति प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न १ – कमल स्वभावी आत्मा की क्या विशेषता है ?

उत्तर – आत्मा, कमल स्वभाव अर्थात् ज्ञायक स्वभाव है। जैसे – कमल पानी और कीचड़ में रहता हुआ भी कीचड़ पानी से निर्लिप्त न्यारा रहता है, उसी प्रकार आत्मा, शरीरादि कर्मों से निर्लिप्त रहता है। यही कमल स्वभावी आत्मा की विशेषता है।

प्रश्न २ – ध्यान अग्नि की क्या विशेषता है ?

उत्तर – जैसे बहुत समय से इकट्ठे हुए ईंधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला देती है, वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि अनंत कर्म रूपी ईंधन को क्षण भर में भस्म कर देती है। यही ध्यान अग्नि की विशेषता है।

प्रश्न ३ – आत्मा आनन्द की अनुभूति में कैसे डूबता है ?

उत्तर – जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्रमा के योग से समुद्र में ज्वार आता है, उसी प्रकार सिद्ध स्वरूपी पूर्ण शुद्धात्म स्वरूप को स्थिरता पूर्वक निहारने से अन्तर में चेतना उछलती है, चारित्र सुख और वीर्य प्रगट होता है। उस दशा में अनन्त गुणों मयी आत्मा अपूर्व आनन्द की अनुभूति में डूबता है।

प्रश्न ४ – षट् कमल की साधना का अभ्यास कैसे करना चाहिये ?

उत्तर – गुप्त कमल, नाभि कमल, हृदय कमल, कंठ कमल, मुख कमल और विंद कमल यह छह कमल होते हैं। छत्तीस अर्क में से प्रत्येक कमल की (चित्र में दर्शायी गई पंखुड़ियों की संख्या के अनुसार) पंखुड़ियों में अर्क स्थित करके ध्यान करना चाहिये, यह षट् कमल की साधना है।

गाथा – ३०

ज्ञान विज्ञानमयी स्वभाव में रहने की प्रेरणा

संसार सरनि नहु दिस्टं, नहु दिस्टं समल पर्जाव सभावं ।
न्यानं कमल सहावं, न्यानं विन्यान कमल अन्मोयं ॥

अन्वयार्थ – [हे कमल श्री] **(संसार)** संसार के **(सरनि)** परिभ्रमण को **(नहु दिस्टं)** मत देखो **(समल)** रागादि रूप विकारी **(पर्जाव सभावं)** पर्याय,विभाव परिणमन **(नहु दिस्टं)** को भी मत देखो **(कमल)** कमल **(सहावं)** स्वभाव **(न्यानं)** ज्ञानमयी है **(न्यानं विन्यान)** ज्ञान विज्ञान सहित **(कमल)** ज्ञायक स्वभाव की **(अन्मोयं)** अनुमोदना करो ।

अर्थ – हे कमल श्री ! संसार के परिभ्रमण को मत देखो, रागादि रूप जो विकारी पर्याय अर्थात् कर्मोदय जनित विभाव परिणमन है, इसको भी मत देखो, अपना कमल स्वभाव ज्ञानमयी है। ज्ञान विज्ञान सहित ज्ञायक स्वभाव की अनुमोदना करो, स्वभाव के आश्रय से ही आत्म कल्याण होता है।

प्रश्न १ – ''संसार सरनि नहु दिस्टं'' इस गाथा का क्या आशय है ?

उत्तर – ज्ञान स्वभाव का आश्रय करने से रागादि विकारी भाव उत्पन्न नहीं होते, अशुद्ध पर्याय का अभाव हो जाता है तथा संसार परिभ्रमण छूट जाता है।

प्रश्न २ – राग – द्वेष को मिटाने का क्या उपाय है ?

उत्तर – राग – द्वेष को मिटाने के लिये निरंतर यह विचार करना चाहिये कि अपने न चाहने पर भी अनुकूलता – प्रतिकूलता आती है, संयोग – वियोग होता है, क्योंकि अनुकूलता – प्रतिकूलता, संयोग – वियोग, हानि – लाभ, जीवन – मरण यह सब पूर्व कर्म उदयानुसार होते हैं, इसलिये इन्हें अच्छा – बुरा नहीं मानना, अपना आत्म स्वरूप इन सबसे भिन्न है। यह निर्णय करना ही राग – द्वेष को मिटाने का उपाय है।

गाथा – ३१

जिनेन्द्र भगवान का कल्याणकारी दिव्य संदेश

जिन उत्तं सद्दहनं, सद्दहनं अप्प सुद्धप्प ममलं च ।
परम भाव उपलब्धं, परम सहावेन कम्म विलयंति ॥

अन्वयार्थ – (जिन) जिनेन्द्र भगवान के **(उत्तं)** कहे हुए वचनों पर **(सद्दहनं)** श्रद्धान करो [कि] **(अप्प)** मैं आत्मा **(ममलं)** ममल स्वभावी **(सुद्धप्प)** शुद्धात्मा हूं **(सद्दहनं)** ऐसे श्रद्धान से **(परम भाव)** परम पारिणामिक भाव **(उपलब्धं)** उपलब्ध होता है **(च)** और **(परम)** परम, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट **(सहावेन)** स्वभाव में रहने से **(कम्म)** कर्म **(विलयंति)** विला जाते हैं ।

अर्थ – वीतरागी परमात्मा केवलज्ञानी श्री जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए वचनों पर श्रद्धान करो कि मैं आत्मा स्वभाव से ममल स्वभावी शुद्धात्मा परमात्मा हूँ। ऐसे यथार्थ श्रद्धान से परम भाव उपलब्ध होता है और अपने परम पारिणामिक ममल स्वभाव में रहने से कर्म विलीन हो जाते हैं, यही मुक्ति का मार्ग है।

प्रश्न १ – 'जिन उत्तं सद्दहनं' का क्या अर्थ है ?

उत्तर – जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि तीन काल और तीन लोक में शुद्ध निश्चय नय से मैं आत्मा शुद्धात्मा परमात्मा हूँ। ऐसा श्रद्धान करो यही 'जिन उत्तं सद्दहनं' का अर्थ है।

प्रश्न २ – जीव के भाव कितने प्रकार के होते हैं और उनका फल क्या होता है ?

उत्तर – जीव के भाव दो प्रकार के होते हैं – शुद्ध भाव और अशुद्ध भाव। इनमें अशुद्ध भाव के दो भेद हैं – शुभ भाव और अशुभ भाव। इनका फल इस प्रकार है – शुभ भाव और शुभ क्रिया से पुण्य कर्म का बंध होता है, इससे स्वर्गादि सद्गति प्राप्त होती है। अशुभ भाव और अशुभ क्रिया से पाप कर्म का बंध होता है, जो दुर्गति का कारण है। शुद्ध भाव धर्म है इससे पूर्व बद्ध कर्म क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न ३ – वीतरागता और उसका फल क्या है ?

उत्तर – मोक्ष का कारण राग – द्वेष मोह से रहित सम भाव अर्थात् वीतरागता है। वीतरागता शुद्धात्मा के लक्ष्य पूर्वक होती है। वीतरागता पूर्वक होने वाला सम्यक्चारित्र मुक्ति का मार्ग है। वीतरागता से संवर और निर्जरा होती है।

प्रश्न ४ – साधक द्वन्दातीत किस प्रकार होता है ?

उत्तर – साधक का सम्बन्ध ध्रुव स्वभाव के साथ रहता है, प्रति क्षण परिवर्तनशील पर्याय के साथ नहीं, इसलिये वह समता में रहता है। वह क्रमबद्ध परिणमन पर अटल रहता है अतः अंतरंग में विकल्प नहीं होते। साधक के अंतर में ऐसी समता आना ही द्वन्दातीत होना है।

गाथा – ३२

जिन वचनों को स्वीकार करने से मुक्ति गमन

जिन दिस्टि उत्त सुद्धं, जिनयति कम्मान तिविह जोएन।
न्यानं अन्मोय विन्यानं, ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च ॥

अन्वयार्थ – (जिन) जिनेन्द्र भगवान **(उत्त)** कहते हैं कि **(सुद्धं)** जो ज्ञानी शुद्ध **(दिस्टि)** दृष्टि सहित हैं वह **(तिविह)** तीन प्रकार के **(जोएन)** योग की एकता से **(कम्मान)** कर्मों को **(जिनयति)** जीत लेते हैं **(च)** और **(न्यानं)** ज्ञान **(विन्यानं)** विज्ञान मयी **(ममल सरूवं)** ममल स्वरूप में **(अन्मोय)** लीन होकर **(मुक्ति)** मुक्ति को **(गमनं च)** प्राप्त करते हैं।

अर्थ – परम पद में स्थित श्री जिनेन्द्र परमात्मा का कल्याणकारी दिव्य संदेश है – जो सम्यक्ज्ञानी साधक शुद्ध दृष्टि सहित हैं, आत्मा के श्रद्धान ज्ञान की निर्मलता को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है, वे तीन प्रकार के योग की एकता से कर्मों को जीत लेते हैं और ज्ञान विज्ञानमयी ममल स्वभाव में लीन होकर अनन्त सुख स्वरूप अविनाशी मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न १ – मुक्ति को प्राप्त करने का अधिकारी कौन है ?

उत्तर – जिनेन्द्र परमात्मा के वचनों को स्वीकार कर जो भव्य जीव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान पूर्वक अपने ज्ञानानंद स्वभाव का सतत् अनुभव करता है, ऐसा सम्यक्दृष्टि ज्ञान भाव में रहता हुआ कर्मों की निर्जरा कर मुक्ति को प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

प्रश्न २ – वर्तमान में मुक्ति क्या है ?

उत्तर – अज्ञान जनित मान्यताओं को ज्ञान बल से दूर कर आत्मा को स्वभाव से अकर्ता – अभोक्ता और आनंद स्वरूप जानना । मैं आत्मा परमात्मा ही हूँ ऐसे दृढ़ निश्चय श्रद्धान सहित अपने ममल स्वभाव में रहना वर्तमान में मुक्ति है ।

प्रश्न ३ – बंध और मोक्ष का आधार क्या है ?

उत्तर – राग और द्वेष से की गई प्रवृत्ति से जीव को कर्म का बंध होता है । प्रयोजनभूत तत्त्वों के सच्चे श्रद्धान पूर्वक की गई राग – द्वेष की निवृत्ति से मोक्ष होता है । यही बंध और मोक्ष का आधार है ।

प्रश्न ४ – आत्मानुभव के अमृत रस की क्या महिमा है ?

उत्तर – आत्मानुभव के अमृत रस की अद्वितीय महिमा है । अंतर में इसका अनुभव होने पर वीतरागता, शुक्ल ध्यान, श्रेणी आरोहण, घातिया कर्मों का क्षय, अरिहंत पद और अंत में सिद्ध पद की प्राप्ति होती है ।

आचार्य तारण स्वामी कृत ग्रंथों में

सम्यक्चारित्र

न्यानं दंसन सम्मं, सम भावना हवदि चारित्तं ।
चरनंपि सुद्ध चरनं, दुविहि चरनं मुनेयव्वा ॥

अर्थ – शुद्ध आचरण को चारित्र कहते हैं । सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सहित जो सम भावना (वीतराग परिणति) होती है इसको सम्यक्चारित्र कहते हैं । सम्यक्चारित्र को दो प्रकार का जानना चाहिये ।

(श्री ज्ञान समुच्चय सार जी, गाथा – २६२)

सम्मत्त चरन पढमं, संजम चरनंपि होइ दुतियं च ।
सम्मत्त चरन सुद्धं, पच्छादो संजमं चरनं ॥

अर्थ – पहला सम्यक्त्वाचरण चारित्र है और दूसरा संयमाचरण चारित्र है । सम्यक्त्वाचरण चारित्र से शुद्ध होने के पश्चात् संयमाचरण चारित्र प्रगट होता है ।

(श्री ज्ञान समुच्चय सार जी, गाथा – २६३)

आचरनं स्थिरी भूतं, सुद्ध तत्व तिअर्थकं ।
उवंकारं च वेदंते, तिस्टते सास्वतं ध्रुवं ॥

अर्थ – ज्ञानी जन ॐकार स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं, शाश्वत ध्रुव स्वभाव में तिष्ठते हैं और रत्नत्रय मयी शुद्ध तत्त्व में स्थिर होते हैं यही सम्यक्चारित्र है ।

(श्री श्रावकाचार जी, गाथा – २५३)

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

द्वितीय वर्ष (परिचय)
प्रश्न पत्र – श्री कमल बत्तीसी

समय – ३ घंटा | अभ्यास के प्रश्न – गाथा १७ से ३२ | पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) ....से रहित अनंत गुणोंमयी निज शुद्धात्मा अपना इष्ट है।
(ख) आत्मा, आत्म स्वभावमय है, वह........रहित है।
(ग) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी एकांत और........भाव को नहीं देखता।
(घ) ज्ञानी........नय के विषयभूत शुद्धात्म तत्त्व की आराधना करता है। (ङ) जिन दिस्टि इस्टि........।

प्रश्न २ –सत्य/असत्य कथन लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) तीन लोक, तीन काल में शुद्ध निश्चय नय से मैं आत्मा शुद्धात्मा परमात्मा हूँ।
(ख) परम सहावेन कम्म विलयंति।
(ग) राग – द्वेष पूर्वक की गई प्रवृत्ति से जीव को कर्म बंध होता है।
(घ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सहित जो सम भावना होती है इसको सम्यक्चारित्र कहते हैं।
(ङ) अप्पा अप्प सहावं, अप्प सुद्धप्प विमल परमप्पा।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) जो प्राणियों को दुःखी करते हैं उनका गमन होता है –(१) सुगति (२) दुर्गति (३) नरक (४) स्वर्ग
(ख) सज्जन जिसका आचरण करते हैं उसे कहते हैं – (१) चारित्र (२) ज्ञान (३) ध्यान (४) सदाचार
(ग) शोभनीक, मंगलीक, जय जयवंत आदि कल्याणकारी विशेषण हैं –(१) देव (२) जिनवाणी (३) धर्म (४) गुरु
(ङ) मोक्ष का आधार है– (१) तत्व श्रद्धान (२) पुण्य कार्य (३) दया दान (४) सद्कार्य
(घ) जिन उत्तं जिन वयनं, जिन सहकारेन–
(१) कलिस्ट जीवानं (२) मुक्ति गमनं च (३) कम्म संषिपनं (४) दुष्य वीयंमी

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
मोक्ष	राग द्वेष रूप प्रवृत्ति
ममल स्वभाव	ज्ञान स्वरूप
न्यान सरूव	राग द्वेष से निवृत्ति
बंध	अज्ञान
स्वभाव का विस्मरण	ज्ञायक स्वभाव

प्रश्न ५ – अति लघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में) (अंक ४ x ५ = २०)

(क) मिथ्यात्व कषाय कर्मादि को जीतने का मूल आधार क्या है ? (ख) सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?
(ग) नयों को एकांत से ग्रहण करने वाला कौन होता है ? (घ) आत्मधर्म की क्या महिमा है ?
(ङ) जीव के लिए अनिष्टकारी क्या है ?

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ६ x ५ = ३०)

(क) सम्यग्दृष्टि कौन सी भावनाएँ भाता है ? उनका क्या स्वरूप है ? (घ) मैत्री आदि भावनाओं का स्वरूप लिखिए।
(ख) ''अन्यानं नहु दिस्टं'' गाथा का क्या अभिप्राय है ? (ग) सम्यक्चारित्र के भेद समझाइये।
(ङ) नय पक्ष को किस प्रकार समझना चाहिए। अथवा नयातीत स्वभाव की प्राप्ति कैसे होती है ?

प्रश्न ७ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (अंक १ x १० = १०)

(क) गाथा १७ से ३२ का संक्षिप्त भावार्थ लिखिये। अथवा
श्री कमल बत्तीसी जी ग्रन्थ के आधार पर सम्यक्चारित्र पर एक निबंध लिखिये।

ग्रन्थकार : संक्षिप्त जीवन परिचय

भारत के इतिहास में अनेक महापुरुष अवतरित हुए हैं, जिन्होंने जनसामान्य के मन–मस्तिष्क पर अपने उज्ज्वल चरित्र और आदर्श जीवन की अमिट छाप छोड़ी है। पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया उन्हीं में से एक हैं। उनके बलिदान, त्याग और सेवाओं की लम्बी फेहरिस्त (सूची) है, जो देश और समाज के प्रति उनके उल्लेखनीय योगदान की गवाही देती है। यही कारण है कि जैन समाज को आज भी उन पर नाज है, गौरव है।

बालक गोपालदास का जन्म भारतदेश के उत्तरप्रदेश प्रान्त के आगरा शहर में सन् १८६७ अर्थात् विक्रम संवत् १९२३ चैत्र कृष्ण द्वादशी के दिन वरैया जातिज और एछिया गोत्रज लाला लक्ष्मणदास जैन के परिवार में हुआ था। राजस्थान के अजमेर शहर में उनका परिचय एक जैन सद्गृहस्थ, स्वाध्यायी श्री मोहनलाल जैन की प्रेरणा से जैन साहित्य से हुआ। तभी से उनके जीवन में एक बड़ा परिवर्तन हुआ और उनकी जैनधर्म के प्रति आस्था वृद्धिङ्गत होती गयी। आपने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बल पर, बिना गुरुगम के जैनदर्शन के अनेकों ग्रन्थों का अध्ययन और उनके रहस्यों को हृदयङ्गम किया। यद्यपि पञ्चाध्यायी आदि कुछ ग्रन्थों को पढ़ने में उन्होंने पं. श्री बलदेवदास आगरा का सहयोग लिया था तथापि अधिकांश ग्रन्थों का अध्ययन उन्होंने स्वयमेव किया।

संस्कृत एवं अर्द्धमागधी भाषा के प्रति उपेक्षाभाव देखकर उन्हें अत्यन्त पीड़ा का अनुभव हुआ और उन्होंने मुरैना (मध्यप्रदेश) में एक जैन संस्कृत विद्यालय की स्थापना की।

जैन साहित्य के अध्ययन हेतु उन्होंने श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालय की स्थापना भी की और निःस्वार्थ भावना से उन्होंने शिक्षा, साहित्य और सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने में अपनी महती भूमिका का निर्वाह किया। पूर्ण मनोयोग से जैनधर्म और दर्शन की प्रभावना हेतु देशभर में स्वाध्याय की प्रवृत्ति चलाकर प्रचार–प्रसार किया। उनकी बुद्धिमत्ता और धर्म के प्रति रुझान को देखकर जैन समाज ने उन्हें अनेक उपाधियों से सम्मानित किया। जैसे – स्याद्वादवारिधि, वादीगजकेसरी, न्यायवाचस्पति आदि। श्री गोपालदासजी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत जैनमित्र नामक पाक्षिक पत्रिका से की, जो आज भी भारत के सूरत नामक शहर से प्रकाशित होती है।

पं. गोपालदासजी ने जैनदर्शन के सैद्धांतिक विषयों को समाहित करते हुए अनेक रचनायें लिखीं, इनमें भी उन्होंने अनेक सैद्धांतिक विषयों का समावेश अत्यन्त, सहज, सरल शैली में किया। उनकी प्रमुख पुस्तकों में श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और श्री जैन सिद्धान्त दर्पण हैं। आपने बहुचर्चित सुशीला उपन्यास भी तत्कालीन नवयुवकों में चेतना जागृत करने के उद्देश्य से लिखा था, जो कि धर्म विमुख हो रहे थे। इनके अलावा भी आपके द्वारा लिखित कुछ लेख हैं। जैसे – जैन जागरफी, जैन सिद्धांत सार्वधर्म, उन्नति, आत्महित (भाषण) सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा आदि। उनकी सर्वतोमुखी सफलता का मूलश्रेय निःस्वार्थ सेवा भावना को ही जाता है।

उन्होंने मुरैना स्थित संस्कृत विद्यालय के जरूरतमन्द छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदानकर समाजसेवा के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया। उन्होंने कभी भी अपने लौकिक स्वार्थ के लिए धार्मिक कार्य नहीं किये। धार्मिक दृष्टि से भी आप उज्ज्वल चारित्र के धारक थे, पंचाणुव्रतों का पालन दृढ़ता से करते थे।

आपने अपना सम्पूर्ण जीवन प्राणीमात्र के हित के लिए व्यतीत किया और व्यापार के क्षेत्र में भी उन्होंने पूर्ण ईमानदारी का परिचय दिया।

एक बार जब मुरैना के बाजार में आग लग गयी तो दूसरे व्यापारियों की तरह उन्हें भी बड़ा आर्थिक नुकसान हुआ। सबके व्यापार का बीमा था। यद्यपि अनेक व्यापारियों ने बीमा कम्पनी से अपने माल से बहुत ज्यादा राशि वसूल की तथापि गोपालदासजी ने मात्र अपने नुकसान की रकम को ही बीमा कम्पनी के सामने प्रस्तुत किया।

पं. गोपालदासजी अपने जीवन में छोटी – छोटी बातों पर भी ध्यान देते थे। एक बार उनकी पत्नी ने उनको बिना बताये विद्यालय के बढ़ई से अपने बच्चों के लिए कुछ खिलौने बनवा लिये, जिसे बनाने में उसे मात्र दो घण्टे का समय लगा। जब गोपालदासजी को यह पता चला तो वे काफी नाराज हुए और उतने काम की राशि विद्यालय के खाते में जमा करा दी। जब अन्य लोगों ने उनसे पूछा कि आपने इतनी छोटी सी राशि की चिन्ता क्यों की तो उन्होंने कहा कि पाप का प्रारम्भ छोटे पाप से ही होता है, वही आगे जाकर बड़े पाप का रूप धारण करता है।

ऐसी अनेक घटनायें उनके जीवन में घटित हुईं, जो उनके 'सादा जीवन, उच्च विचार' की सूक्ति को चारितार्थ करती हैं। उनके कार्य उनके उज्जवल विचारों के दर्पण थे। वे एक ईमानदार, धार्मिक और न्यायप्रिय व्यक्ति थे। उनका देहावसान मात्र ५१ वर्ष की अल्पायु में सन् १९१७ अर्थात् वि. सं. १९७३ चैत्र वदी पंचमी के दिन उनकी कर्मस्थली मुरैना में हुआ।

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका : संक्षिप्त परिचय

सर्वप्रथम गुरुवर्य स्वर्गीय श्री पं. गोपालदास वरैयाजी ने 'श्री जैन सिद्धान्त दर्पण' नामक एक स्वतन्त्र कृति की रचना की। यद्यपि यह उनकी सर्वप्रथम कृति है, तथापि इसमें उनकी अद्भुत प्रौढ़ता का परिचय मिलता है, इस कृति के संबंध में पं. श्री फूलचंद सिद्धान्तशास्त्री के विचार दृष्टव्य हैं –

''यद्यपि जैन सिद्धांत का रहस्य प्रगट करने वाले श्री कुन्दकुन्दाचार्य के समान महान आचार्यों के बनाये हुए बड़े – बड़े अनेक ग्रन्थ अब भी मौजूद हैं, पर उनका असली ज्ञान प्राप्त करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है; इसलिए जिस तरह सुचतुर लोग जहाँ पर कि सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, वहाँ पर भी बड़े–बड़े चमकीले दर्पण आदि पदार्थों के द्वारा रोशनी पहुँचाकर अपना काम चलाते हैं, उसी तरह जटिल जैन सिद्धान्तों के पूर्ण प्रकाश को किसी तरह इन जीवों के हृदय मन्दिर में पहुँचाने के लिए 'जैन सिद्धान्त दर्पण' की आवश्यकता है। शायद आपने ऐसे पहलदार दर्पण भी देखे होंगे, जिनके द्वारा उलट – फेरकर देखने से भिन्न – भिन्न पदार्थों का प्रतिभास होता है, उसी तरह इस 'जैन सिद्धान्त दर्पण' के भिन्न – भिन्न अधिकारों द्वारा सिद्धांत विषयक भिन्न – भिन्न पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा।''

इसी प्रकार जिनागम में प्रवेश करने के उद्देश्य से उन्होंने बालावबोधिनी 'श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका' की रचना की। यद्यपि परवर्ती चिन्तकों को यह रचना भी क्लिष्ट जान पड़ी तो उन्होंने इसे आधार बनाकर लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका की रचना की।

यह सम्पूर्ण रचना ६७१ प्रश्नोत्तरों में निबद्ध है। इस रचना को पाँच प्रमुख अध्यायों में विभक्त किया गया है। यद्यपि उन्होंने अध्यायों का नामकरण नहीं किया है; लेकिन उन्होंने अध्यायों को उनकी विषय वस्तु

के आधार पर ही विभाजित किया है। सम्पादक ने इन अध्यायों को द्रव्य–गुण–पर्याय, कर्म का स्वरूप, जीव की खोज, मुक्ति के सोपान और अधिगम के उपाय नामक शीर्षकों से उल्लिखित किया है –

प्रथम अध्याय : द्रव्य – गुण – पर्याय

इस अध्याय में द्रव्य – गुण – पर्याय का सामान्य स्वरूप, उनके भेद–प्रभेद आदि का विस्तार से वर्णन प्रश्न क्रमांक १ से १३४ तक किया गया है। इसके अन्तर्गत सामान्यगुण, विशेषगुण, पुद्गलस्कन्ध, पाँच शरीर, उत्पाद – व्यय – ध्रौव्य, लोक – अलोक, अस्तिकाय, अनुजीवी – प्रतिजीवी गुण, चार अभाव 'श्रद्धा ज्ञान चारित्र' ज्ञान –दर्शन – सुख – वीर्य आदि विषयों का भी यथा सम्भव वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय : कर्म का स्वरूप

इस अध्याय में संसारी जीव के साथ सम्बद्ध कर्मों का स्वरूप प्रश्न क्रमांक १३५ से ३४१ तक कुल २०७ प्रश्नोत्तरों के द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत चार प्रकार के कर्मबन्ध, उनके भेद–प्रभेद, १४८ प्रकार के कर्म, जीवविपाकी आदि कर्म, उनके भेद, घाति–अघाति कर्म, सर्वघाति – देशघातिकर्म, पाप – पुण्यकर्म आदि, सागर, पल्य आदि काल, कर्मों की उदय, उदीरणा आदि अवस्थाएँ, निषेक स्पर्द्धक, वर्गणा, वर्ग, अविभाग प्रतिच्छेद, समयप्रबद्ध, गुणहानि आदि जैन गणितीय विषय, आस्रव और उसके भेद, आस्रव के कारण–मिथ्यात्व –अविरति–प्रमाद–कषाय योग तथा उनके द्वारा होने वाले बन्ध, उपादान – निमित्तकारण आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

(शेष अध्याय आगामी वर्ष में)

गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदास वरैया द्वारा रचित

श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका

(मंगलाचरण – उपजाति छन्द)

नत्वा जिनेन्द्रं गत सर्व दोषं, सर्वज्ञ देवं हित दर्शकं च।
श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिके यं, विरच्यते स्वल्प धियां हिताय ॥

अर्थ – मैं **(गत सर्व दोषं)** सर्वदोषों से रहित वीतरागी **(सर्वज्ञ देवं)** सर्वज्ञदेव **(च)** और **(हित दर्शकं)** परम हितोपदेशी – ऐसे **(जिनेन्द्रं)** जिनेन्द्र परमात्मा को **(नत्वा)** नमस्कार करके **(स्वल्प धियां हिताय)** अल्पबुद्धि के धारक जीवों के हित के लिए **(इयं)** यह **(श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका)** श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका **(विरच्यते)** लिखता हूँ।

विशेषार्थ – यहाँ ग्रन्थकार ने मंगलाचरण करते हुए जिनेन्द्र परमात्मा के तीन गुण–वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी का स्मरण करते हुए उन्हें नमस्कार किया है तथा ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हुए वे लिखते हैं कि मैंने यह श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका, अत्यन्त अल्पबुद्धि के धारक जीवों को ध्यान में रखकर बनाई है अर्थात् विशेष बुद्धिमानजन इसे पढ़कर किसी प्रकार का विसंवाद न करें – ऐसी प्रार्थना भी इसमें सम्मिलित है अर्थात् इससे उनकी विनम्रता का परिचय भी मिलता है।

प्रथम अध्याय

द्रव्य– गुण – पर्याय

(दोहा)

द्रव्य – गुण – पर्याय का, जो नित होवे ज्ञान ।
शीघ्र मिले सम्यक्त्व पद, पावे पद निर्वाण ॥

१.१ द्रव्य और गुण

प्रश्न ००१ – द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

(प्रश्न – विश्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं।) (–लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न १)

प्रश्न ००२ – गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों और उसकी सर्व अवस्थाओं में रहते हैं उन्हें गुण कहते हैं।

प्रश्न ००३ – गुण के कितने भेद हैं ?

उत्तर – गुण के दो भेद हैं – सामान्य और विशेष।

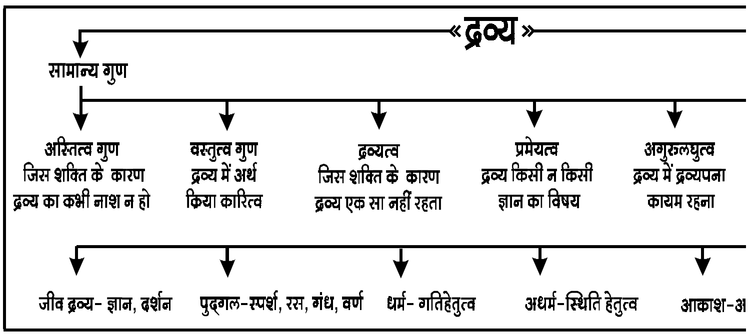

प्रश्न ००४ – सामान्यगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो सब द्रव्यों में समानरूप से रहते हैं उन्हें सामान्यगुण कहते हैं।

प्रश्न ००५ – विशेषगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने – अपने द्रव्य में रहते हैं उन्हें विशेषगुण कहते हैं।

प्रश्न ००६ – सामान्यगुण कितने हैं ?

उत्तर – सामान्यगुण अनेक हैं, लेकिन उनमें छह मुख्य हैं। जैसे–अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व गुण।

प्रश्न ००७ – अस्तित्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी नाश नहीं होता है उसे अस्तित्वगुण कहते हैं।

प्रश्न ००८ – वस्तुत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थक्रिया होती है उसे वस्तुत्वगुण कहते हैं। जैसे–घड़े की अर्थक्रिया जल धारण करना है।

प्रश्न ००९ – द्रव्यत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण द्रव्य सर्वदा एक–सा नहीं रहता और जिसकी पर्यायें (दशाऐं) हमेशा बदलती रहती हैं उसे द्रव्यत्वगुण कहते हैं।

प्रश्न ०१० – प्रमेयत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय होता है उसे प्रमेयत्वगुण कहते हैं।

प्रश्न ०११ – अगुरुलघुत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं परिणमता और एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं परिणमता और द्रव्य में रहने वाले अनन्त गुण बिखर कर अलग–अलग नहीं होते हैं उसे अगुरुलघुत्वगुण कहते हैं।

प्रश्न ०१२ – प्रदेशत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य होता है उसे प्रदेशत्वगुण कहते हैं।

१.२ द्रव्यों के भेद एवं स्वरूप

प्रश्न ०१३ – द्रव्यों के कितने भेद हैं ?

उत्तर – द्रव्यों के छह भेद हैं – जीव , पुद्गल, धर्म , अधर्म, आकाश और कालद्रव्य।

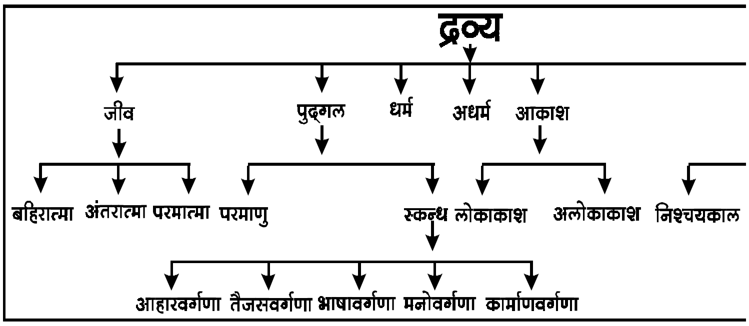

प्रश्न ०१४ – जीवद्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें चेतना आदि गुण पाये जाते हैं उसे जीवद्रव्य कहते हैं।

प्रश्न ०१५ – पुद्गलद्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि गुण पाये जाते हैं उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं।

प्रश्न ०१६ – पुद्गल के कितने भेद हैं ?

उत्तर – पुद्गल के दो भेद हैं – परमाणु और स्कन्ध।

प्रश्न ०१७ – परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता –ऐसे सबसे सूक्ष्म पुद्गल को परमाणु कहते हैं, यही वास्तव में पुद्गलद्रव्य है।

प्रश्न ०१८ – स्कन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनेक परमाणुओं के बन्ध (समूह) को स्कन्ध कहते हैं। (अनेक अर्थात् दो या दो से अधिक)

प्रश्न ०१९ – बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनेक वस्तुओं में एकपने का ज्ञान कराने वाले सम्बन्ध विशेष को बन्ध कहते हैं।

प्रश्न ०२० – स्कन्ध के कितने भेद हैं ?

उत्तर – स्कन्ध के आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनो वर्गणा, कार्माण वर्गणा आदि २३ भेद हैं।

प्रश्न ०२१ – आहारवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पुद्गलस्कन्ध या वर्गणा, औदारिक, वैक्रियिक और आहारक – इन तीन शरीररूप तथा श्वासोच्छ्वासरूप परिणमित होते हैं उन्हें आहारवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न ०२२ – औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – मनुष्य और तिर्यंच के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्रश्न ०२३ – वैक्रियिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो छोटे – बड़े, एक – अनेक, पृथक् – अपृथक् आदि विचित्र क्रियाओं को कर सकता है ऐसे देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियिक शरीर कहते है।

प्रश्न ०२४ – आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – छटवें गुणस्थानवर्ती मुनि को तत्त्वों के सम्बन्ध में कोई शंका होने पर केवली या श्रुतकेवली के पास जाने के लिए मस्तक में से जो एक हाथ का स्वच्छ, सफेद, सप्तधातुरहित पुरुषाकार पुतला निकलता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

प्रश्न ०२५ – तैजसवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पुद्गल स्कंध, तैजस शरीररूप परिणमित होते हैं,उन्हें तैजस वर्गणा कहते हैं।

(प्रश्न – तैजस शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – औदारिक और वैक्रियिक शरीर को कान्ति देनेवाले शरीर को तैजस शरीर कहते हैं।) ल. जै. सि. प्र. प्र.१

प्रश्न ०२६ – भाषावर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पुद्गलस्कन्ध, शब्दरूप परिणमित होते हैं, उन्हें भाषावर्गणा कहते हैं।

प्रश्न ०२७ – मनोवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पुद्गलस्कन्ध, द्रव्य मनरूप परिणमित होते हैं, उन्हें मनोवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न ०२८ – कार्मणवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पुद्गलस्कन्ध, कार्मण शरीररूप परिणमते हैं, उन्हें कार्मणवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न ०२९ – कार्मण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

प्रश्न ०३० – तैजस और कार्मण शरीर किसके होते हैं ?

उत्तर – तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों को होते हैं।

(प्रश्न – एक जीव के एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर – एक जीव के एकसाथ कम से कम दो और अधिक से अधिक चार शरीर हो सकते हैं। विग्रहगति में तैजस और कार्मण, मनुष्य और तिर्यंच के औदारिक, तैजस और कार्मण, देवों और नारकियों के वैक्रियक, तैजस और कार्मण; तथा आहारक ऋद्धिधारी मुनि के औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर होते हैं।)

(– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न ३५)

प्रश्न ०३१ – धर्मद्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो स्वयं गतिरूप से परिणमित जीव और पुद्गलों को गमन करने (चलने) में सहकारी हो अथवा निमित्त हो उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे – मछली के गमन में जल।

प्रश्न ०३२ – अधर्मद्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो गतिपूर्वक स्वयं स्थितिरूप से परिणमित जीव और पुद्गलों को रुकने (ठहरने) में सहकारी अथवा निमित्त हो, उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे – पथिक को ठहरने में वृक्ष की छाया।

प्रश्न ०३३ – आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो जीवादि पाँच द्रव्यों को रहने के लिए स्थान देता है, उसे आकाशद्रव्य कहते हैं। जैसे – मनुष्यों को रहने के लिए घर, मकान आदि।

प्रश्न ०३४ – कालद्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो जीवादि समस्त द्रव्यों के परिणमन में सहकारी अथवा निमित्त होता है, उसे कालद्रव्य कहते हैं। जैसे – कुम्हार के चाक को घूमने में लोहे की कीली।

प्रश्न ०३५ – काल के कितने भेद हैं ?

उत्तर – काल के दो भेद हैं – निश्चयकाल और व्यवहारकाल।

प्रश्न ०३६ – निश्चयकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर – कालद्रव्य को निश्चयकाल कहते हैं।

प्रश्न ०३७ – व्यवहार काल किसे कहते हैं ?

उत्तर – कालद्रव्य की पल, घड़ी, दिन, माह, वर्ष आदि पर्यायों को व्यवहारकाल कहते हैं।

१. ३ पर्याय

प्रश्न ०३८ – पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – गुणों के परिणमन (विकार या कार्य) को पर्याय कहते हैं।

प्रश्न ०३९ – पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – पर्याय के दो भेद हैं – व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय।

प्रश्न ०४० – व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रदेशत्वगुण के परिणमन (विकार या कार्य) को व्यंजनपर्याय कहते हैं।

प्रश्न ०४१ – व्यंजनपर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – व्यंजनपर्याय के दो भेद हैं – स्वभाव व्यंजनपर्याय और विभाव व्यंजनपर्याय।

प्रश्न ०४२ – स्वभाव व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – अन्य के निमित्त बिना जो व्यंजनपर्याय होती है, उसे स्वभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे – जीव की सिद्ध पर्याय।

प्रश्न ०४३ – विभाव व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – अन्य के निमित्त सहित जो व्यंजनपर्याय होती है, उसे विभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे – जीव की नर, नारकादि पर्याय।

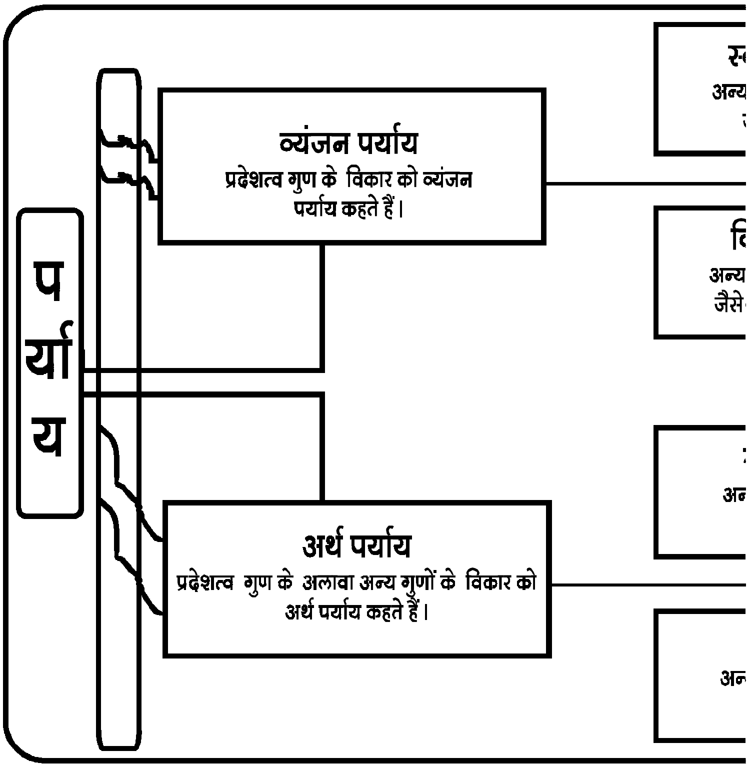

प्रश्न ०४४ – अर्थपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रदेशत्वगुण के अलावा अन्य समस्त गुणों के परिणमन (विकार या कार्य) को अर्थपर्याय कहते हैं ?

प्रश्न ०४५ – अर्थपर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – अर्थपर्याय के दो भेद हैं – स्वभाव अर्थपर्याय और विभाव अर्थपर्याय।

प्रश्न ०४६ – स्वभाव अर्थपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – अन्य के निमित्त बिना जो अर्थपर्याय होती है उसे स्वभाव अर्थपर्याय कहते हैं। जैसे–जीव का केवलज्ञान।

प्रश्न ०४७ – विभाव अर्थपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – अन्य के निमित्तसहित जो अर्थपर्याय होती है उसे विभाव अर्थपर्याय कहते हैं। जैसे – जीव के राग–द्वेष आदि।

(प्रश्न – किस –किस द्रव्य में कौन – कौन सी पर्यायें होती हैं ?
उत्तर – जीव और पुद्‌गलद्रव्य में स्वभाव अर्थपर्याय, विभाव अर्थपर्याय, स्वभाव व्यंजनपर्याय और विभाव व्यंजनपर्याय, इस प्रकार चारों पर्यायें होती हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य में स्वभाव अर्थपर्याय और स्वभाव व्यंजनपर्याय–इस तरह केवल दो पर्यायें होती हैं।)(– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न ६८)

१.४ उत्पाद – व्यय– ध्रौव्य

प्रश्न ०४८ – उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य में नवीन पर्याय की प्राप्ति (उत्पत्ति) को उत्पाद कहते हैं।

प्रश्न ०४९ – व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य में पूर्व पर्याय के त्याग (विनाश) को व्यय कहते हैं।

प्रश्न ०५० – ध्रौव्य किसे कहते हैं?

उत्तर – प्रत्यभिज्ञान की कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं।

१.५ द्रव्यों के विशेषगुण

प्रश्न ०५१ – प्रत्येक द्रव्य के विशेषगुण कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – जीवद्रव्य में चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, क्रियावती शक्ति इत्यादि। पुद्गलद्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण क्रियावतीशक्ति आदि। धर्मद्रव्य में गतिहेतुत्व आदि। अधर्मद्रव्य में स्थितिहेतुत्व आदि। आकाशद्रव्य में अवगाहनहेतुत्व आदि और काल द्रव्य में परिणमन हेतुत्व आदि विशेष गुण हैं।

(जीव और पुद्गल में क्रियावतीशक्ति नाम का गुण नित्य है, उसके कारण अपनी– अपनी योग्यतानुसार कभी क्षेत्रान्तररूप पर्याय होती है, कभी स्थिर रहनेरूप पर्याय होती है। कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक–दूसरे को गमन या स्थिरता नहीं करा सकते, दोनों द्रव्य अपनी–अपनी क्रियावतीशक्ति की उस समय की योग्यता के अनुसार स्वतः गमन करते हैं या स्थिर होते हैं।) (– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न १६ की पाद –टिप्पणी)

१.६ लोक और अलोक

प्रश्न ०५२ – आकाश के कितने भेद हैं ?

उत्तर – आकाश एक अखण्ड द्रव्य है।

प्रश्न ०५३ – आकाश कहाँ पर है ?

उत्तर – आकाश सर्वव्यापी है।

प्रश्न ०५४ – लोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर – आकाश में जहाँ तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल – ये पाँच द्रव्य रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं।

प्रश्न ०५५ – अलोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर – लोक से बाहर के आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

प्रश्न ०५६ – लोक की मोटाई, ऊँचाई और चौड़ाई कितनी है ?

उत्तर – लोक की मोटाई, उत्तर और दक्षिण दिशा में सब जगह सात राजू है। चौड़ाई पूर्व और पश्चिम दिशा में सबसे नीचे सात राजू है। ऊपर क्रम से घटकर सात राजू की ऊँचाई पर चौड़ाई एक राजू है। फिर क्रम से बढ़कर साढ़े दस राजू की ऊँचाई पर पाँच राजू चौड़ाई है। फिर क्रम से घटकर चौदह राजू की ऊँचाई पर पुनः एक राजू चौड़ाई है। लोक की ऊँचाई ऊर्ध्व और अधो दिशा में चौदह राजू है।

(लोक की रचना कमर पर दोनों तरफ हाथ रखकर खड़े हुए मनुष्य के समान मानी गयी है अथवा नीचे एक उल्टी अर्द्धमृदंग उसके ऊपर एक पूर्ण मृदंग रखने पर जैसी आकृति बनती है, उसके समान है। लोक का प्रमाण ३४३ घन राजू है। यह सम्पूर्ण लोक तीन प्रकार के वातवलय से वेष्टित है – १. घनोदधिवातवलय, २. घनवातवलय और ३. तनुवातवलय। ये तीनों वातवलय सामान्यतया २०–२० हजार योजन प्रमाण मोटाई वाले हैं। यह

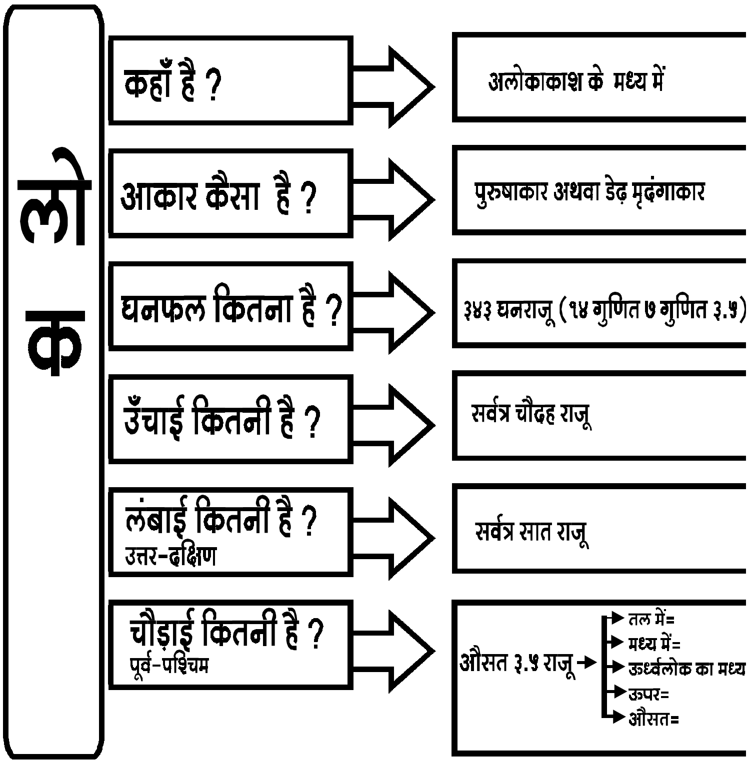

लोक तीन भागों में विभाजित है – १. अधोलोक, २. मध्यलोक और ३. ऊर्ध्वलोक। सम्पूर्ण लोक के बाहर दशों दिशाओं में अनन्त अलोकाकाश है। (– जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, भाग ३, पृष्ठ ४३८ के आधार पर)

प्रश्न ०५७ – धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य खण्डरूप हैं अथवा अखण्डरूप तथा इनका स्थान कहाँहै?

उत्तर – धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य दोनों एक–एक अखण्ड द्रव्य हैं और दोनों ही समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं।

प्रश्न ०५८ – प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर – आकाश के जितने भाग में एक पुद्गल परमाणु व्याप्त होता है उसे प्रदेश कहते हैं।

(प्रश्न – किस द्रव्य में कितने प्रदेश हैं ?

उत्तर – एक जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश हैं। आकाश के अनंत प्रदेश हैं। पुद्गल स्कन्ध के संख्यात, असंख्यात और अनन्त – इस तरह तीनों प्रकार के प्रदेश हैं। कालद्रव्य और पुद्गलपरमाणु एकप्रदेशी है।) (– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न ५५)

प्रश्न ०५९ – कालद्रव्य कितने हैं और कहाँ हैं ?

उत्तर – लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालद्रव्य हैं अर्थात् लोक प्रमाण असंख्यात हैं क्योंकि लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर एक–एक कालद्रव्य (कालाणु) स्थित है।

प्रश्न ०६० – पुद्गलद्रव्य कितने हैं और उनका स्थान कहाँ है ?

उत्तर – पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं और वे भी समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

प्रश्न ०६१ – जीवद्रव्य कितने और कहाँ हैं ?

उत्तर – जीवद्रव्य अनन्त हैं और वे समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

प्रश्न ०६२ – प्रत्येक जीव कितना बड़ा है ?

उत्तर – प्रत्येक जीव, प्रदेशों की संख्या अपेक्षा लोकाकाश के बराबर है, परन्तु संकोच – विस्तार के कारण वह अपने शरीर के प्रमाण है और मुक्तजीव अन्तिम शरीर प्रमाण है।

प्रश्न ०६३ – लोकाकाश के बराबर कौन सा जीव है ?

उत्तर – मोक्ष जाने से पहले केवली समुद्घात करने वाला जीव लोकाकाश के बराबर होता है।

प्रश्न ०६४ – समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है।

१.७ अस्तिकाय

प्रश्न ०६५ – अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न ०६६ – अस्तिकाय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – अस्तिकाय के पाँच भेद हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। इन पाँचों द्रव्यों को पंचास्तिकाय कहते हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं हैं इसलिए वह अस्तिकाय नहीं है।

प्रश्न ०६७ – पुद्गल परमाणु भी एक प्रदेशी है तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ ?

उत्तर – पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी होने पर भी शक्ति की अपेक्षा से अस्तिकाय है अर्थात् वह स्कन्धरूप होकर बहुप्रदेशी हो जाता है इसलिए उपचार से उसे भी अस्तिकाय कहा है।

१.८ अनुजीवी और प्रतिजीवी गुण

प्रश्न ०६८ – अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – वस्तु के भावस्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं। जैसे – सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, चेतना, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि।

प्रश्न ०६९ – प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – वस्तु के अभावस्वरूप धर्म को प्रतिजीवी गुण कहते हैं। जैसे – नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व आदि।

१.८.१ चार अभाव

प्रश्न ०७० – अभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ में नास्ति (अविद्यमानता) को अभाव कहते हैं।

प्रश्न ०७१ – अभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – अभाव के चार भेद हैं – प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यंताभाव।

प्रश्न ०७२ – प्रागभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव प्रागभाव है।

प्रश्न ०७३ – प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान पर्याय का आगामी पर्याय में अभाव प्रध्वंसाभाव है।

प्रश्न ०७४ – अन्योन्याभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक पुद्‌गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय में दूसरे पुद्‌गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय के अभाव को अन्योन्याभाव कहते हैं।

(समयसार ग्रंथ के हिन्दी टीकाकार पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा कृत आप्तमीमांसा वचनिका, श्लोक ११ की टीका में लिखा है –'अन्य स्वभावरूप वस्तु तैं अपने स्वभाव का भिन्नपना, याकूं इतरेतराभाव कहिए' अर्थात् अन्य स्वभावरूप वस्तु से अपने स्वभाव का भिन्नपना – इसको इतरेतराभाव कहते हैं। इतरेतराभाव का दूसरा नाम अन्योन्याभाव है।) (–जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, भाग १, पृष्ठ १२८ के आधार पर)

प्रश्न ०७५ – अत्यंताभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का जो अभाव होता है, उसे अत्यंताभाव कहते हैं।

(प्रश्न – इन चार अभावों को समझने से क्या लाभ है ?

उत्तर – (१) प्रागभाव को समझने से यह लाभ है कि किसी जीव ने यदि अनादिकाल से अज्ञान –मिथ्यात्वादि दोष किये हों, धर्म कभी नहीं किया हो तो भी वह जीव नवीन पुरुषार्थ से धर्म प्राप्त कर सकता है, क्योंकि वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव है। (२) प्रध्वंसाभाव को समझने से यह लाभ है कि यदि किसी जीव ने वर्तमान अवस्था में धर्म न किया हो तो भी वह जीव उस अधर्म दशा का तुरन्त अभाव करके नवीन पुरुषार्थ से धर्म प्राप्त कर सकता है। (३) अन्योन्याभाव को समझने से यह लाभ है कि एक पुद्‌गलद्रव्य की पर्याय, दूसरे पुद्‌गल की पर्यायों का कुछ भी नहीं कर सकती है अर्थात् एक–दूसरे को मदद, सहायता, असर या प्रेरणादि कुछ भी नहीं कर सकती। (४) अत्यन्ताभाव को समझने से यह लाभ है कि प्रत्येक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव होने से कोई द्रव्य, अन्य द्रव्य की पर्यायों में कुछ भी नहीं करता अर्थात् सहायता, असर, मदद या प्रेरणा इत्यादि कुछ भी नहीं कर सकता। शास्त्र में जो कुछ अन्य में करने–कराने आदि का कथन है, वह घी के घड़े के समान मात्र व्यवहार का कथन है, सत्यार्थ नहीं है। चार अभावों के सम्बन्ध में ऐसी समझ करने से स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ होता है यही सच्चा लाभ है।) (– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न १२३)

१.८.२ जीव के अनुजीवी गुण

प्रश्न ०७६ – जीव के अनुजीवी गुण कौन से हैं?

उत्तर – चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व ,जीवत्व, वैभाविक, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनन्त गुण अनुजीवी गुण हैं।

१.८.३ जीव के प्रतिजीवी गुण

प्रश्न ०७७ – जीव के प्रतिजीवी गुण कौन से हैं ?

उत्तर – अव्याबाध, अवगाह, अगुरुलघु, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व आदि अनन्त गुण प्रतिजीवी गुण हैं।

१.८.४ जीव के अनुजीवी गुणों का विस्तृत विवेचन

प्रश्न ०७८ – चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें पदार्थों का प्रतिभास होता है, उसे चेतना कहते हैं।

प्रश्न ०७९ – चेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर – चेतना के दो भेद हैं – दर्शनचेतना और ज्ञानचेतना।

प्रश्न ०८० – दर्शनचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक या अवभासन) होता है, उसे दर्शन चेतना कहते हैं।

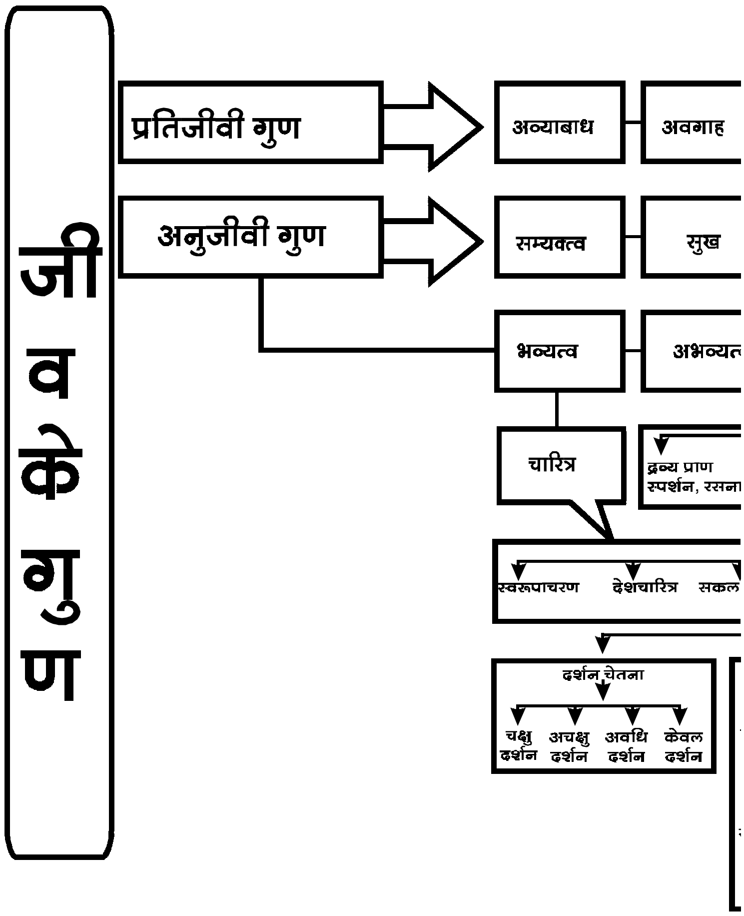

प्रश्न ०८१ – महासत्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर – समस्त पदार्थों के अस्तित्व को ग्रहण करने वाली सत्ता को महासत्ता कहते हैं।

प्रश्न ०८२ – ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर – अवान्तरसत्ता – विशिष्ट – विशेष पदार्थ को विषय करने वाली चेतना को ज्ञान चेतना कहते हैं।

प्रश्न ०८३ – अवान्तरसत्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर – किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को अवान्तरसत्ता कहते हैं।

प्रश्न ०८४ – दर्शनचेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दर्शनचेतना के चार भेद हैं – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

(प्रश्न – दर्शनचेतना कब उत्पन्न होती है ?

उत्तर – दर्शनचेतना छद्मस्थ जीवों को ज्ञान के पहले और केवलज्ञानियों को ज्ञान के साथ-साथ उत्पन्न होती है।) (– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न ८२)

प्रश्न ०८५ – ज्ञानचेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर – ज्ञानचेतना के पाँच भेद हैं – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

प्रश्न ०८६ – मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ०८७ – मतिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर – मतिज्ञान के दो भेद हैं – सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और परोक्ष।

(व्यवहारिक दृष्टि से जो मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के द्वारा साक्षात् होता है, वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष मतिज्ञान कहलाता है तथा जो मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष या धारणा के बाद होता है, वह परोक्ष मतिज्ञान कहलाता है।) (– परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थों के आधार पर)

प्रश्न ०८८ – परोक्ष मतिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर – परोक्ष मतिज्ञान के चार भेद हैं – स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान।

प्रश्न ०८९ – मतिज्ञान के अन्य प्रकार से कितने भेद हैं ?

उत्तर – अन्य प्रकार से मतिज्ञान के चार भेद हैं – अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

प्रश्न ०९० – अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर – इन्द्रिय और पदार्थ का यथायोग्य सम्बन्ध होने के बाद उत्पन्न हुए सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन के पश्चात् अवान्तर सत्ता सहित विशेष वस्तु को ग्रहण करने वाले विशेष ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। जैसे – यह मनुष्य है।

प्रश्न ०९१ – ईहा किसे कहते हैं ?

उत्तर – अवग्रह से जाने हुए पदार्थ की विशेषता के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करने वाले इच्छा रूप ज्ञान को ईहा कहते हैं। जैसे – ये ठाकुरदासजी होना चाहिए ? यह ज्ञान भी इतना कमजोर है कि यदि किसी पदार्थ की ईहा होकर छूट जाये; उसका निश्चय न हो तो उसके विषय में कालान्तर में संशय और विस्मरण हो जाता है।

प्रश्न ०९२ – अवाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – ईहा से जाने हुए पदार्थ में 'यह वही है, अन्य नहीं है' – ऐसे निश्चयात्मक ज्ञान को अवाय कहते हैं। जैसे – ये ठाकुरदासजी ही हैं, अन्य नहीं हैं। अवाय से जाने हुए पदार्थ में संशय तो नहीं होता किन्तु विस्मरण हो सकता है।

प्रश्न ०९३ – धारणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस ज्ञान से जाने हुए पदार्थों में कालान्तर में संशय तथा विस्मरण नहीं होता है उसे धारणा कहते हैं।

मतिज्ञान के भेद

	अवग्रह	ईहा	अवाय
स्वरूप	सर्वप्रथम जानना	इच्छा-अभिलाषा	निर्णय
कालांतर में		संशय-विस्मरण हो जाता है	संशय तो नहीं, पर विस्मरण

प्रश्न ०९४ – मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के कितने भेद हैं ?

उत्तर – मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के दो भेद हैं – व्यक्त और अव्यक्त।

प्रश्न ०९५ – क्या अवग्रहादि ज्ञान दोनों ही प्रकार के पदार्थों का होता है ?

उत्तर – व्यक्त पदार्थों के अवग्रहादि चारों ही ज्ञान होते हैं परन्तु अव्यक्त पदार्थों का सिर्फ अवग्रह ही होता है क्योंकि अवग्रह के भी दो भेद हैं – अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह।

प्रश्न ०९६ – अर्थावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर – व्यक्त पदार्थों के अवग्रह को अर्थावग्रह कहते हैं।

प्रश्न ०९७ – व्यंजनावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर – अव्यक्त पदार्थों के अवग्रह को व्यंजनावग्रह कहते हैं।

प्रश्न ०९८ – अर्थावग्रह की तरह व्यंजनावग्रह भी क्या सभी इन्द्रियों और मन द्वारा होता है ?

उत्तर – नहीं, व्यंजनावग्रह चक्षु और मन को छोड़कर शेष सब इन्द्रियों द्वारा होता है।

प्रश्न ०९९ – व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के कितने भेद हैं ?

उत्तर – व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के बारह– बारह भेद छह जोड़ों में हैं – बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव और अध्रुव।

(बहु – बहुत या अनेक पदार्थ। एक – अल्प या एक पदार्थ। बहुविध – बहुत प्रकार के पदार्थ। एकविध – एक प्रकार के पदार्थ। क्षिप्र – तेज गतिवाले पदार्थ। अक्षिप्र – मन्द गतिवाले पदार्थ। अनिःसृत – आंशिक दिखनेवाले पदार्थ। निःसृत – पूर्ण दिखनेवाले पदार्थ। अनुक्त – अवर्णित या अकथित पदार्थ। उक्त – वर्णित या कथित पदार्थ। ध्रुव – स्थिर पदार्थ। अध्रुव – अस्थिर पदार्थ।) (– तत्वार्थसूत्र १/१६ की टीका के आधार पर)

प्रश्न १०० – श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे –'घट' शब्द सुनने के बाद उत्पन्न हुआ कम्बु – ग्रीवा आदि आकाररूप घट का ज्ञान। (अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान की परिभाषायें – अध्याय १, पाठ – ३ रत्नत्रय में दी गई हैं।)

प्रश्न १०१ – दर्शन कब होता है ?

उत्तर – अल्पज्ञ जीवों को ज्ञान के पहले दर्शन होता है क्योंकि बिना दर्शन के ज्ञान नहीं होता परन्तु सर्वज्ञदेव को केवलज्ञान और केवलदर्शन साथ – साथ होते हैं।

प्रश्न १०२ – चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – चक्षु सम्बन्धी मतिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास या सामान्य अवलोकन को चक्षुदर्शन कहते हैं।

प्रश्न १०३ – अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – चक्षु के अलावा अन्य इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को अचक्षुदर्शन कहते हैं।

प्रश्न १०४ – अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को अवधिदर्शन कहते हैं ।

प्रश्न १०५ – केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – केवलज्ञान के साथ–साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को केवलदर्शन कहते हैं।

प्रश्न १०६ – सम्यक्त्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस गुण के प्रगट होने पर अपने शुद्ध आत्मा का प्रतिभास होता है उसे सम्यक्त्वगुण कहते हैं।

(सम्यक्त्वगुण का पर्यायवाची श्रद्धागुण है। सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी क्रमशः स्वभाव विभाव पर्यायें हैं। सम्यग्दर्शन के अनेक लक्षण हैं, उनमें चार मुख्य हैं – (१) आत्मा का श्रद्धान, (२) स्व–पर का श्रद्धान, (३) जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान तथा (४) सच्चे देव – शास्त्र – गुरु का श्रद्धान। दर्शनमोह की तीन और चारित्रमोह की अनन्तानुबन्धी क्रोध–मान–माया–लोभ मिलाकर कुल सात प्रकृतियों के उपशम – क्षय – क्षयोपशम से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के अलग–अलग अपेक्षाओं से अनेक प्रकार के भेद बताये गये हैं। उत्पत्ति की अपेक्षा दो भेद हैं – निसर्गज और अधिगमज। नयों की अपेक्षा दो भेद हैं – निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन। राग के सद्भाव और अभाव की अपेक्षा सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन कर्म की अपेक्षा तीन भेद हैं उपशम सम्यग्दर्शन, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि।)

प्रश्न १०७ – चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया के निरोध से होनेवाली आत्मा की विशेष शुद्धि को चारित्र कहते हैं।

(ऐसे परिणामों को स्वरूप स्थिरता, निश्चलता, वीतरागता, साम्य, धर्म और चारित्र कहते हैं। जब आत्मा के चारित्रगुण की शुद्धपर्याय उत्पन्न होती है तब बाह्य और आभ्यन्तरक्रिया का यथासम्भव निरोध हो जाता है।) (– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न ९४)

प्रश्न १०८ – बाह्य क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर – हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील सेवन करना और परिग्रह संचय करना आदि को बाह्य क्रिया कहते हैं।

(यहाँ मुख्यरूप से बाह्य अशुभक्रियाओं का उल्लेख किया है, क्योंकि शुभ–क्रियाओं को व्यवहारनय से देशचारित्र और सकलचारित्र के रूप में माना जाता है; निश्चयचारित्र में तो शुभ और अशुभ दोनों क्रियाओं का निषेध हो जाता है।)

प्रश्न १०९ – आभ्यन्तर क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर – योग और कषाय को आभ्यन्तर क्रिया कहते हैं।

प्रश्न ११० – योग किसे कहते हैं ?

उत्तर – मन – वचन–काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के चंचल होने को योग कहते हैं।

प्रश्न १११ – कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – क्रोध – मान–माया – लोभरूप आत्मा के विभाव परिणामों को कषाय कहते हैं।

प्रश्न ११२ – गुण स्थान अपेक्षा से चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर – गुण स्थान अपेक्षा से चारित्र के चार भेद हैं – स्वरूपाचरणचारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यात चारित्र।

प्रश्न ११३ – स्वरूपाचरणचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – शुद्धात्मानुभवन से अविनाभावी विशेष चारित्र को स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं।

(सम्यक्त्व से अविनाभावी होने के कारण इसे व्यवहार से सम्यक्त्वाचरणचारित्र भी कहते हैं। यह चौथे गुणस्थान से ही अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव में प्रगट होता है। इसके सद्भाव में अष्ट अगों का पालन; आठ शंकादि दोष, आठ मद, छह अनायतन और तीन मूढ़ताओं का त्याग होता है। जीव के भाव प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य से युक्त होते हैं।) (– अष्टपाहुड़ चारित्रपाहुड के आधार पर)

प्रश्न ११४ – देशचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – श्रावक के व्रतों (अणुव्रतों) को देशचारित्र कहते हैं।

(निश्चय सम्यग्दर्शनसहित अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरण कषायों के अभावपूर्वक आत्मा में चारित्र की आंशिक शुद्धि प्रगट होती है, वह निश्चय देशचारित्र है। इस आंशिक शुद्धि के साथ श्रावकदशा में व्रतादिरूप शुभभाव होते हैं। वहाँ शुद्ध (निश्चय) देशचारित्र से धर्म होता है और व्यवहार व्रतादिक से शुभबन्ध होता है। निश्चयचारित्र के बिना सच्चा व्यवहारचारित्र भी नहीं हो सकता।) (– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न ९८)

प्रश्न ११५ – सकलचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – मुनियों के व्रतों (महाव्रतों) को सकलचारित्र कहते हैं।

(निश्चय सम्यग्दर्शनसहित चारित्रगुण की शुद्धि की वृद्धि होने से (अनन्तानुबन्धी आदि तीन कषायों के अभाव पूर्वक) आत्मा में उत्पन्न होने वाली (भावलिंगी मुनिपद के योग्य) विशेष शुद्धि को सकलचारित्र कहते हैं। मुनिपद में २८ मूलगुण आदि के शुभभाव होते हैं, उसे व्यवहार सकलचारित्र कहते हैं। निश्चयचारित्र आत्माश्रित होने से मोक्षमार्ग है, धर्म है और व्यवहारचारित्र पराश्रित होने से बन्धभाव है, मोक्षमार्ग नहीं।)

प्रश्न ११६ – यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – कषायों के सर्वथा अभाव से (प्रादुर्भूत) होने वाली आत्मा की शुद्धि विशेष को यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

प्रश्न ११७ – सुख किसे कहते हैं ?

उत्तर – आल्हाद रूप आत्मा के परिणाम विशेष को सुख कहते हैं।

प्रश्न ११८ – वीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा की शक्ति या बल को वीर्य कहते हैं। (वीर्यगुण की पर्याय को वीर्य या पुरुषार्थ कहते हैं।)

प्रश्न ११९ – भव्यत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन – ज्ञान – चारित्र प्रगट होने की योग्यता होती है उसे भव्यत्वगुण कहते हैं।

प्रश्न १२० – अभव्यत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट होने की योग्यता नहीं होती है उसे अभव्यत्वगुण कहते हैं।

प्रश्न १२१ – जीवत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा प्राण धारण करता है उसे जीवत्वगुण कहते हैं।

(जिस शक्ति के कारण आत्मा चैतन्यमात्र भावप्राण को धारण करता है, उसे जीवत्वशक्ति कहते हैं।)

(– समयसार परिशिष्ट, ४७ शक्ति)

प्रश्न १२२ – प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिनके संयोग से जीव जीवन अवस्था और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त होता है उन्हें प्राण कहते हैं।

प्रश्न १२३ – प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर – प्राण के दो भेद हैं – द्रव्यप्राण और भावप्राण।

प्रश्न १२४ – द्रव्यप्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर – द्रव्यप्राण के दस भेद हैं – मनबल, वचनबल, कायबल, स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय,

घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, कर्ण इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और आयु।

प्रश्न १२५ – भावप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा की जिस शक्ति के निमित्त से इन्द्रियादिक अपने कार्य में प्रवर्तते हैं उसे भावप्राण कहते हैं।

प्रश्न १२६ – किस जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर – एकेन्द्रिय जीव के चार प्राण – स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु। द्वीन्द्रिय जीव के छह प्राण – पूर्वोक्त चार – रसना इन्द्रिय और वचनबल। त्रीन्द्रिय जीव के सात प्राण – पूर्वोक्त छह और घ्राण इन्द्रिय।

चतुरिन्द्रिय जीव के आठ प्राण – पूर्वोक्त सात और एक चक्षु इन्द्रिय। असैनी पंचेन्द्रिय जीव के नौ प्राण – पूर्वोक्त आठ और एक कर्ण इन्द्रिय। सैनी पंचेन्द्रिय जीव के दश प्राण – पूर्वोक्त नौ और एक मनबल।

प्रश्न १२७ – भावप्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर – भावप्राण के दो भेद हैं – भावेन्द्रिय और भावबल।

प्रश्न १२८ – भावेन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – भावेन्द्रिय के पाँच भेद हैं – स्पर्शन, रसना, घ्राण,चक्षु और कर्ण।

प्रश्न १२९ – भावबल के कितने भेद हैं ?

उत्तर – भावबल के तीन भेद हैं – मनबल, वचनबल और कायबल।

प्रश्न १३० – वैभाविकगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस शक्ति के निमित्त से दूसरे द्रव्य से सम्बन्ध होने पर आत्मा में विभाव परिणति होती है उसे वैभाविकगुण कहते हैं।

(यह वैभाविकगुण जीव और पुद्गल – इन दो द्रव्यों में ही होता है। शेष चार द्रव्यों में यह गुण नहीं होता। मुक्तजीवों में इस गुण की शुद्ध स्वाभाविक पर्याय प्रगट हो जाती है।)

(– लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्न ११२ की पाद–टिप्पणी)

१.८.५ जीव के प्रतिजीवी गुणों का विवेचन

प्रश्न १३१ – अव्याबाध प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – साता और असातारूप आकुलता (वेदनीयकर्म) के अभाव को अव्याबाध प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न १३२ – अवगाह प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – परतंत्रता (आयुकर्म) के अभाव को अवगाह प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न १३३ – अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – उच्चता और नीचता (गोत्रकर्म) के अभाव को अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न १३४ – सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – इन्द्रियों के विषयरूप स्थूलता (नामकर्म) के अभाव को सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

द्वितीय वर्ष (परिचय)
प्रश्न पत्र – श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका

समय – ३ घंटा   अध्याय – ४ (अ) द्रव्य– गुण– पर्याय   पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए –   (अंक २ x ५ = १०)

(क) अवग्रह से जाने हुए पदार्थ विशेष के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करने वाले इच्छा रूप ज्ञान को ईहा कहते हैं। (ख) व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के बारह – बारह भेद छह जोड़ों में हैं।

(ग) योग और कषाय को बाह्य क्रिया कहते हैं। (घ) आल्हाद रूप आत्मा के परिणाम विशेष को सुख कहते हैं।

(ङ) उच्चता और नीचता (गोत्रकर्म) के अभाव को सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न २ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –   (अंक २ x ५ = १०)

(क) छह द्रव्यों के समूह को............कहते हैं। (ख) जो सब द्रव्यों में समान रूप से रहते हैं उन्हें........कहते हैं।

(ग) अनेक............के बंध को स्कन्ध कहते हैं। (घ) जो पुद्‌गल स्कन्ध, तैजस शरीर रूप परिणमित होते हैं, उन्हें..............कहते हैं। (ङ) द्रव्य में नवीन पर्याय की प्राप्ति को............कहते हैं।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये –   (अंक २ x ५ = १०)

(क) गति हेतुत्त्व विशेष गुण...........द्रव्य का है – (१) धर्म (२) अधर्म (३) काल (४) पुद्‌गल

(ख) आकाश ....है – (१) सर्वव्यापी (२) नीला (३) ब्रह्मा (४) गगन

(ग) मोक्ष जाने के पहले केवली समुद्‌घात करने वाला जीव............के बराबर होता है।
(१) शरीर (२) आकाश(३) लोकाकाश (४) आर्यखंड

(घ) वर्तमान पर्याय का आगामी पर्याय में अभाव.......है –
(१) प्रागभाव (२) प्रध्वंसाभाव (३) अन्योन्याभाव (४) अत्यंताभाव

(ङ) किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को...........कहते हैं – (१) महासत्ता (२) अवांतर सत्ता (३)राजसत्ता (४) जनसत्ता

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये –   (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
वैभाविक गुण	अस्तिकाय
बहुप्रदेशी	आकाश
असंख्यात प्रदेश	कार्मण
अनंत प्रदेश	जीव, धर्म, अधर्म द्रव्य
अष्ट कर्मों का समूह	जीव

प्रश्न ५ – अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में कोई पाँच)   (अंक ४ x ५ = २०)

(क) अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं ? (ख) आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

(ग) भव्यत्व और अभयत्व गुण किसे कहते हैं ? (घ) प्रतिजीवी गुण के भेदों की परिभाषा लिखिये।

(ङ) प्राण के कितने भेद हैं ? भेदों की परिभाषा लिखिये। (अथवा) किन्हीं दो द्रव्यों की परिभाषा लिखिये।

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच)   (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) पर्याय के भेद चार्ट सहित समझाइये। (२) स्कंध के भेदों का निरूपण कीजिये।

(३) लोक की मोटाई, ऊँचाई और चौड़ाई कितनी होती है ? (४) अभावों को समझने से लाभ बताइये।

(५) किन्हीं चार की परिभाषा लिखिये – अवाय, चक्षुदर्शन, वैक्रियक शरीर, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य, समुद्‌घात।

(६) अनुजीवी–प्रतिजीवी गुणों का चार्ट बनाकर नाम लिखिये।

प्रश्न ७ – कोई एक प्रश्न हल करें। (२०० शब्दों में)   (अंक १ x १० = १०)

(क) जीव के अनुजीवी–प्रतिजीवी गुणों का विस्तृत विवेचन कीजिये।

(ख) द्रव्य के सामान्य विशेष गुणों पर संक्षिप्त निबंध लिखिये। (ग) द्रव्य और गुण पर विस्तृत टिप्पणी लिखिये।

द्वितीय अध्याय

कर्म का स्वरूप

(दोहा)

कर्मस्वरूप को जानकर, अकर्म स्वभाव पहिचान ।
अकर्तृत्व को भोगकर, भये सिद्ध भगवान ।।

प्रश्न १३५ – जीव के कितने भेद हैं ?
उत्तर – जीव के दो भेद हैं – संसारी और मुक्त।

प्रश्न १३६ – संसारी जीव किसे कहते हैं ?
उत्तर – कर्मसहित जीव को संसारी जीव कहते हैं।

प्रश्न १३७ – मुक्त जीव किसे कहते हैं ?
उत्तर – कर्मरहित जीव को मुक्त जीव कहते हैं।

प्रश्न १३८ – कर्म किसे कहते हैं ?
उत्तर – जीव के राग–द्वेषादि परिणामों के निमित्त से जो कार्मण वर्गणारूप पुद्गल स्कन्ध जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं उन्हें कर्म कहते हैं।
(कषायसहित जीव,कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह कर्म बन्ध कहलाता है।)
(तत्वार्थसूत्र ८/२)

प्रश्न १३९ – कर्म बन्ध के कितने भेद हैं ?
उत्तर – कर्म बन्ध के चार भेद हैं – प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध।

प्रश्न १४० – चार प्रकार के कर्म बन्ध के कारण क्या हैं ?
उत्तर – योग से प्रकृति और प्रदेशबन्ध होते हैं तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग बन्ध होते हैं।
(मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच कर्म बन्ध के कारण हैं।)
(–तत्वार्थसूत्र ८/१)

२.१ प्रकृतिबन्ध

प्रश्न १४१ – प्रकृतिबन्ध किसे कहते हैं ?
उत्तर – मोहादि जनक तथा ज्ञानादि घातक उस–उस स्वभाव वाले कार्मण पुद्गल स्कन्धों का आत्मा से सम्बन्ध होना प्रकृतिबन्ध कहलाता है।

प्रश्न १४२ – प्रकृतिबन्ध या कर्म के कितने भेद हैं ?
उत्तर – प्रकृतिबन्ध या कर्म के आठ भेद हैं –
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायकर्म। कर्म और प्रकृति एकार्थवाची हैं।

प्रश्न १४३ – ज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं ?
उत्तर – जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को घातता है उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

प्रश्न १४४ – ज्ञानावरण कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – ज्ञानावरणकर्म के पाँच भेद हैं – मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवल ज्ञानावरण कर्म।

प्रश्न १४५ – दर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के दर्शनगुण को घातता है उसे दर्शनावरण कहते हैं।

(तत्त्वज्ञान आदि के सम्बन्ध में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन, उपघात आदि भाव ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म का बन्ध होता है।)(तत्वार्थसूत्र ६/१०)

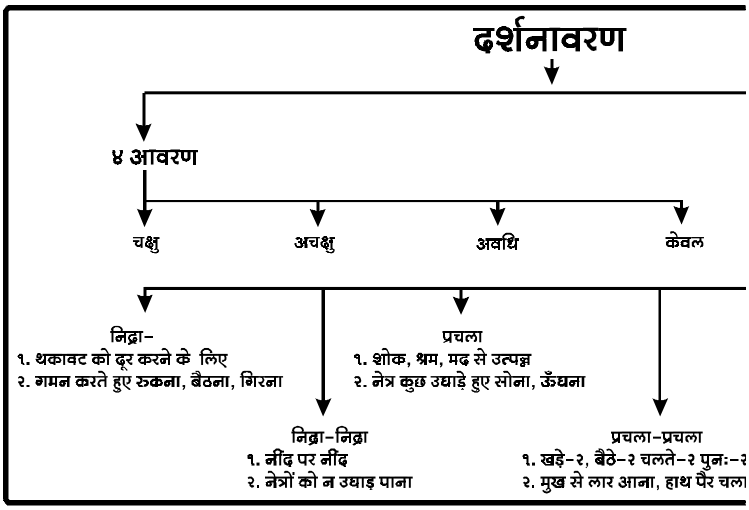

प्रश्न १४६ – दर्शनावरण कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दर्शनावरण कर्म के नौ भेद हैं – चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि कर्म।

प्रश्न १४७ – वेदनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के फल में जीव को बाह्य सुख – दुःख की वेदना होती है अर्थात् जो कर्म निमित्त रूप से आत्मा के अव्याबाधगुण को घातता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न १४८ – वेदनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – वेदनीय कर्म के दो भेद हैं – सातावेदनीय और असातावेदनीय कर्म।

(संसारी जीवों और व्रतियों के प्रति क्रमशः अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि रूप योग, सहनशीलता, शौच आदि भावों से सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।) (– तत्वार्थसूत्र ६/१)

(दुःख, शोक, ताप, चीखना, विलाप करना आदि भावों से असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।)

(– तत्वार्थसूत्र ६/ ११)

प्रश्न १४९ – मोहनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्रगुण को घातता है उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न १५० – मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – मोहनीय कर्म के दो भेद हैं – दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म।

प्रश्न १५१ – दर्शनमोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व गुण को घातता है, उसे दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं।

(केवली ,श्रुत ,संघ , देव आदि का अवर्णवाद करने से दर्शनमोहनीय कर्म का बन्ध होता है।)

(– तत्वार्थसूत्र ६/१३)

प्रश्न १५२ – दर्शनमोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दर्शनमोहनीय कर्म के तीन भेद है– मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति कर्म।

प्रश्न १५३ – मिथ्यात्व कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव को अतत्त्वश्रद्धान होता है उसे मिथ्यात्व कर्म कहते हैं।

प्रश्न १५४ – सम्यक्मिथ्यात्व कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव को मिश्रित परिणाम होता है अर्थात् जो परिणाम न तो सम्यक्त्वरूप होता है और न मिथ्यात्व रूप होता है, उसे सम्यक्मिथ्यात्व कर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५५ – सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्वगुण का समूल घात तो नहीं होता, परन्तु चल, मल, अगाढ़ आदि दोष उत्पन्न होते हैं उसे सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न १५६ – चारित्रमोहनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के चारित्रगुण को घातता है उसे चारित्रमोहनीय कर्म कहते हैं।

(कषाय के उदय से तीव्र परिणाम होने पर चारित्रमोहनीय कर्म का बन्ध होता है।) (–तत्वार्थसूत्र ६/१४)

प्रश्न १५७ – चारित्रमोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – चारित्रमोहनीय कर्म के दो भेद हैं – कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय कर्म।

(यहाँ वेदनीय शब्द से यह नहीं समझना चाहिए कि यह वेदनीय कर्म का भेद है, बल्कि यहाँ चारित्रमोहनीय कर्म के ही दो भेदों के नाम कषायवेदनीय और नोकषाय वेदनीय हैं अर्थात् जिस कर्म के उदय से जीव कषाय का वेदन करता है वह कषायवेदनीय है तथा जिस कर्म के उदय से जीव नोकषाय का वेदन करता है वह नोकषायवेदनीय है। ये चारित्रमोहनीय कर्म के भेद हैं।) (– धवला १३/५,५,९४ ३५९)

प्रश्न १५८ – कषायवेदनीय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – कषायवेदनीय के सोलह भेद हैं – अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया, अनन्तानुबन्धी लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया और अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ तथा संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभ।

प्रश्न १५९ – नोकषायवेदनीय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – नोकषायवेदनीय के नौ भेद हैं – हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

प्रश्न १६० – अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ किन्हें कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के स्वरूपाचरणचारित्र परिणाम को घातते हैं उन्हें अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

प्रश्न १६१ – अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किन्हें कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के देशचारित्र परिणाम को घातते हैं उन्हें अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

प्रश्न १६२ – प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किन्हें कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के सकलचारित्र परिणाम को घातते हैं उन्हें प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

प्रश्न १६३ – संज्वलन क्रोध मान माया लोभ और नोकषाय किन्हें कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के यथाख्यातचारित्र परिणाम को घातते हैं उन्हें संज्वलन क्रोध मान माया लोभ और नोकषाय कहते हैं।

(यद्यपि संज्वलन कषाय और नोकषाय में अन्तर है तथापि दोनों का अभाव साथ–साथ होता है तथा यथाख्यात चारित्र को घातने की अपेक्षा दोनों में समानता है अतः इन्हें साथ–साथ लिया गया है।)

प्रश्न १६४ – आयुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म आत्मा को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव के शरीर में रोककर रखता है उसे आयुकर्म कहते हैं अर्थात् आयुकर्म आत्मा के अवगाहनगुण को घातता है।

प्रश्न १६५ – आयुकर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – आयुकर्म के चार भेद हैं – नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु ।

(बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के भाव से नरकायु का बन्ध होता है।) (–तत्वार्थसूत्र ६/१५)

(माया या छलकपट के भाव से तिर्यंचायु का बन्ध होता है।) (– तत्वार्थसूत्र ६/१६)

(अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के भाव तथा स्वाभाविक सरल परिणाम से मनुष्यायु का बन्ध होता है।) (–तत्वार्थसूत्र ६/१७–१८)

(सरागसंयम, संयमासंयम, सम्यग्दर्शन, अकामनिर्जरा और बालतप के भाव से देवायु का बन्ध होता है।) (– तत्वार्थसूत्र ६/२०–२१)

प्रश्न १६६ – नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म जीव को गति आदि अनेक प्रकार से परिणमाता है अथवा शरीरादिक बनाता है, उसे नाम कर्म कहते हैं अर्थात् नामकर्म आत्मा के सूक्ष्मत्वगुण को घातता है।

(नामकर्म के मुख्यतः दो भेद हैं – शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म। मन–वचन–काय के योगों में कुटिलता और विसंवादन के भाव से अशुभनामकर्म का बन्ध होता है तथा इनसे विपरीतभाव से शुभनामकर्म का बन्ध होता है।) (– तत्वार्थसूत्र ६/२२–२३)

प्रश्न १६७ – नाम कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – नाम कर्म के तिरानवै (९३) भेद हैं – चार गति (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव), पाँच जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय), पाँच शरीर (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण), तीन अंगोपांग (औदारिक, वैक्रियिक और आहारक), एक निर्माण, पाँच बन्धन (औदारिक, वैक्रियिक,आहारक तैजस और कार्मण), पाँच संघात (औदारिक, वैक्रियिक,आहारक तैजस और कार्मण) छह संस्थान (समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक) छह संहनन (वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका) पाँच वर्ण (काला, पीला, नीला, लाल और सफेद), दो गन्ध (सुगन्ध और दुर्गन्ध), पाँच रस

(खट्टा, मीठा, कडुआ, चरपरा और कषायला), आठ स्पर्श (हलका, भारी, कठोर, नरम रूखा, चिकना, ठण्डा, गरम), चार आनुपूर्व्य (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव), एक अगुरुलघु, एक उपघात, एक परघात, एक आतप, एक उद्योत, दो विहायोगति (प्रशस्त और अप्रशस्त), एक उच्छ्वास, एक त्रस, एक स्थावर, एक बादर, एक सूक्ष्म, एक पर्याप्त, एक अपर्याप्त, एक प्रत्येक, एक साधारण, एक स्थिर, एक अस्थिर, एक शुभ, एक अशुभ, एक सुभग, एक दुर्भग, एक सुस्वर, एक दुःस्वर, एक आदेय, एक अनादेय, एक यशः कीर्ति, एक अयशः कीर्ति और एक तीर्थंकर नामकर्म।

प्रश्न १६८ – गति नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म जीव का आकार नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव के समान बनाता है उसे गति नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १६९ – जाति किसे कहते है ं?

उत्तर – अव्यभिचारी सदृशता के कारण एकरूपता धारण करने वाले विशेष को जाति कहते हैं अर्थात् जाति के द्वारा सदृश धर्मवाले पदार्थों का ग्रहण होता है ।

प्रश्न १७० – जाति नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय होता है उसे जाति नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १७१ – शरीर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव के साथ औदारिक आदि शरीर की रचना होती है उसे शरीर नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १७२ – अंगोपांग नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर के हाथ पैर आदि अंग एवं नासिका आदि उपांग बनते हैं उन्हें अंगोपांग नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १७३ – निर्माण नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांगों की ठीक–ठीक रचना होती है उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १७४ – बन्धन नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं उसे बन्धन नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १७५ – संघात नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु छिद्ररहित एकता को प्राप्त होते हैं उसे संघात नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १७६ – संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति बनती है उसे संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १७७ – समचतुरस्र संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर की आकृति कुशल शिल्पकार के द्वारा बनायी गयी

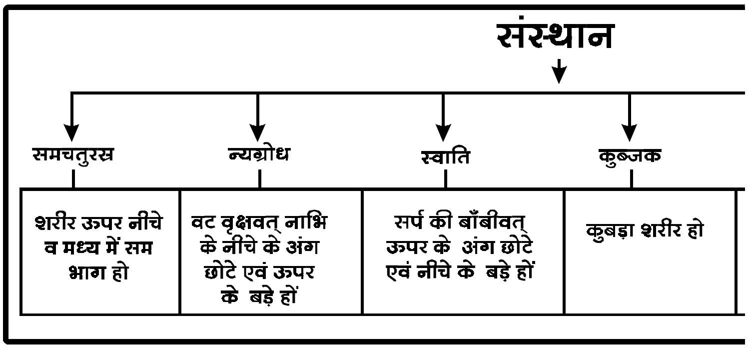

सुन्दर मूर्ति के समान ऊपर, नीचे तथा बीच में समभाग या समानुपात में होती है उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

प्रश्न १७८ – न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वटवृक्ष की तरह होता है अर्थात् जिसके नाभि से नीचे के अंग पतले और छोटे और उसके ऊपर के अंग मोटे और बड़े होते है उसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं।

प्रश्न १७९ – स्वाति संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शाल्मलिवृक्ष के समान होता है अर्थात् जिसके नाभि के नीचे के अंग मोटे और बड़े और उसके ऊपर के अंग पतले और छोटे होते हैं उसे स्वाति संस्थान कहते हैं।

प्रश्न १८० – कुब्जक संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबड़ा होता है उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं।

प्रश्न १८१ – वामन संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बौना होता है उसे वामन संस्थान कहते हैं।

प्रश्न १८२ – हुण्डक संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर के अंगोपांग विषम आकृतिवाले हुण्ड के समान होते हैं अर्थात् किसी खास आकृतिवाले नहीं होते हैं उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

प्रश्न १८३ – संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर की हड्डियों का बन्धन विशेष होता है उसे संहनन नाम कर्म कहते हैं।

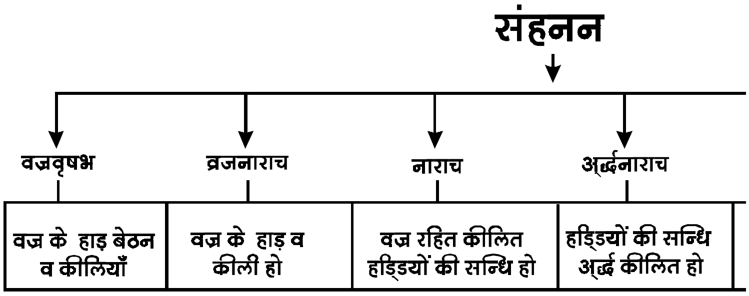

प्रश्न १८४ – वज्रवृषभनाराच संहनन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय हड्डियाँ, वज्रमय वेष्टन और वज्रमय कीलियाँ होती हैं। उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न १८५ – वज्रनाराच संहनन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय हड्डियाँ और वज्रमय कीलियाँ होती हैं परन्तु वेष्टन वज्रमय नहीं होते उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न १८६ – नाराच संहनन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय विशेषण से रहित हड्डियाँ, वेष्टन और कीलियाँ होती है उसे नाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न १८७ – अर्द्धनाराच संहनन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियों की सन्धियाँ अर्द्धकीलित होती हैं उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न १८८ – कीलक संहनन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियाँ परस्पर कीलित होती हैं उसे कीलक संहनन कहते हैं।

प्रश्न १८९ – असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियाँ मात्र माँस, स्नायु आदि से लपेटकर संघटित होती हैं। परस्पर कीलित नहीं होती, उसे असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन कहते हैं।

प्रश्न १९० – वर्ण नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में रंग होता है उसे वर्ण नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९१ – गन्ध नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में गन्ध होती है उसे गन्ध नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९२ – रस नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में रस होता है उसे रस नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९३ – स्पर्श नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श होता है उसे स्पर्श नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९४ – आनुपूर्वी नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से विग्रहगति में आत्मा के प्रदेशों का आकार पूर्व शरीर के आकार का रहता है उसे आनुपूर्वी नाम कर्म कहते हैं।

(विग्रह गति की परिभाषा – प्रश्न क्र. २३८ देखें)

(जिस कर्म के उदय से जीव का इच्छित गति में गमन होता है उसे आनुपूर्वी नाम कर्म कहते हैं।)

(– धवला ६/१,९,२८/५६)

प्रश्न १९५ – अगुरुलघु नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर लोहे के गोले के समान भारी और आकवृक्ष के फूल के समान हलका नहीं होता है उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९६ – उपघात नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में अपना ही घात करने वाले अंगोपांग होते हैं उसे उपघात नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९७ – परघात नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में दूसरे का घात करनेवाले अंगोपांग होते हैं उसे परघात नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९८ – आतप नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में सूर्य के समान आतप (उष्णता) की प्राप्ति होती है उसे आतप नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न १९९ – उद्योत नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में उद्योत होता है उसे उद्योत नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २०० – विहायोगति नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीवों का आकाश में गमन होता है उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं। विहायोगति कर्म के प्रशस्त और अप्रशस्त ऐसे दो भेद होते हैं।

प्रश्न २०१ – उच्छ्‌वास नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर में श्वासोच्छ्‌वास होता है उसे उच्छ्‌वास नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २०२ – त्रस नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय आदि पर्यायों में जन्म होता है उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं।

(जिस कर्म के उदय से जीव का गमन–आगमन भाव होता है उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं।)

(–धवला १३/५,५,१०१/३६५)

प्रश्न २०३ – स्थावर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति पर्याय में जन्म होता है उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं।

(जिस कर्म के उदय से जीव स्थावरपने को प्राप्त होता है उसे स्थावरनामकर्म कहते हैं)(धवला ६/१,९.१,२८/६१)

प्रश्न २०४ – पर्याप्ति अथवा पर्याप्त नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसके कर्म के उदय से अपने–अपने योग्य आहार आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण होती हैं अथवा जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्त होता है उसे पर्याप्ति अथवा पर्याप्त नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २०५ – पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर – आहारवर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओं को आहार, शरीर, इन्द्रिय आदिरूप परिणमित कराने की जीव की शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न २०६ – पर्याप्तियों के कितने भेद हैं ?

उत्तर – पर्याप्तियों के छह भेद हैं –

१. आहारपर्याप्ति – आहारवर्गणा के परमाणुओं को खल और रसभागरूप परिणमित कराने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को आहारपर्याप्ति कहते हैं।

२. शरीरपर्याप्ति – जिन परमाणुओं को खलभागरूप परिणमित किया था, उनसे हड्डी आदि कठिन अवयवरूप और जिनको रसभागरूप परिणमित किया था, उनसे रुधिर आदि द्रवरूप परिणमित कराने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को शरीरपर्याप्ति कहते हैं।

३. इन्द्रियपर्याप्ति – आहारवर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रिय के आकाररूप परणिमित कराने तथा इन्द्रिय द्वारा विषय–ग्रहण करने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं।

४. श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति – आहारवर्गणा के परमाणुओं को श्वासोच्छ्वासरूप परिणमित कराने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

५. भाषापर्याप्ति – भाषावर्गणा के परमाणुओं को वचनरूप परिणमित कराने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को भाषापर्याप्ति कहते हैं।

६. मनःपर्याप्ति – मनोवर्गणा के परमाणुओं को हृदय स्थान में आठ पाँखुरी के कमलाकार मनरूप परिणमित कराने में तथा उसके द्वारा यथावत् विचार करने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को मनःपर्याप्ति कहते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों में भाषा और मन के बिना चार पर्याप्तियाँ होती हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में मन के बिना पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सभी छह पर्याप्तियाँ होती हैं। इन सब पर्याप्तियों के पूर्ण होने का काल अन्तर्मुहूर्त है, वहाँ एक–एक पर्याप्ति के पूर्ण होने का काल भी अन्तर्मुहूर्त है और सबका मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त है। तथा एक से दूसरे का, दूसरे से तीसरे का, इसी तरह छटवीं पर्याप्ति पहले तक का काल, क्रम से बड़ा–बड़ा अन्तर्मुहूर्त है। अपने–अपने योग्य पर्याप्तियों का प्रारम्भ तो एक साथ होता है किन्तु पूर्णता क्रम से होती है।

जब तक किसी जीव की शरीर–पर्याप्ति पूर्ण तो न हो लेकिन नियम से पूर्ण होने वाली हो, तब तक उस जीव को निर्वृत्यपर्याप्तक कहते हैं। जिसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो उसे पर्याप्तक कहते हैं।

प्रश्न २०७ – अपर्याप्ति, अपर्याप्त अथवा लब्ध्यपर्याप्त नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करके, श्वास के अठारहवें भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त काल में ही मरण को प्राप्त होते हैं उसे अपर्याप्ति, अपर्याप्त अथवा लब्ध्यपर्याप्त नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २०८ – प्रत्येक नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०९ – साधारण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हों उसे साधारण नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २१० (अ) – स्थिर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने – अपने स्थान पर रहते हैं उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २१० (ब) – अस्थिर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने – अपने स्थान पर नहीं रहते हैं, उसे अस्थिर नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २११ – शुभ नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव सुन्दर (शोभन) होते हैं उसे शुभ नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २१२ – अशुभ नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव असुन्दर (अशोभन) होते हैं उसे अशुभ नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २१३ – सुभग नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से (मुझसे) प्रीति करते हैं उसे सुभग नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २१४ – दुर्भग नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से (मुझसे) अप्रीति करते हैं उसे दुर्भग नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २१५ – सुस्वर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से स्वर अच्छा होता है उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २१६ – दुःस्वर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से स्वर अच्छा नहीं होता है उसे दुःस्वर नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २१७ – आदेय नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से कान्तिमान शरीर उत्पन्न होता है उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २१८ – अनादेय नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से कान्तिमान शरीर नहीं होता है उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं। (अथवा जिस कर्म के उदय से संसारी जीवों के बहुमान्यता उत्पन्न होती है उसे आदेय नामकर्म कहते हैं। उससे विपरीत भाव को उत्पन्न करने वाला अनादेय नामकर्म है।) (– धवला ६/१,९.१,२८/ ६५)

प्रश्न २१९ – यशःकीर्ति नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म उदय से संसार में जीव की प्रशंसा होती है उसे यशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २२० – अयशःकीर्ति नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की प्रशंसा नहीं होती है उसे अयशःकीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न २२१ तीर्थंकर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है उसे तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं। दर्शनविशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शील और व्रतों का निरतिचार पालन, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हद् भक्ति, आचार्य भक्ति, उपाध्याय भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकों का दृढ़ता से पालन, मार्ग प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य इन सोलहकारण भावनाओं को विशेषतया भाने से

तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध होता है, यह प्रकृति एक बार बंधना शुरू होने पर निरन्तर बंधती रहती है। (– तत्वार्थसूत्र ६/२४)

जो धर्मतीर्थ अर्थात् मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, समवशरण आदि विभूतियों से सहित होते हैं और जिनके तीर्थंकर नामकर्म का उदय होता है उन्हें तीर्थंकर कहते हैं।

भरत और ऐरावतक्षेत्र के चतुर्थकाल में २४ तीर्थंकर होते हैं तथा विदेहक्षेत्र में सदाकाल कम से कम २० और अधिक से अधिक १६० तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान चौबीसी के अजितनाथ तीर्थंकर के समय एक साथ १७० तीर्थंकर हुए थे अर्थात् ढाईद्वीप में कुल पाँच भरतक्षेत्र,पाँच ऐरावतक्षेत्र और पाँच विदेहक्षेत्रों के १६० नगरों में सभी जगह एक–एक तीर्थंकर थे। भरत और ऐरावतक्षेत्र के तीर्थंकर पाँच कल्याणक वाले ही होते हैं, जबकि विदेहक्षेत्र के तीर्थंकर दो, तीन या पाँच कल्याणक वाले होते हैं। भरत – ऐरावतक्षेत्र के तीर्थंकरों के चार अनन्त चतुष्टय के साथ ४२ बाह्य गुण होते हैं। प्रत्येक तीर्थंकर का शासन चलता है अतः ये आप्त भी कहलाते हैं। तीर्थंकर जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं। आगम को भी तीर्थ कहा जाता है, उसके मूलग्रन्थकर्ता तीर्थंकर भगवान ही कहलाते हैं। तीर्थंकरों को (मुनि अवस्था में) आहार तो होता है, परन्तु निहार नहीं होता; उनके दाढ़ी – मूछ नहीं होती, परन्तु सिर पर बाल होते हैं। (उनके बाल और नख बढ़ते नहीं हैं) उनका शरीर निगोदिया जीवों से रहित होता है। एक स्थान पर दो तीर्थंकर एक साथ कभी नहीं होते। (– जैनेन्द्र सिद्धांत कोश , भाग २,पृष्ठ ३७३)

प्रश्न २२२ – गोत्र कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से उच्च, नीच गोत्र या कुल का व्यवहार होता है उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

प्रश्न २२३ – गोत्र कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – गोत्र कर्म के दो भेद हैं – उच्च गोत्र और नीच गोत्र कर्म।

प्रश्न २२४ – उच्च गोत्र कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से लोकमान्य गोत्र या कुल में जन्म होता है उसे उच्च गोत्र कर्म कहते हैं।

(दूसरे की प्रशंसा और अपनी निन्दा, दूसरे के गुणों को प्रगट करने और अपने गुणों को छिपाने के भावों से तथा विनम्रता और मद के अभाव से उच्च गोत्रकर्म का बन्ध होता है।) (– तत्वार्थसूत्र ६/२६)

प्रश्न २२५ – नीच गोत्र कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से लोकनिन्द्य गोत्र या कुल में जन्म होता है उसे नीच गोत्र कर्म कहते हैं।

(दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा, दूसरे के विद्यमान गुणों को छिपाने और अपने अप्रगट गुणों को प्रगट करने के भावों से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है।) (– तत्वार्थसूत्र ६/२७)

प्रश्न २२६ – अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से दान आदि में विघ्न होता है उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

(दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न करने के भाव से अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।)(त.सू. ६/२५)

प्रश्न २२७ – अन्तराय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर – अन्तराय कर्म के पाँच भेद हैं – दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय कर्म।

प्रश्न २२८ – पुण्य कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है उसे पुण्य कर्म कहते हैं।

प्रश्न २२९ – पाप कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है उसे पाप कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३० – घाति कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म, जीव के ज्ञान आदि अनुजीवी गुणों को घातते हैं उन्हें घाति कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३१ – अघाति कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म,जीव के ज्ञान आदि अनुजीवी गुणों को नहीं घातते हैं उन्हें अघाति कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३२ – सर्वघाति कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म, जीव के अनुजीवी गुणों को पूर्णतया घातते हैं उन्हें सर्वघाति कर्म कहते हैं। कर्म या प्रकृति एकार्थवाची हैं। जैसे – सर्वघाति कर्म या सर्वघातिप्रकृति।

प्रश्न २३३ – देशघाति कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म, जीव के अनुजीवी गुणों को एकदेश घातते हैं उन्हें देशघाति कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३४ – जीव विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन कर्मों का फल जीव में होता है उन्हें जीव विपाकी कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३५ – पुद्गल विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन कर्मों का फल पौद्गलिक शरीर आदि में होता है उन्हें पुद्गल विपाकी कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३६ – भव विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन कर्मों के फल से जीव नरक आदि भवों में रुकता है उन्हें भव विपाकी कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३७ – क्षेत्र विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन कर्मों के फल से विग्रहगति में जीव का आकार पूर्व भव के समान बना रहता है उन्हें क्षेत्र विपाकी कर्म कहते हैं।

प्रश्न २३८ – विग्रहगति किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिए जीव का जो गमन होता है उसे विग्रहगति कहते हैं।

प्रश्न २३९ – घाति कर्म की प्राकृतियाँ कितनी और कौन – कौन सी हैं ?

उत्तर – घाति कर्म की सैंतालीस प्रकृतियाँ हैं – ज्ञानावरण– ५, दर्शनावरण–९, मोहनीय– २८ और अन्तराय – ५ = कुल ४७ घाति कर्म।

प्रश्न २४० – अघाति कर्म की प्रकृतियाँ कितनी और कौन – कौन सी हैं ?

उत्तर – अघाति कर्म एक सौ एक प्रकृतियाँ हैं – वेदनीय–२, आयु–४, नाम–९३ और गोत्र – २।

प्रश्न २४१ – सर्वघाति प्रकृतियाँ कितनी और कौन–कौन सी हैं ?

उत्तर – सर्वघाति कर्म प्रकृतियाँ इक्कीस हैं – ज्ञानावरण–१, (केवलज्ञानावरण), दर्शनावरण–६ (केवलदर्शनावरण १ और निद्रा आदि ५), मोहनीय–१४ (अनन्तानुबन्धी–४, अप्रत्याख्यानावरण–४, प्रत्याख्यानावरण–४ , मिथ्यात्व–१ और सम्यक् मिथ्यात्व–१)।

प्रश्न २४२ – देशघाति प्रकृतियाँ कितनी और कौन–कौन सी हैं ?

उत्तर – देशघातिकर्म या प्रकृतियाँ छब्बीस हैं – ज्ञानावरण–४ (मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्यय ज्ञानावरण), दर्शनावरण–३ (चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण), मोहनीय– १४ (संज्वलन–४, नोकषाय–९, सम्यक्त्व प्रकृति – १), अन्तराय–५ ।

प्रश्न २४३ – क्षेत्र विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन–कौन सी हैं ?

उत्तर – क्षेत्र विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ चार हैं – नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यक् गत्यानुपूर्वी, मनुष्य गत्यानुपूर्वी और देव गत्यानुपूर्वी ।

प्रश्न २४४ – भव विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन–कौन सी हैं ?

उत्तर – भव विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ चार हैं – नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु ।

प्रश्न २४५ – जीव विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन– कौन सी हैं ?

उत्तर – जीव विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ अठहत्तर हैं – सभी घातिकर्म–४७, गोत्रकर्म–२, वेदनीयकर्म–२ और नामकर्म–२७ (तीर्थंकर प्रकृति–१, उच्छ्वास–१, बादर–१, सूक्ष्म–१, पर्याप्ति–१, अपर्याप्ति–१, सुस्वर–१, दुःस्वर–१, आदेय–१, अनादेय –१, यशःकीर्ति–१, अयशःकीर्ति –१, त्रस–१, स्थावर–१, सुभग–१, दुर्भग–१, विहायोगति–२, गति–४, जाति – ५) ।

प्रश्न २४६ – पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन–कौन सी हैं ?

उत्तर – पुद्गल विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ बासठ हैं – कुल १४८ प्रकृतियों में से क्षेत्र विपाकी–४, भव विपाकी–४, जीव विपाकी–७८ – इस प्रकार सब मिलाकर ८६ प्रकृतियाँ घटाने पर, शेष ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी हैं ।

पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ सिर्फ नामकर्म में ही हैं । नामकर्म की कुल ९३ प्रकृतियों में जीव विपाकी –२७ और क्षेत्र विपाकी–४ (कुल–३१) घटाने पर शेष ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी हैं, जो इस प्रकार हैं – शरीर–५, बन्धन–५, संघात–५, संस्थान–६, संहनन – ६, आंगोपांग–३, वर्ण–५, गन्ध–२, रस–५, स्पर्श–८, अगुरुलघु–१, उपघात–१, परघात–१, आतप–१, उद्योत–१, निर्माण–१, प्रत्येक–१, साधारण–१, स्थिर–१, अस्थिर–१, शुभ–१ और अशुभ–१ ।

प्रश्न २४७ – पाप प्रकृतियाँ कितनी और कौन– कौन सी हैं ?

उत्तर – पाप प्रकृतियाँ सौ हैं – घाति कर्म की सभी–४७, असातावेदनीय–१, नीच गोत्र–१, नरकायु–१ और नामकर्म–५० (नरकगति–१, नरकगत्यानुपूर्वी–१,तिर्यंचगति – १, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी–१, शुरु की जाति–४, अन्त के संस्थान–५, अन्त के संहनन–५, अप्रशस्तस्पर्श–८, अप्रशस्तरस–५,अप्रशस्तगन्ध–२,अप्रशस्तवर्ण–५,उपघात १, अप्रशस्त विहायोगति–१, स्थावर–१, सूक्ष्म–१, अपर्याप्त–१, अनादेय–१, अयशःकीर्ति–१, अशुभ–१, दुर्भग–१, दुःस्वर–१, अस्थिर–१ और साधारण–१) ।

प्रश्न २४८ – पुण्य प्रकृतियाँ कितनी और कौन– कौन सी हैं ?

उत्तर – पुण्य प्रकृतियाँ अड़सठ हैं । कर्म की समस्त प्रकृतियाँ १४८ हैं, उनमें नामकर्म की स्पर्श

आदि २० प्रकृतियाँ पुण्य और पाप दोनों में गिनी जाती हैं, क्योंकि बीसों ही स्पर्शादि किसी को इष्ट, किसी को अनिष्ट होती हैं; इसलिए कुल प्रकृतियाँ १६८ हुई, इनमें से १०० पाप प्रकृतियाँ घटाने पर ६८ पुण्य प्रकृतियाँ शेष रहती हैं –

साता वेदनीय–१, उच्च गोत्र–१, नरकायु के अतिरिक्त आयु–३, मनुष्यगति–१, मनुष्यगत्यानुपूर्वी –१, देवगति–१, देवगत्यानुपूर्वी–१, शरीर–५, बन्धन–५, संघात–५, पंचेन्द्रिय जाति–१, समचतुरस्रसंस्थान–१, वज्रवृषभनाराचसंहनन–१, अंगोपांग–३, प्रशस्तस्पर्श –८, प्रशस्तरस–५, प्रशस्तगन्ध–२, प्रशस्तवर्ण–५, प्रशस्तविहायोगति–१, अगुरुलघु–१, परघात–१, उच्छ्वास–१, उद्योत–१, आतप–१, त्रस–१, बादर–१, पर्याप्त–१, प्रत्येक–१, स्थिर–१, शुभ–१, सुभग–१, सुस्वर–१, निर्माण–१, आदेय–१, यशःकीर्ति–१, और तीर्थंकरप्रकृति–१।

२.२ स्थितिबन्ध

प्रश्न २४९ – स्थितिबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्मों के आत्मा के साथ रहने की काल मर्यादा को स्थितिबन्ध कहते हैं।
(योग के निमित्त से कर्मस्वरूप से परिणत पुद्गलस्कन्धों का कषाय के निमित्त से जीव के साथ एकस्वरूप होकर रहने के काल को स्थितिबन्ध कहते हैं।)(– धवला, ६/१,९.६,२/१४६)

प्रश्न २५० – आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी– कितनी हैं ?

उत्तर – आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की तीस – तीस कोड़ा–कोड़ी सागर। मोहनीयकर्म की सत्तर कोड़ा–कोड़ी सागर। नाम और गोत्रकर्म की बीस–बीस कोड़ा – कोड़ी सागर और आयुकर्म की तेतीस सागर।

प्रश्न २५१ – आठों कर्मों की जघन्य स्थिति कितनी – कितनी है ?

उत्तर – आठों कर्मों की जघन्य स्थिति इस प्रकार है – वेदनीय की बारह मुहूर्त, नाम तथा गोत्र की आठ–आठ मुहूर्त और शेष समस्त कर्मों की अन्तर्मुहूर्त।

प्रश्न २५२ – एक कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त होती है उसे एक कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

प्रश्न २५३ – सागर किसे कहते हैं ?

उत्तर – दश कोड़ाकोड़ी अद्धा पल्यों का एक सागर होता है।

प्रश्न २५४ – अद्धा पल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – दो हजार कोश गहरे, दो हजार कोश लम्बे और इतने ही चौड़े गड्ढे में, कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके – ऐसे उत्तम भोगभूमि के सात दिन तक की आयु के मेंढ़े के बच्चे के बालों को ठसाठस भरना। उसमें जितने बाल समायें, उनमें से एक–एक बाल को सौ–सौ वर्ष बाद निकालना। जितने समय में वह गड्ढा खाली हो जाये, उतने समय को एक व्यवहार पल्य कहते हैं।

एक व्यवहार पल्य से असंख्यात गुना बड़ा एक उद्धार पल्य होता है तथा एक उद्धार पल्य से असंख्यात गुना बड़ा एक अद्धा पल्य होता है।

प्रश्न २५५ – मुहूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर – अड़तालीस मिनिट का एक मुहूर्त होता है।

प्रश्न २५६ – अन्तर्मुहूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर – आवली से ऊपर और मुहूर्त से एक समय कम तक काल को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

प्रश्न २५७ – आवली किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक उच्छ्वास में संख्यात आवली होती हैं।

प्रश्न २५८ – उच्छ्वास काल किसे कहते हैं ?

उत्तर – नीरोगी पुरुष की नाड़ी के एक बार चलने के काल को उच्छ्वास काल कहते हैं।

प्रश्न २५९ – एक मुहूर्त में कितने उच्छ्वास होते हैं ?

उत्तर – एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) उच्छ्वास होते हैं।

२.३ अनुभागबन्ध, २.४ प्रदेशबन्ध

प्रश्न २६० – अनुभागबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्मों की फल देनेरूप हीनाधिक शक्ति को अनुभागबन्ध कहते हैं।

प्रश्न २६१ – प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – बंधने वाले कर्मों के परमाणुओं के परिमाण को प्रदेशबन्ध कहते हैं।

२.५ कर्मों की विभिन्न अवस्थाएँ

प्रश्न २६२ – उदय किसे कहते हैं ?

उत्तर – स्थिति के अनुसार कर्म के फल देने को उदय कहते हैं।

प्रश्न २६३ – उदीरणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – स्थिति पूर्ण होने के पूर्व ही कर्म के फल देने को उदीरणा कहते हैं।

प्रश्न २६४ – उपशम किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव के निमित्त से कर्म की शक्ति का प्रगट नहीं होना उपशम कहलाता है।

प्रश्न २६५ – उपशम के कितने भेद हैं ?

उत्तर – उपशम के दो भेद हैं – अन्तरकरणरूप उपशम और सदवस्थारूप उपशम।

प्रश्न २६६ – अन्तरकरणरूप उपशम किसे कहते हैं ?

उत्तर – आगामी काल में उदय आने योग्य कर्म परमाणुओं को आगे – पीछे उदय आने योग्य होने को अन्तरकरणरूप उपशम कहते हैं।

प्रश्न २६७ – सदवस्थारूप उपशम किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान अवस्था को छोड़कर आगामी काल में उदय आने वाले कर्मों के सत्ता में रहने को सदवस्थारूप उपशम कहते हैं।

प्रश्न २६८ – क्षय किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्म की आत्यन्तिक निवृत्ति को क्षय कहते हैं।

प्रश्न २६९ – क्षयोपशम किसे कहते हैं ?

उत्तर – किसी कर्म के वर्तमान निषेक में सर्वघाति स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा देशघाति स्पर्द्धकों का उदय और आगामी काल में उदय आने वाले कर्म के निषेकों का सदवस्थारूप उपशम, ऐसी उस कर्म की अवस्था को क्षयोपशम कहते हैं।

प्रश्न २७० – निषेक किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक समय में कर्म के जितने परमाणु उदय में आते हैं उन सबके समूह को निषेक कहते हैं।

प्रश्न २७१ – स्पर्द्धक किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनेक प्रकार की अनुभाग शक्ति से युक्त कार्मण वर्गणाओं के समूह को स्पर्द्धक कहते हैं।

प्रश्न २७२ – वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

प्रश्न २७३ – वर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर – समान अविभाग प्रतिच्छेदों के धारक प्रत्येक कर्म परमाणु को वर्ग कहते हैं।

प्रश्न २७४ – अविभाग प्रतिच्छेद किसे कहते हैं ?

उत्तर – शक्ति के अविभागी अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं।

प्रश्न २७५ – इस प्रकरण में 'शक्ति' शब्द से कौन – सी शक्ति इष्ट है ?

उत्तर – यहाँ शक्ति शब्द से कर्मों की अनुभागरूप अर्थात् फल देने की शक्ति इष्ट है।

प्रश्न २७६ – उदयाभावी क्षय किसे कहते हैं ?

उत्तर – बिना फल दिये आत्मा से कर्म का सम्बन्ध छूटना उदयाभावी क्षय कहलाता है।

प्रश्न २७७ – उत्कर्षण किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्मों की स्थिति एवं अनुभाग का बढ़ना उत्कर्षण कहलाता है।

प्रश्न २७८ – अपकर्षण किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्मों की स्थिति एवं अनुभाग का घटना अपकर्षण कहलाता है।

प्रश्न २७९ – संक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर – किसी कर्म का सजातीय एक भेद से दूसरे भेदरूप हो जाना संक्रमण कहलाता है।

(प्रश्न – निधत्त किसे कहते हैं ?)

उत्तर – जो कर्म उदयावली में आने तथा अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण होने के योग्य नहीं होता है उसे निधत्त कहते हैं। (उत्कर्षण और अपकर्षण हो सकता है।)

प्रश्न – निकाचित किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो कर्म उदयावली में आने, अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण होने तथा उत्कर्षण– अपकर्षण करने के योग्य नहीं होता है उसे निकाचित कहते हैं।) (– गोम्मटसार कर्मकाण्ड, जीवतत्व प्रदीपिका, ४४०)

प्रश्न २८० – समयप्रबद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक समय में जितने कर्म परमाणु और नोकर्म परमाणु बंधते हैं उन सबको समयप्रबद्ध कहते हैं।

प्रश्न २८१ – गुण हानि किसे कहते हैं ?

उत्तर – गुणाकाररूप हीन – हीन द्रव्य (परमाणु) जिसमें पाये जाते है, उसे गुण–हानि कहते हैं। जैसे – किसी जीव ने एक समय में ६३०० (त्रेसठ सौ) परमाणुओं के समूह रूप समय प्रबद्ध का बंध किया और उसमें ४८ समय की स्थिति पड़ी, उसमें गुण–हानियों के समूहरूप नाना गुण – हानि की संख्या छह है – उसमें से प्रथम गुण – हानि के परमाणु ३२००, दूसरी के १६००, तीसरी के ८००, चौथी के ४००, पाँचवीं के २००, छठवीं के १०० हैं। यहाँ उत्तरोत्तर गुण–हानियों में गुणाकाररूप हीन–हीन परमाणु (द्रव्य) पाये जाते हैं इसलिये इसको गुण–हानि कहते हैं।

प्रश्न २८२ – गुण हानि आयाम किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक गुण हानि के समयों को गुण हानि आयाम कहते हैं। जैसे – ऊपर दिए हुए दृष्टांत में ४८ समय की स्थिति में गुण हानि की संख्या ६ है। ४८ में ६ भाग देने से प्रत्येक गुण हानि का परिमाण ८ आया है। यही गुण हानि आयाम कहलाता है।

प्रश्न २८३ – नाना गुण हानि किसे कहते हैं ?

उत्तर – गुण हानियों के समूह को नाना गुण हानि कहते हैं। जैसे – ऊपर के दृष्टांत में आठ–आठ समय की छह गुण – हानि है। इस छह की संख्या को नाना गुण – हानि का परिमाण जानना चाहिए।

प्रश्न २८४ – अन्योन्याभ्यस्त राशि किसे कहते हैं ?

उत्तर – नाना गुण हानि की संख्या के बराबर ०२ की संख्या रखकर, उनका परस्पर गुणाकार करने से जो गुणन फल प्राप्त होता है उसे अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। जैसे – ऊपर के दृष्टांत में नाना गुण हानि की संख्या ६ है अतः ६ बार २ की संख्या रखकर उनका परस्पर गुणा करने से अर्थात् २ x २ x २ x २ x २ x २ = ६४ की संख्या प्राप्त होती है उसे ही अन्योन्याभ्यस्त राशि का परिमाण जानना चाहिए अथवा इस प्रकार भी जानना चाहिये–अन्योन्याभ्यस्त राशि = $२^{\text{नानागुण–हानि}}$। जैसे – ६४ = $२^{६}$

प्रश्न २८५ – अन्तिम गुण हानि के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार से निकलता है ?

उत्तर – समय प्रबद्ध में एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशि का भाग देने पर अन्तिम गुण हानि के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे – ६३०० में एक कम ६४ अर्थात् ६४ –१ = ६३ का भाग देने से १०० की संख्या मिलती है, यही अन्तिम गुण – हानि का द्रव्य है।

प्रश्न २८६ – अन्य गुण हानियों के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार निकलता है ?

उत्तर – अन्तिम गुण हानि के द्रव्य को प्रथम गुण हानि पर्यन्त दूना – दूना करने से अन्य गुण हानियों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे – २००, ४००, ८००, १६००, ३२००।

प्रश्न २८७ – प्रत्येक गुण हानि में प्रथमादि समयों के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार होता है ?

उत्तर – निषेकहार के चय से गुणा करने पर प्रत्येक गुण हानि के प्रथम समय का द्रव्य निकलता है और प्रथम समय के द्रव्य में से एक–एक चय घटाने से उत्तरोत्तर समयों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे – निषेकहार १६ को चय ३२ से गुणा करने पर प्रथम गुणहानि के प्रथम समय का द्रव्य ५१२ होता है और ५१२ में से एक–एक चय अर्थात् बत्तीस घटाने

से दूसरे समय के द्रव्य का परिमाण ४८०, तीसरे का ४४८, चौथे का ४१६, पांचवे का ३८४, छठवें का ३५२, सातवें का ३२० और आठवें का २८८ निकलता है। इसी प्रकार द्वितीयादि गुण हानियों में भी प्रथमादि समयों के द्रव्य का परिमाण निकाल लेना चाहिए।

प्रश्न २८८ – निषेकहार किसे कहते हैं ?

उत्तर – गुण हानि आयाम से दुगुने परिमाण को निषेकहार कहते हैं। जैसे – ऊपर के दृष्टान्त में गुण हानि आयाम ८ से दुगुने १६ को निषेकहार कहते हैं।

प्रश्न २८९ – चय किसे कहते हैं ?

उत्तर – श्रेणी – व्यवहार गणित में समान हानि या समान वृद्धि के परिमाण को चय कहते हैं।

प्रश्न २९० – इस प्रकरण में गुण हानि के चय का परिमाण निकालने की क्या रीति है ?

उत्तर – निषेकहार में एक अधिक गुण हानि आयाम का परिमाण जोड़कर आधा करने से जो लब्ध आवे, उसको गुण हानि आयाम से गुणा करें। इस प्रकार गुणा करने से जो गुणनफल होता है, उसका भाग विवक्षित गुण हानि के द्रव्य में देने से विवक्षित गुण हानि के चय का परिमाण निकलता है।

जैसे – निषेकहार १६ में एक अधिक गुण हानि आयाम ९ जोड़ने से २५ हुए। पच्चीस के आधे १२.५ को गुण – हानि आयाम ८ से गुणाकार करने से १०० होते हैं। इस १०० का भाग विवक्षित प्रथम गुणहानि के द्रव्य ३२०० में देने से प्रथम गुण हानि संबंधी चय ३२ आया। इसी प्रकार द्वितीय गुण हानि के चय का परिमाण १६, तृतीय का ८, चतुर्थ का ४, पंचम का २ और अन्तिम का १ जानना चाहिए।

प्रश्न २९१ – अनुभाग की रचना का क्रम क्या है ?

उत्तर – द्रव्य की अपेक्षा से जो रचना ऊपर बतायी गयी है, उसमें प्रत्येक गुण–हानि के प्रथमादि समय सम्बधी द्रव्य समूह को वर्गणा कहते हैं और उन वर्गणाओं में जो परमाणु हैं, उनको वर्ग कहते हैं, प्रश्न २८७ के उदाहरण के अनुसार प्रथम गुणहानि के प्रथम वर्गणा में जो ५१२ वर्ग हैं उनमें अनुभागशक्ति के अविभाग–प्रतिच्छेद समान हैं और वे द्वितीयादि वर्गणाओं के वर्गों के अविभाग – प्रतिच्छेदों की अपेक्षा सबसे न्यून अर्थात् जघन्य हैं। द्वितीयादि वर्गणा के वर्गों में एक–एक अविभाग–प्रतिच्छेद की अधिकता के क्रम में जिस वर्गणा पर्यन्त एक – एक अविभाग – प्रतिच्छेद बढ़ते हैं, वहाँ तक की वर्गणाओं के समूह का नाम एक स्पर्द्धक है और जिस वर्गणा के वर्गों में युगपत् अनेक अविभाग प्रतिच्छेदों की वृद्धि होकर प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग – प्रतिच्छदों की संख्या से दुगनी संख्या हो जाती है, वहाँ से दूसरे स्पर्द्धक का प्रारंभ समझना चाहिए। इस ही प्रकार जिन – जिन वर्गणाओं के वर्गों में प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग – प्रतिच्छेदों की संख्या से तिगुने,चौगुने आदि अविभाग – प्रतिच्छेद होते हैं वहाँ से तीसरे, चौथे आदि स्पर्द्धकों का प्रारम्भ समझना चाहिए। इस प्रकार एक गुण–हानि में अनेक स्पर्द्धक होते हैं।

२.६ आस्रव

प्रश्न २९२ – आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर – बन्ध के कारण को आस्रव कहते हैं।

प्रश्न २९३ – आस्रव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – आस्रव के चार भेद हैं – १ – द्रव्य बन्ध का निमित्त कारण, २ – द्रव्यबन्ध का उपादान कारण, ३ – भावबन्ध का निमित्त कारण और ४ – भावबन्ध का उपादान कारण।

(प्रश्न क्र. ३११ भी देखें)

प्रश्न २९४ – कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर – कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं।

प्रश्न २९५ – कारण के कितने भेद हैं ?

उत्तर – कारण के दो भेद हैं – समर्थकारण और असमर्थकारण।

प्रश्न २९६ – समर्थकारण किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रतिबन्ध के अभावसहित सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को समर्थकारण कहते हैं। समर्थकारण के होने पर अनन्तर समय में कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है।

प्रश्न २९७ – असमर्थकारण किसे कहते हैं ?

उत्तर – भिन्न – भिन्न प्रत्येक सामग्री को असमर्थकारण कहते हैं। असमर्थकारण कार्योत्पत्ति का नियामक नहीं है।

प्रश्न २९८ – सहकारी सामग्री के कितने भेद हैं ?

उत्तर – सहकारी सामग्री के दो भेद हैं – निमित्तकारण और उपादानकारण।

(उपादान निजशक्ति है, जिय को मूल स्वभाव। है निमित्त परयोग तैं, बन्यो अनादि बनाव॥)

(–उपादान–निमित्त संवाद, भैया भगवतीदास, छन्द ३)

प्रश्न २९९ – निमित्तकारण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप नहीं परिणमता है किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक होता है, उसे निमित्तकारण कहते हैं। जैसे – घट की उत्पत्ति में कुम्भकार, दण्ड, चक्र आदि।

(जो पदार्थ स्वयं तो कार्यरूप में नहीं परिणमता, परन्तु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आता है उसे निमित्त कारण कहते हैं। जैसे – घट की उत्पत्ति में कुम्भकार, दण्ड, चक्र आदि।)

(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १४१)

प्रश्न ३०० – उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमता है उसे उपादानकारण कहते हैं। जैसे – घट की उत्पत्ति में मिट्टी। अनादिकाल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आ रहा है, उसमें अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय उपादानकारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती पर्याय कार्य है।

(पूर्व परिणामसहित द्रव्य कारणरूप है और उत्तरपरिणामसहित द्रव्य कार्यरूप है – ऐसा नियम है।)

(–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, २२२)

प्रश्न ३०१ – द्रव्यबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – कार्मण स्कन्धरूप पुद्गलद्रव्य का आत्मा के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध होने को द्रव्यबन्ध कहते हैं।

प्रश्न ३०२ – भावबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा के योग – कषायरूप भावों को भावबन्ध कहते हैं।

प्रश्न ३०३ – द्रव्यबन्ध का निमित्त कारण क्या है ?

उत्तर – आत्मा के योग – कषायरूप भाव द्रव्यबन्ध के निमित्त कारण हैं।

प्रश्न ३०४ – द्रव्यबन्ध का उपादानकारण क्या है ?

उत्तर – बन्ध होने के पूर्वक्षण में बन्ध होने के सन्मुख कार्मण स्कन्ध को द्रव्यबन्ध का उपादान कारण कहते हैं।

प्रश्न ३०५ – भावबन्ध का निमित्त कारण क्या है ?

उत्तर – उदय तथा उदीरणा अवस्था को प्राप्त पूर्वबद्धकर्म भावबन्ध का निमित्त कारण है।

प्रश्न ३०६ – भावबन्ध का उपादान कारण क्या है ?

उत्तर – भावबन्ध के विवक्षित समय से अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती योग – कषायरूप आत्मा की पर्याय विशेष को भावबन्ध का उपादान कारण कहते हैं।

प्रश्न ३०७ – भावास्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्यबन्ध के निमित्त कारण अथवा भावबन्ध के उपादान कारण को भावास्रव कहते हैं। (जीव की शुभाशुभभावमय विकारी अवस्था को भावास्रव कहते हैं।)

प्रश्न ३०८ – द्रव्यास्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्यबन्ध के उपादानकारण अथवा भावबन्ध के निमित्तकारण को द्रव्यास्रव कहते हैं। (जीव की शुभाशुभभावमय विकारी अवस्था के समय कर्मयोग्य नवीन रजकणों का स्वयं – स्वतः आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप आना द्रव्यास्रव है।) (–लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १२५)

प्रश्न ३०९ – प्रकृतिबन्ध और अनुभाग बन्ध में क्या भेद है ?

उत्तर – प्रत्येक प्रकृति के भिन्न–भिन्न उपादान शक्तियुक्त अनेक भेदरूप कार्मण–स्कन्ध का आत्मा से सम्बन्ध होना प्रकृतिबन्ध कहलाता है और उन ही स्कन्धों में तारतम्यरूप (न्यूनाधिकरूप) फलदान शक्ति को अनुभागबन्ध कहते हैं।

प्रश्न ३१० – समस्त प्रकृतियों के बन्ध का कारण सामान्यतया योग है या उसमें कुछ विशेषता है ?

उत्तर – जिस प्रकार भिन्न–भिन्न उपादान शक्तियुक्त नाना प्रकार के भोजनों को मनुष्य, हस्त द्वारा विशेष इच्छापूर्वक ग्रहण करता है और विशेष इच्छा के अभाव में उदर – पूरण करने के लिये भोजन–सामान्य का ग्रहण करता है, उस ही प्रकार यह जीव विशेष कषाय के अभाव में योगमात्र से केवल साता वेदनीयरूप कर्म को ग्रहण करता है, परन्तु वह योग यदि किसी कषाय–विशेष से अनुरंजित हो तो अन्य–अन्य प्रकृतियों का भी बंध करता है।

प्रश्न ३११ – प्रकृतिबन्ध के कारण की अपेक्षा से आस्रव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – प्रकृतिबन्ध के कारण पाँच हैं – मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

(यहाँ मात्र प्रकृतिबन्ध का कारण कहा गया है, परन्तु इन पाँच प्रत्ययों को चारों प्रकार के बन्ध का कारण समझना चाहिए।) (प्रश्न क्रमांक २९३ भी देखें)

प्रश्न ३१२ – मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से अदेव में देवबुद्धि,अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि, अधर्म में धर्मबुद्धि इत्यादि विपरीत अभिनिवेश (उल्टी मान्यता) रूप जीव के परिणाम को मिथ्यात्व कहते हैं।

(प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्वों के अन्यथा श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व दो प्रकार का है – अगृहीत और गृहीत। अनादिकाल से जीव की शरीरादि पर पदार्थों में एकत्वबुद्धि अगृहीत मिथ्यादर्शन है तथा कुगुरु, कुदेव और कुधर्म के निमित्त से जो अनादिकालीन मिथ्यात्व का पोषण करना गृहीत मिथ्यादर्शन है।)

(–छहढाला, दूसरी ढाल)

प्रश्न ३१३ – मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर – मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं – एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व और विनय मिथ्यात्व।

प्रश्न ३१४ – एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनन्त धर्मयुक्त धर्मी के संबंध में 'यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं' इत्यादिरूप एकान्त अभिनिवेश (अभिप्राय) को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे – बौद्ध मतावलम्बी पदार्थ को सर्वथा क्षणिक मानते हैं।

प्रश्न ३१५ – विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – 'सग्रन्थ निर्ग्रन्थ है' अर्थात् वस्त्रधारी साधु होते हैं या 'केवली ग्रासाहारी (कवलाहारी) हैं' इत्यादि रुचि या श्रद्धा को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ३१६ – संशय मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – 'धर्म का लक्षण अहिंसा है या नहीं' इत्यादि रूप से सन्देह युक्त श्रद्धा को संशय मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ३१७ – अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – जहाँ हिताहित के विवेक का कुछ भी सद्भाव नहीं होता है ऐसी श्रद्धा को अज्ञान मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे – पशुवध में धर्म मानना।

प्रश्न ३१८ – विनय मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – समस्त देवों और समस्त मतों को समान मानने रूप श्रद्धा को विनय मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ३१९ – अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर – हिंसा आदि पापों तथा इन्द्रिय मन के विषयों में प्रवृत्ति को अविरति कहते हैं।

प्रश्न ३२० – अविरति के कितने भेद हैं ?

उत्तर – अविरति के तीन भेद हैं –
१. अनन्तानुबंधी कषाय उदय जनित अविरति।
२. अप्रत्याख्यानावरण कषाय उदयजनित अविरति।
३. प्रत्याख्यानावरण कषाय उदयजनित अविरति।

(अन्य अपेक्षा से अविरति के बारह भेद हैं – षट्काय के जीवों की हिंसा का त्याग न करना और पाँच इन्द्रियों और मन के विषय में प्रवृत्ति करना।) (लघु जैन सिद्धांत प्रवेसिका, प्रश्न १५९)

प्रश्न ३२१ – प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर – संज्वलनकषाय और नोकषाय के तीव्र उदय से निरतिचार चारित्र पालने में अनुत्साह तथा स्वरूप की असावधानी को प्रमाद कहते हैं।

(प्रमाद की इस परिभाषा में छटवें गुण स्थान के प्रमाद को ही प्रमाद कहा गया है, जबकि पहले गुणस्थान से छटवें गुणस्थान तक प्रमाद की सत्ता होती है लेकिन यहाँ पहले से लेकर पाँचवें गुणस्थान तक के प्रमाद को उन–उन गुणस्थानों के योग्य मिथ्यात्व और अविरति भावों में अंतर्भाव किया गया है।)

प्रश्न ३२२ – प्रमाद के कितने भेद हैं ?

उत्तर – प्रमाद के पन्द्रह भेद हैं – चार विकथा (स्त्रीकथा, राजकथा, चोर कथा, भोजनकथा), चार कषाय (संज्वलन कषाय के तीव्रोदयजनित क्रोध, मान, माया, लोभ), पाँच इन्द्रियों के विषय, एक निद्रा और एक स्नेह।

प्रमाद के भेद

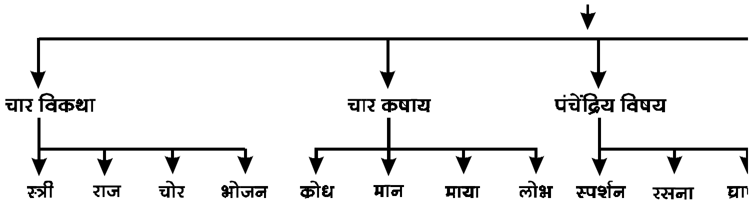

प्रश्न ३२३ – कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – संज्वलनकषाय और नोकषाय के मंद उदय में प्रादुर्भूत आत्मा के परिणाम विशेष को कषाय कहते हैं।

(कषाय की इस परिभाषा में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद के बाद जो कषाय बचती है उसे ही कषाय कहा गया है। जबकि मिथ्यात्व, अविरति और प्रमाद के साथ भी कषाय होती है, परन्तु यहाँ उनके साथ रहने वाली कषाय को मिथ्यात्व, अविरति और प्रमाद के अंतर्गत में शामिल किया गया है।)

प्रश्न ३२४ – योग किसे कहते हैं ?

उत्तर – मनोवर्गणा वचनवर्गणा और कायवर्गणा (आहार वर्गणा तथा कार्माण वर्गणा) के अवलंबन से कर्म, नोकर्म को ग्रहण करने की शक्ति विशेष को योग कहते हैं।

प्रश्न ३२५ – योग के कितने भेद हैं ?

उत्तर – योग के पन्द्रह भेद हैं – चार मनोयोग (सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग), चार वचनयोग (सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग, अनुभय वचनयोग) और सात काय योग (औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण काययोग)।

प्रश्न ३२६ – मिथ्यात्व की प्रधानता से कितनी और किन–किन प्रकृतियों का बंध होता है ?

उत्तर – मिथ्यात्व की प्रधानता से सोलह प्रकृतियों का बंध होता है – मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, चार जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय), स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

प्रश्न ३२७ – अनन्तानुबंधी कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन–किन प्रकृतियों का बंध होता है ?

उत्तर – अनन्तानुबंधी कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से पच्चीस प्रकृतियों का बंध होता है – अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, उद्योत, चार संस्थान (न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, कुब्जक और वामन), चार संहनन (वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलित)।

प्रश्न ३२८ – अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन–किन प्रकृतियों का बंध होता है ?

उत्तर – अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से दश प्रकृतियों का बंध होता है – अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रवृषभनाराच संहनन।

प्रश्न ३२९ – प्रत्याख्यानावरण कषाय उदय जनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन – किन प्रकृतियों का बंध होता है ?

उत्तर – प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से चार प्रकृतियों का बंध होता है – प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ।

प्रश्न ३३० – प्रमाद की प्रधानता से कितनी और किन–किन प्रकृतियों का बंध होता है ?

उत्तर – प्रमाद की प्रधानता से छह प्रकृतियों का बंध होता है – अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक।

प्रश्न ३३१ – कषाय की प्रधानता से कितनी और किन – किन प्रकृतियों का बंध होता है ?

उत्तर – कषाय की प्रधानता से अट्ठावन प्रकृतियों का बंध होता है – देवायु, निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक आङ्गोपाङ्ग, देवगति, देव गत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय, यशस्कीर्ति और उच्च गोत्र।

प्रश्न ३३२ – योग की प्रधानता से किस प्रकृति का बंध होता है ?

उत्तर – योग की प्रधानता से एक साता वेदनीय प्रकृति का बंध होता है।

प्रश्न ३३३ – कर्म प्रकृतियों की संख्या १४८ है, परन्तु उनमें केवल १२० प्रकृतियों के ही कारण बताये गये हैं, सो २८ प्रकृतियों का क्या होता है ?

उत्तर – बन्ध योग्य १२० प्रकृतियों में बीस स्पर्शादि की जगह मुख्य चार का ग्रहण किया गया है, इस कारण १६ तो ये प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। पाँच शरीरों के पाँच बन्धन तथा पाँच

संघात का ग्रहण भी नहीं किया जाता, इस कारण १० प्रकृतियाँ ये भी कम हो जाती हैं। सम्यक्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व इन २ प्रकृतियों का भी बन्ध नहीं होता है; क्योंकि सम्यक्दृष्टि जीव पूर्वबद्ध मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खण्ड करता है, तब इन २ प्रकृतियों का प्रादुर्भाव होता है। इस कारण २ प्रकृतियाँ ये भी कम हो जाती हैं। इस प्रकार २८ प्रकृतियाँ कम करके बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ मानी गईं हैं।

प्रश्न ३३४ – द्रव्यास्रव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – द्रव्यास्रव के दो भेद हैं – साम्परायिक आस्रव और ईर्यापथ आस्रव।

प्रश्न ३३५ – साम्परायिक आस्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव के कषाय भावों के निमित्त से जो कर्म प्रकृतियाँ आत्मा में कुछ काल तक के लिये स्थितिबंध को प्राप्त होती हैं उनके आस्रव को साम्परायिक आस्रव कहते हैं।

प्रश्न ३३६ – ईर्यापथ आस्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव में मात्र योग के निमित्त जिन कर्म परमाणुओं का बन्ध, उदय और निर्जरा एक ही समय में होती है उनके आस्रव को ईर्यापथ आस्रव कहते हैं।

प्रश्न ३३७ – इन दोनों आस्रवों के स्वामी कौन – कौन हैं ?

उत्तर – साम्परायिक आस्रव का स्वामी कषायसहित जीव और ईर्यापथ आस्रव का स्वामी कषाय रहित जीव होता है।

प्रश्न ३३८ – पुण्यास्रव और पापास्रव का कारण क्या है ?

उत्तर – शुभयोग से पुण्यास्रव और अशुभयोग से पापास्रव होता है।

प्रश्न ३३९ – शुभयोग और अशुभयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – शुभ परिणाम से उत्पन्न योग को शुभ योग और अशुभ परिणाम से उत्पन्न योग को अशुभ योग कहते हैं।

प्रश्न ३४० – जिस समय जीव को शुभयोग होता है, उस समय पाप प्रकृतियों का आस्रव होता है या नहीं ?

उत्तर – जिस समय जीव को शुभयोग होता है उस समय भी पाप प्रकृतियों का आस्रव होता है।

प्रश्न ३४१ – यदि शुभयोग के समय भी पापास्रव होता है तो शुभयोग पापास्रव का कारण ठहरा ?

उत्तर – शुभयोग, पापास्रव का कारण नहीं है क्योंकि जिस समय जीव में शुभयोग होता है, उस समय पुण्यप्रकृतियों में स्थिति अनुभाग अधिक होता है और पाप प्रकृतियों में कम; इसी प्रकार जब अशुभयोग होता है तब पापप्रकृतियों में स्थिति अनुभाग अधिक पड़ता है और पुण्यप्रकृतियों में कम। तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ के छठवें अध्याय में ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के आस्रव के कारण जो प्रदोष, निह्नव, आदि कहे गये हैं, उसका अभिप्राय है कि उन भावों से उन – उन प्रकृतियों मे स्थिति अनुभाग अधिक – अधिक पड़ते हैं; अन्यथा जो ज्ञानावरणादि पापप्रकृतियों का आस्रव दसवें गुणस्थान तक सिद्धान्त शास्त्र में कहा है, उससे विरोध आता है अथवा वहाँ शुभयोग के अभाव का प्रसङ्ग आता है क्योंकि शुभयोग दसवें गुणस्थान से पहले – पहले ही होता है।

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

द्वितीय वर्ष (परिचय)
प्रश्न पत्र – श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका

समय – ३ घंटा | अध्याय – ४ (ब) कर्म का स्वरूप | पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) कर्म सहित जीव को.................कहते हैं। (ख) चार गति.................का भेद है।

(ग) योग से प्रकृति और प्रदेश बंध होते हैं और कषाय स .... और.................बंध होते हैं।

(घ) जो कर्म आत्मा के.................और.................गुण को घातता है उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

(ङ) जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय आदि पर्यायों में जन्म होता है उसे.................कहते हैं।

प्रश्न २ –सत्य/असत्य कथन लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) जिस कर्म के उदय से अवयव असुन्दर होते हैं वह शुभ नामकर्म है।

(ख) जिस कर्म के उदय से जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है वह पाप कर्म है।

(ग) आवली से ऊपर और मुहूर्त से एक समय कम तक काल को अंतर्मुहूर्त कहते हैं।

(घ) एक मुहूर्त में ३३७३ उच्छ्वास होते हैं। (ङ) बिना फल दिये आत्मा से कर्म का संबंध छूटना उदयाभावी नाश है।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) गुण हानियों के समूह को.........कहते हैं –(१) कर्म नाश (२) उदय (३) नानागुण हानि (४) हानि

(ख) श्रेणी व्यवहार गणित में समान हानि या समान वृद्धि के परिणाम को........कहते हैं –
(१) कर्म (२) गुण हानि (३) चय (४) निषेकहार

(ग) बंध के कारण को..........कहते हैं – (१) द्रव्य (२) पुद्गल (३) कर्म (४) आस्रव

(घ) कारण उसे कहते हैं जो –
(१) कार्य के पहले हो (२) कार्य के बाद (३) कार्य की उत्पादक सामग्री (४) कार्य के होने के सामग्री

(ङ) आत्मा के योग कषाय रूप भावों के निमित्त कारण को कहते हैं –(१) बंध(२) द्रव्य बंध(३) भाव बंध(४) आस्रव

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
कर्म की आत्यंतिक निवृत्ति	दर्शनमोहनीय
केवली, श्रुत, संघ, देव का अवर्णवाद	चारित्र मोहनीय
आदेय–अनादेय	संस्थान नामकर्म
शरीराकृति	क्षय
कषाय का वेदन	नामकर्म

प्रश्न ५ – अति लघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ४ x ५ = २०)

(क) उपादान कारण किसे कहते हैं ? (ख) प्रकृति बंध और अनुभाग बंध में क्या अंतर है ?

(ग) प्रमाद के कितने भेद हैं ? चार्ट बनाइये। (घ) योग के कितने भेद हैं ? चार्ट बनाइये।

(ङ) आठ कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी – कितनी है ? लिखिये। (अथवा) दर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ? नाम लिखिये।

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) कर्म किसे कहते हैं ? कर्म बंध के कितने भेद हैं ? उनकी परिभाषाएँ लिखिये।

(२) प्रकृति बंध या कर्म के आठ भेदों की परिभाषाएँ लिखिये। (३) किन्हीं चार नामकर्मों की परिभाषाएँ लिखिये।

(४) उदय, उदीरणा, उपशम क्या है ? उपशम को भेद सहित समझाइये। (५) अद्धापल्य किसे कहते हैं ?

(६) मिथ्यात्व किसे कहते हैं ? मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ? नाम सहित परिभाषा लिखिये।

प्रश्न ७ – किसी एक विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (अंक १ x १० = १०)

(क) आस्रव (ख) नामकर्म की प्रकृतियाँ (ग) प्रकृति एवं प्रदेश बंध (घ) स्थिति एवं अनुभाग बंध।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

द्वितीय वर्ष (परिचय)

प्रथम प्रश्न पत्र – वंदना

समय – ३ घंटा पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) स्वसमय शुद्धात्मा .... से प्रमाण है। (ख) दंसन धरंन च .... गमनं च।

(ग) .... की ९६ हजार रानियाँ होती हैं। (घ) कल्पकाल का प्रारंभ .... से होता है।

(ङ) मोक्षमार्ग का मूल .... है।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) जीव अपने चैतन्य स्वरूप को यादकर तीव्र मोह के कारण दुःख को भोगता है।

(ख) अवसर्पिणी काल के तीसरे सुषमा–दुःषमा काल को जघन्य भोगभूमि का काल कहते हैं।

(ग) ज्ञानमार्ग की साधना अपेक्षा सम्यग्दर्शन के सात भेद है।

(घ) गुन आयरन धम्म आयरनं, आयरन न्यान पय परम पयं।

(ङ) लौकांतिक देव बाल ब्रह्मचारी, एक भवावतारी, छटवें ब्रह्मस्वर्ग के निवासी होते हैं।

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
णमोकार की विराधना	सुषमा सुषमा
उत्कृष्ट भोगभूमि	सम्यग्दर्शन
स्वपर भेदज्ञान	सच्चा धर्म
करुणा दया की प्रधानता	मनुष्य
विवेक पूर्वक निर्णय	सुभौम

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) वस्तु स्वरूप का बोध कराने वाली विधि है – (१) पूजा विधि (२) साधना (३) मंदिर विधि (४) दर्शन

(ख) स्वभाव के आश्रय से २४ परिग्रह का त्याग है– (१) उत्तम तप (२) उत्तम आंकिचन्य (३) संयम (४) त्याग

(ग) जीव के–––––––में विचित्रता होती है – (१) भाव (२) परिणाम (३) गुण (४) जाति

(घ) जिनमें जन्म जरा आदि दोष नहीं होते– (१) सच्चे देव (२) सद्गुरु (३) शास्त्र (४) सूत्र

(ङ) णमोकार मंत्र को मंदिर विधि में कहा है– (१) मंगल (२) अपराजित मंत्र (३) मंगलकारी (४) मंत्र

प्रश्न ५ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ३० शब्दों में लिखिये – (अंक ४ x ५ = २०)

(१) षट्काल चक्र का नामकरण कीजिए। (२) सूत्र किसे कहते हैं ?

(३) सिद्धांत ग्रंथ किसे कहते हैं ? (४) शलाका पुरुष किसे कहते हैं ?

(५) अबलबली का क्या अर्थ है ?

(६) सम्यग्ज्ञान के भेद लिखकर बताइये कि इसकी क्या आवश्यकता है ?

प्रश्न ६ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये – (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) समवशरण की रचना का वर्णन मंदिर विधि के अनुसार बताइये।

(२) करणानुयोग की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के भेद लिखिए।

(३) शलाका पुरुष जैसी उत्कृष्ट पदवी पाकर भी जीव नरक क्यों चले जाते हैं ?

(४) हुंडावसर्पिणी काल की कोई छैः विशेषताएँ लिखिए ?

(५) प्रमाण गाथाओं का क्या अभिप्राय है ? (६) विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के नाम लिखिए।

प्रश्न ७ – किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग २०० शब्दों में लिखिये – (अंक १ x १० = १०)

षट्काल वर्णन अथवा रत्नत्रय।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

द्वितीय वर्ष (परिचय)

द्वितीय प्रश्न पत्र – आराधना

समय – ३ घंटा पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) ज्ञान मार्ग के पथिक निश्चय से .... को ही सच्चा देव मानते है।

(ख) जब आत्मदर्शन हो सही, फिर .... से काम क्या।

(ग) ज्ञानीजन शुद्ध चिदानंदमयी .... की स्तुति उच्चारण करते हैं।

(घ) .... अविरत सम्यग्दृष्टि के लिए कहा गया है।

(ङ) हितकार अर्थ का बीजाक्षर मंत्र .... है।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) पंडितो पूज आराध्यं' जिन समयं च पूजते।

(ख) चार महाव्रत, चार समिति, पाँच गुप्ति होती हैं।

(ग) त्रिभंगीसार करणानुयोग का ग्रंथ है।

(घ) आठ कर्मों से रहित आत्मा पूर्ण शुद्ध सिद्ध है।

(ङ) ज्ञानी विभाव में कभी एकत्व रूप परिणमन नहीं करते।

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
प्रक्षालन	संसार से छूटने की भावना
आभूषण	स्वयं का दोष कहकर प्रायश्चित लेना
संवेग	सद्गुरु के सद्गुणों का स्मरण
गर्हा	अज्ञान, मिथ्या मान्यता
उपासना	रत्नत्रय, समता, ध्रुवता

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) शुद्ध भाव में स्थिर होना ही––है– (१) ज्ञान विज्ञान (२) ज्ञान स्नान (३) प्रक्षालितं (४) आभरणं

(ख) आत्मानुभूति की बढ़ती हुई अवस्थाएं है–(१) पदवी (२) परमेष्ठी (३) गुण स्थान (४) पंचार्थ

(ग) ज्ञान सरोवर––से भरा है– (१) जल (२) मल (३) मिथ्यात्व (४) सम्यक्त्व

(घ) ध्रुवधाम का चिंतन–मनन कहलाता है– (१) शरीर (२) संयम (३) निश्चय तप (४) व्य. स्वाध्याय

(ङ) महापुरुष कुल होते हैं – (१) १६७ (२) १६८ (३) १६९ (४) १७०

प्रश्न ५ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ३० शब्दों में लिखिये – (अंक ४ x ५ = २०)

(१) उपदेश शुद्ध सार ग्रंथ की विषय वस्तु का परिचय दीजिये।

(२) पंडित की क्या परिभाषा है ?

(३) पंचार्थ को स्पष्ट कीजिए। (एक–वाक्य में)

(४) निर्वेद, उपशम की परिभाषा लिखिए।

(५) अंतरशोधन का मार्ग क्या है ?

(६) ज्ञानी किस प्रकार देवदर्शन करते हैं ?

प्रश्न ६ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये – (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) दातारो दान सुद्धं च, पूजा आचरन संजुतं के आधार पर सम्यक्ज्ञानी के दान का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(२) टिप्पणी लिखिए–ज्ञानी का प्रक्षालन एवं वस्त्र। (३) किसी एक मत का परिचय दीजिए (पाठ के आधार पर)

(४) पदवी के नाम लिखकर किन्हीं दो पदवी का स्वरूप समझाइये। (५) मूलगुण किसे कहते हैं ? नाम सहित वर्णन कीजिए। (६) पुरुषार्थी साधक को कर्म की प्रबलता क्यों नहीं होती ?

प्रश्न ७ – किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग २०० शब्दों में लिखिये – (अंक १ x १० = १०)

(अ) अध्यात्म आराधना के आधार पर पूजा विधि का परिचय दीजिए।

(ब) सात तत्व नौ पदार्थ में आत्म श्रद्धान किस प्रकार करना चाहिए। अथवा
पंडित पूजा जी ग्रंथ के आधार पर सम्यग्ज्ञान का स्वरूप समझाइये।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

द्वितीय वर्ष (परिचय)

तृतीय प्रश्न पत्र – साधना

समय –३ घंटा   पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) परमात्म स्वरूप की निरंतर भावना भाना .... लेश्या वाले जीव का लक्षण है।

(ख) निज शुद्ध चैतन्य प्रतिमा का दर्शन ही .... प्रतिमा है।

(ग) गृहस्थी के कार्य में न चाहते हुए होने वाली हिंसा को .... कहते हैं।

(घ) शद्धोपयोगमयी .... संसार रूपी भंवर को विनष्ट करने वाली है।

(ङ) अपना ममल स्वभाव .... को जानने वाला है।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) कर्म स्वभाव से क्षय होने वाले हैं। (ख) संसारी जीवों को प्रसन्न करना जनरंजन रागभाव आत्महितकारी है।

(ग) परम सहावेन कम्म विलयंति। (घ) अप्पा अप्प सहावं, अप्प सुद्धप्प विमल परमप्पा।

(ङ) तीन काल में शुद्ध निश्चय नय से मैं आत्मा शुद्धात्मा परमात्मा हूँ।

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
सत् अपलाप	राग–द्वेष से निवृत्ति
असत् का उद्भावन	विद्यमान को अविद्यमान मानना
अन्यथा प्ररुपण	हिंसा में धर्म बताना
गर्हित वचन	अविद्यमान को विद्यमान कहना
मोक्ष	निंदनीय कलहकारक वचन

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) एक ही समय में जानने और परिणमन करने के कारण आत्मा को––कहते हैं–
(१) शुद्धात्मा (२) चैतन्य (३) समय (४) ममल

(ख) पापों के एकदेश त्याग को कहते हैं– (१) अणुव्रत (२) शिक्षाव्रत (३) शुद्धव्रत (४) महाव्रत

(ग) अपने से भिन्न पर पदार्थों में ममत्व बुद्धि है – (१) क्रोध (२) हिंसा (३) परिग्रह (४) चोरी

(घ) शोभनीक मंगलीक विशेषता किसकी हैं – (१) शास्त्र (२) जिनवाणी (३) धर्म (४) गुरु

(ङ) शुद्धात्मबोधक उत्पन्न अर्थ का प्रतीक है – (१) ॐ (२) ह्रीं (३) श्रीं (४) अर्हं

प्रश्न ५ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ३० शब्दों में लिखिये – (अंक ४ x ५ = २०)

(१) पर्याय में शुद्धता कैसे प्रगट होती है ? (२) कमल स्वभावी आत्मा की क्या विशेषता है ?

(३) आत्मधर्म की क्या महिमा है ? (४) अनुराग भक्ति प्रतिमा किसे कहते हैं ?

(५) कर्मादि को जीतने का मूल आधार क्या है ? (६) कललंकृत हो कम्म न उपजे का क्या अर्थ है ?

प्रश्न ६ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये – (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत में अंतर बताइये। (२) कृष्ण और कापोत लेश्या में अंतर बताइये।

(३) सामायिक शिक्षाव्रत और सामायिक प्रतिमा में अंतर बताइये। (४) सम्यक्चारित्र के भेद समझाइये।

(५) सम्यग्दृष्टि कौन सी भावनाए भाता है, उनका स्वरूप क्या है ? (६) कर्म के बंध और निर्जरा में मूल कारण क्या है?

प्रश्न ७ – किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग २०० शब्दों में लिखिये – (अंक १ x १० = १०)

(अ) श्री कमल बत्तीसी जी ग्रंथ का सारांश लिखिए अथवा ग्यारह प्रतिमा का स्वरूप समझाइये।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

द्वितीय वर्ष (परिचय)

चतुर्थ प्रश्न पत्र – जैन सिद्धांत प्रवेशिका

समय – ३ घंटा पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) छह द्रव्यों के समूह को .... कहते हैं। (ख) अनेक .... के बंध को स्कन्ध कहते हैं।

(ग) कर्म सहित जीव को .... कहते हैं। (घ) चार गति का .... भेद है।

(ङ) जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय आदि पर्यायों में जन्म होता है, उसे .... कहते हैं।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) जिस कर्म के उदय से अवयव सुन्दर होते हैं वह शुभ नामकर्म है।

(ख) जिस कर्म के उदय से जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है वह पाप कर्म है।

(ग) एक मुहूर्त में तीन हजार तीन सौ तिहत्तर उच्छवास होते हैं।

(घ) योग और कषाय को बाह्य क्रिया कहते हैं।

(ङ) उच्चता और नीचता (गोत्रकर्म) के अभाव को सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
कर्म की आत्यंतिक निवृत्ति	दर्शनमोहनीय
केवली, श्रुत, संघ, देव का अवर्णवाद	चारित्र मोहनीय
आदेय अनादेय	संस्थान नामकर्म
शरीराकृति	क्षय
कषाय का वेदन	नामकर्म

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) गति हेतुत्व विशेष गुण किस द्रव्य का है– (१) धर्म (२) अधर्म (३) काल (४) पुद्गल

(ख) गुण हानियों के समूह को कहते हैं – (१) कर्मनाश (२) उदय (३) नानागुण (४) हानि

(ग) बंध के कारण को कहते हैं– (१) द्रव्य (२) पुद्गल (३) कर्म (४) आस्रव

(घ) मोक्ष जाने के पहले केवली समुद्घात करने वाला जीव किसके बराबर होता है –
(१) शरीर (२) लोक (३) अलोक (४) अलोकाकाश

(ङ) श्रेणी व्यवहार गणित में समान हानि या समान वृद्धि के परिणाम को –– कहते हैं–
(१) कर्म (२) गुणहानि (३) चय (४) निषेकहार

प्रश्न ५ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ३० शब्दों में लिखिये – (अंक ४ x ५ = २०)

(१) उपादान कारण किसे कहते हैं ? (२) प्रकृति बंध और अनुभाग बंध में क्या अंतर है ?

(३) प्रमाद के कितने भेद हैं–चार्ट बनाइये। (४) आठ कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी–कितनी है ?

(५) अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं ? (६) भव्यत्व और अभव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

प्रश्न ६ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये – (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) कर्म किसे कहते हैं ? कर्म बंध के कितने भेद हैं उनकी परिभाषाएँ लिखिए।

(२) पर्याय के भेद चार्ट सहित समझाइये। (३) उदय, उदीरणा, उपशम क्या है ? उपशम को भेद सहित समझाइये।

(४) अभावों को समझने से लाभ बताइये। (५) किन्हीं चार नाम कर्मों की परिभाषाएँ लिखिए।

(६) किन्हीं चार की परिभाषा लिखिए–अवाय, चक्षुदर्शन, वैक्रियक शरीर, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य, समुद्घात

प्रश्न ७ – किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग २०० शब्दों में लिखिये – (अंक १ x १० = १०)

(अ) जीव के अनुजीवी–प्रतिजीवी गुणों का विस्तृत विवेचन कीजिए। (ब) कर्म का स्वरूप (बंध और आस्रव)